लिच्छवियो का उत्थान एवं पतन
(600 ई० पू०—781 ई०)

लिच्छवियों का उत्थान एवं पतन
(600 ई० पू०—781 ई०)

शैलेन्द्र श्रीवास्तव

प्रकाशन संस्थान
नई दिल्ली-110002

प्रस्तुत शोध ग्रंथ का प्रकाशन भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के आर्थिक सहयोग से साकार हुआ है। शोध ग्रंथ में प्रस्तुत किये गये तथ्यों, मतों या लिये गये निष्कर्षों का उत्तरदायित्व पूर्णरूपेण लेखक पर है। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद को इसके लिए उत्तरदायित्व नहीं है।

प्रकाशक
प्रकाशन संस्थान
4715/21 दयानंद मार्ग
दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण 1984

आवरण अवधेश कुमार

मुद्रक
सोहन प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

LICHCHHAVIYON KA UTTHAN AVAM PATAN
by Dr. Shailendra Srivastava

आमुख

लिच्छवियो के प्राचीन इतिहास की सामग्री विकीर्ण है। इन सामग्रियों को ऐतिहासिक सूत्र मे बाधने के कुछ प्रयास किए गए हैं, किन्तु अभी तक उनको ऐतिहासिक महत्ता एव सास्कृतिक धरोहर को क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत करने का समुचित प्रयास नही किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इसी दिशा में एक प्रयास है।

छठी शताब्दी ई. पू लिच्छवि गणराज्य एक पूर्ण विकसित गणराज्य के रूप मे मिलता है। लेकिन अजातशत्रु से पराजित होने (480 ई पू के लगभग) के पश्चात् लिच्छवि दीर्घकाल तक पूर्व की तरह शक्तिशाली गणराज्य के रूप मे प्रकाश में नही आ सके। इस अतराल के पश्चात् लिच्छवि पुन. प्रकाश में उस समय आए जब गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह लिच्छवि कुमारी कुमारदेवी के साथ हुआ, जिसका प्रमाण कुमारदेवी-चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्के हैं, जिनके पृष्ठ भाग पर 'लिच्छवय' अकित है। इसी तरह लिच्छवि गणराज्य की शासन प्रणाली, अर्थ-व्यवस्था तथा सामाजिक जीवन के अन्य पक्षो के विषय मे प्रत्यक्ष जानकारी उपलब्ध नही है। नेपाल में वैशाली के लिच्छवि किस काल मे गए और उनका भारत के गुप्तों से कैसा सम्बन्ध रहा, यह एक विवादास्पद विषय रहा है।

लिच्छवियो के इतिहास पर पिछले कुछ वर्षों में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं। सर्वप्रथम श्री विमल चरण ला ने अपने शोध निबन्ध 'द लिच्छवीज इन एशियेण्ट इडिया तथा शोध ग्रन्थ' 'क्षत्रिय क्लान्स इन बुद्धिष्ट इडिया' मे लिच्छवियो के विषय मे कुछ जानकारी दी है, परन्तु यह लिच्छवियो की इतिहास की मात्र भूमिका ही कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त लिच्छवियो की जाति, मूल स्थान तथा गणतन्त्रात्मक शासनप्रणाली पर अनेक विद्वानो ने शोध निबन्ध लिखे हैं। सदर्भ-सूची मे उन सभी शोध निबधो का विवरण दिया गया है। श्री योगेन्द्र मिश्र तथा हितनारायण झा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। योगेंद्र मिश्र की पुस्तक 'एन अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैशाली' (1962) मे वैशाली पर आदि काल से राज्य करने वाले राजवशो का इतिहास विवेचित है। इस पुस्तक मे अजातशत्रु के समय तक लिच्छवियो के इतिहास पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। लिच्छवियो से सबधित अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तक श्री हितनारायण झा लिखित 'लिच्छवीज'

(1970) है। इस ग्रथ मे प्रमुख रूप से नेपाल के लिच्छवियो के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है तथा वैशाली के लिच्छवियो के राजनैतिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण काल (अजातशत्रु तथा गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त प्रथम के मध्य के काल मे लिच्छवि) के इतिहास को केवल कुछ पक्तियों म समेट दिया गया है। लिच्छवियो के गौरवशाली इतिहास को देखते हुए इस विषय पर एक ऐसे क्रमवद्ध शोध-प्रबध की आवश्यकता थी, जो लिच्छविया के सम्पूर्ण इतिहास पर प्रकाश डाले। प्रस्तुत शोध प्रबध इसी दिशा मे एक प्रयास है। इस शोध प्रबध का उद्देश्य उपलब्ध सामग्रियों का सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे विवेचन करना है।

लिच्छवियो का इतिहास प्रस्तुत करने म बौद्ध ग्रथो विशेषकर विनय पिटक, सुत्तनिपात, जातक कथाए, बुद्धघोष की अट्ठकथा, जैन ग्रथ आचाराग सूत्र, आवश्यक सूत्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पतजलि का महाभाष्य, कौमुदी महोत्सव, प्रयाग प्रशस्ति तथा चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा प्रसारित 'लिच्छवय' अकित सिक्के को माध्यम बनाया गया है। नेपाल क लिच्छवियो का इतिहास प्रस्तुत करने म नेपाल के वशावलियो, अभिलेखो तथा सिक्को को आधार बनाया गया है। अपने निष्कर्षों को यथाशक्ति निश्चयात्मक बनाने के लिए वैशाली उत्खनन मे प्राप्त मगध-राजाओ के सिक्को, मुहरें, मृण्मय मूर्तियो तथा चीनी यात्रियो के यात्रा-विवरणो एव चीनी अनुश्रुतियो से ज्ञात तथ्यो का समवेत एव तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

लिच्छवियो के इतिहास म अजातशत्रु के पश्चात् तथा चन्द्रगुप्त प्रथम के पूर्व लम्बा अतराल आता है। इस काल के उपेक्षित तथा अव्यवस्थित इतिहास को क्रमबद्ध करने के लिए परवर्ती शुग नरेश वसुमित्र से गुप्त-अभ्युदय के पूर्व तक उत्तरी भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थितियो का विश्लेषण किया गया है, तथा 'कौमुदी महोत्सव' एव प्रयाग प्रशस्ति म उल्लिखित वाक्याशो को नए दृष्टि-कोण से प्रस्तुत किया गया है। नेपाल के लिच्छवियो के इतिहास को भारत के सम्राटो के सदर्भ मे रखकर विचार किया गया है।

लिच्छवियो की आर्थिक सम्पन्नता को देखते हुए उनकी अर्थव्यवस्था पर विचार करना समीचीन था। अत इस शोध प्रबध मे वैशाली की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सम्पदा, भूमि-व्यवस्था, व्यापार, उद्योग-धन्धे आदि पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त उनकी शासन-व्यवस्था, सामाजिक जीवन तथा साहित्य एव कला, जो अभी तक अछूता था, उस पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबध चार खण्डो म विभक्त है। प्रथम खण्ड में लिच्छवियो की उत्पत्ति एव मूल स्थान की विवेचना की गयी है। इस अध्याय मे लिच्छवि नाम के विभिन्न रूपो, जाति के सबध म अनेक विद्वानो के मतो का विश्लेषण तथा

'व्रात्य' शब्द से अभिहित किए जाने के कारणो की समीक्षा की गयी है।

द्वितीय खण्ड मे लिच्छवियो का राजनैतिक इतिहास विवेचित है, जिसे सुविधानुसार छह अध्यायो मे विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय मे भगवान बुद्ध से पूर्व वैशाली का इतिहास विवेचित है। इस अध्याय में वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा पुराणो मे वैशाली तथा वैशाली के लोगो के विषय मे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष उल्लेखो की ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचना की गई है। जातको तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे उपलब्ध विवरणो के आधार पर विदेह मे कराल जनक के समय मे हुई राज्यक्राति तथा लिच्छवि गण-राज्य या सघ की स्थापना-तिथि पर विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त विदेह वज्जि सघ मे सम्मिलित था या नही, की आलोचनात्मक दृष्टि से विवेचना की गई है।

द्वितीय अध्याय मे भगवान बुद्ध के समय लिच्छवि मगध सबध तथा वज्जि सघ का पतन विवेचित है। इसके अतिरिक्त अन्य पडोसी गणराज्यो से लिच्छ-वियो के सबध पर विवेचना की गई है। इस अध्याय मे युद्ध को प्रभावित करने वाली मूल प्रवृत्तियो को विशेष रूप से विश्लेषित किया गया है।

तृतीय अध्याय मे अजातशत्रु से पराजित होने के पश्चात् लिच्छवियो की स्थिति की विवेचना है। यह विषय अत्यधिक उलझनो तथा समस्याओ से युक्त है। अजातशत्रु के पश्चात् तथा गुप्त अभ्युदय के पूर्व लिच्छवियो के राजनैतिक इतिहास पर प्रकाश डालने के लिए क्रम मे शिशुनाग के समय लिच्छवि, नन्द राजाओ के समय लिच्छवि, मौर्य काल मे लिच्छवि तथा शुग, कण्व, सातवाहन एव कनिष्क के काल मे लिच्छवि की स्थिति पर विचार किया गया है। परवर्ती शुग नरेश वसुमित्र के पश्चात् उत्तर भारत मे विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पैदा हुई। पश्चिम भारत मे अनेक गणराज्यो तथा मध्यदेश मे स्वतत्र सामन्त राजाओ का उदय हुआ। इन सबके परिप्रेक्ष्य मे लिच्छवियो के पुनरुत्थान की विश्लेषणात्मक विवेचना की गई है। कनिष्क द्वारा पाटलिपुत्र पर आक्रमण किए जाने के समय पाटलिपुत्र पर कौन राजा शासन कर रहा था, इस पर भी विचार किया गया है। क्या कनिष्क द्वारा पराजित राजा लिच्छवि राजा था, जिसने चीनी अनुश्रुति के अनुसार कनिष्क को भगवान बुद्ध का प्राचीन भिक्षा पात्र भेंट मे दिया था, इसकी कई दृष्टिकोणो से समीक्षा की गई है।

चतुर्थ अध्याय मे गुप्त अभ्युदय के पूर्व लिच्छवियो का इतिहास है। यह विषय भी कई विवादास्पद उलझनो से समाविष्ट है। गुप्त राजाओ के पूर्व पाटलिपुत्र किसके अधिकार मे था, पूर्ववर्ती विद्वान अभी तक निश्चय नही कर पाए हैं। इन विद्वानो के मतो की समीक्षा के साथ-साथ इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न के समाधान के लिए कौमुदी महोत्सव नाटक को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे देखने का

प्रयास किया गया है। प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित 'लिच्छवि दौहित्र' तथा चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी के सिक्कों पर अंकित 'लिच्छवय' की नई दृष्टि से व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में लिच्छवियों की स्थिति तथा 'कुमारामात्य' को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय में नेपाल के लिच्छवियों का इतिहास विवेचित है। इस अध्याय में समुद्रगुप्त के समय नेपाल में कौन-सा लिच्छवि राजा था जिसने 'सर्वकरदानादि' देकर करद राजा होना स्वीकार किया, निश्चित करने का प्रयास किया गया है। नेपाल के लिच्छवियों का भारत के गुप्तों तथा वैशाली के लिच्छवियों के संबंधों की समीक्षा की गई है। विवेचित काल में नेपाल की राजनीति में गुप्त सामन्तों का प्रवेश तथा प्रभावशाली होना गुप्त-लिच्छवि के संबंध के लिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

इस अध्याय में नेपाल के लिच्छवियों तथा गुप्त राजाओं के मध्य संबंधों की चर्चा है। यहाँ इसी विशेष बिन्दु को केन्द्र में रखकर नेपाल के इतिहास की पृष्ठ-भूमि में लिच्छवियों के इतिहास की समीक्षा की गई है।

छठे अध्याय में लिच्छवियों के पतन के कारणों की समीक्षा है। इस अध्याय में लिच्छवि गणराज्य के गुण-दोषों तथा तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों की विवेचना की गई है।

तृतीय खण्ड में छठी शताब्दी ईसा पूर्व के समय के लिच्छवियों के सांस्कृतिक इतिहास की विवेचना है। इसे सुविधा के लिए छह अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में लिच्छवियों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण है। लिच्छवियों की सुसज्जित वेशभूषा, विवाह के नियम, नगर तथा भवन योजना, आर्थिक सम्पन्नता, लिच्छवि समाज में शूद्रों तथा दासों की स्थिति, नारी की स्थिति, शिक्षा, खानपान तथा सामाजिक जीवन की विस्तृत विवेचना की गई है।

द्वितीय अध्याय में धार्मिक दशा की विवेचना की गई है। इस अध्याय में वैशाली में प्रमुख धर्मों के अस्तित्व को रेखांकित किया गया है। इस दृष्टि से वैशाली में ब्राह्मण, आजीविक, जैन तथा बौद्ध मतों के प्रचारकों के प्रति लिच्छ-वियों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है। वैशाली में आयोजित द्वितीय बौद्ध संगीति पर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त वैशाली क्षेत्र में स्थित प्रमुख पवित्र स्थलों का विवरण भी दिया गया है।

तृतीय अध्याय में लिच्छवियों की शासन प्रणाली विवेचित है। इस अध्याय में लिच्छवियों के केन्द्रीय समिति के 7707 सदस्यों की नियुक्ति किस प्रकार होती थी, इस विवादास्पद विषय पर विभिन्न विद्वानों के मतों को

विश्लेषित किया गया है। प्रशासन मे नागरिको के भाग लेने का अधिकार, कृत्रिम नागरिकता, दिशा-निर्देश के सिद्धात, मत्रि-परिषद् के सदस्य तथा उनके अधिकार व कर्तव्य, केन्द्रीय समिति के सचालन सबधी नियम, दलीय पद्धति आदि की भी विवेचना की गई है। लिच्छवियो की न्याय-व्यवस्था का भी अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे वैशाली की आर्थिक दशा विवेचित है। इस अध्याय मे कृषि, विभिन्न प्रकार के उद्योगो तथा व्यापार पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त वैशाली की भौगोलिक स्थिति, नगर तथा ग्रामो की दशा पर भी प्रकाश डाला गया है।

पचम अध्याय म भाषा तथा साहित्य विवेचित है। इस अध्याय मे छठी-शताब्दी ई पू मे व्यवहार की जाने वाली भाषा का स्वरूप तथा वाड्मय की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

छठे अध्याय मे कला की विवेचना की गई है। विशेष रूप से वैशाली उत्खनन मे प्राप्त कलात्मक मृद भाण्ड, मृण्मयी मूर्तियो के माध्यम से भारतीय कला के विकास मे वैशाली के योगदान पर प्रकाश डाला गया है। बौद्ध ग्रथो मे उल्लिखित कूटागार, स्तम्भ, चैत्य, स्तूप तथा वर्तमान बाखिरा गाव (कोल्हुआ) मे अशोक द्वारा स्थापित सिंह शीर्षयुक्त स्तम्भ पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ खण्ड मे शोधप्रबध मे विश्लेषित विषयो का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

शोधकार्य मे जिन शोधपत्रिकाओ, उत्खनन रपटो, शोधप्रबधो तथा सामान्य ग्रथों की सहायता ली गई है, उनकी सूची अत मे दी गई है।

मेरठ विश्वविद्यालय ने मुझे इस महत्त्वपूर्ण विषय पर शोधकार्य करने की अनुमति देकर अनुगृहीत किया, इसके लिए मैं आभारी हू। भारतीय इतिहास अनुसधान परिषद् (नई दिल्ली) ने अध्ययन तथा पाडुलिपि को टकित कराने के लिए दो हजार रुपये तथा पुस्तक के रूप मे प्रकाशित कराने के लिए आठ हजार रुपये की आर्थिक सहायता दी, जिसके लिए मैं परिषद् के सदस्यो का आभारी हू।

शोध कार्य में राष्ट्रीय सग्रहालय पुस्तकालय, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण पुस्तकालय, भारतीय इतिहास अनुसधान परिषद पुस्तकालय, साहित्य एकेडमी पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, दिल्ली सार्वजनिक पुस्तकालय, सामाजिक विज्ञान प्रलेखन केन्द्र पुस्तकालय (सभी दिल्ली-नई दिल्ली में स्थित), पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय (पटना), शारदा पुस्तकालय लालगज (वैशाली), पटना सग्रहालय (पटना), एशियाटिक सोसाइटी पुस्तकालय (कलकत्ता), राष्ट्रीय पुस्तकालय (कलकत्ता) आदि पुस्तकालयों का उपयोग किया गया है। मैं इनके पुस्तकालयाध्यक्षों तथा कर्मचारियो के प्रति कृतज्ञता प्रकट

करता हूँ। पुरातत्व सर्वेक्षण पुस्तकालय के स्वर्गीय भगवत साही का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ जो शोधकार्य से संबंधित पुस्तकों को देने में विशेष रुचि लिया करते थे।

मुझे इस महत्त्वपूर्ण विषय पर कार्य करने की प्रेरणा श्री अनन्त सागर अवस्थी (आई ए एस) ने दी थी, जिनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ। डा. चन्द्रभान पाण्डेय (संग्रहपाल, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली) तथा डा राधेश्याम मिश्र (व्याख्याता, महानन्द मिशन हरिजन कालेज, गाजियाबाद) के अमूल्य निर्देशन तथा शोध के प्रति सत्यनिष्ठा से यह कार्य संभव हो सका है, मैं इन दोनों विद्वानों के प्रति श्रद्धानत हूँ। डा सच्चिदानन्द सहाय (रीडर, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया), डा वीरेन्द्रसिंह (मगध विश्वविद्यालय, बोधगया), डा एल बी राम (व्याख्याता, महानन्द मिशन हरिजन कालेज, गाजियाबाद) तथा डा राजकुमार (भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली), डा आर एन शर्मा (व्याख्याता, श्यामलाल कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली) का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव देकर शोधकार्य में सहायता दी है। अनेक आधुनिक विद्वानों के शोधनिबंधों तथा शोधग्रंथों की सहायता इस प्रबंध के प्रणयन में ली गई है, इन सुधी लेखकों के प्रति सादर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

शोधप्रबंध को डा० श्यामबिहारी राय ने सम्पादित कर प्रकाशन योग्य बनाया, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

— शैलेन्द्र श्रीवास्तव

'जनभारती'

रुद्रनगर, सुलतानपुर (उ प्र)

संकेत-सूची

अ भ ओ रि इ	अनल्स आफ द भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिटयूट
अर्ली हि	अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया (विसेंट आर्थर स्मिथ)
अमर	अमर कोष
अगु	अगुत्तर निकाय
अर्थ	अथशास्त्र
अर्ली सो हिस्ट्री	सम आस्पेक्ट आफ द अर्लीयेस्ट सोशल हिस्ट्री आफ इण्डिया
अथर्व	अथर्व वेद
आ स इ ए रि	आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एन्युअल रिपोर्ट
इ ए	इडियन एण्टीक्वेरी
इ न्यू क्रो	इडियन न्यूमिस्मेटिक क्रोनिकिल
इ क	इडियन कल्चर, कलकत्ता
इको लाईफ	इकोनामिक्स लाईफ एण्ड प्रोग्रेस इन एशियेण्ट इडिया
इ हि क्वा	इडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, कलकत्ता
ई पू	ईसवी पूर्व
एपि इडि	ऐपीग्राफिका इडिका
उ हि रि ज	उडीसा हिस्टारिकल रिसर्च जर्नल, भुवनेश्वर
ए हिस्ट्री	एडवान्स्ड हिस्ट्री (मजूमदार, दत्त, रायचौधुरी, 1956)
ऋ	ऋग्वेद
क्ला एज	द क्लाजिकल एज (सम्पा रमेशचन्द्र मजूमदार)
का इ इ	कार्पस इंस्क्रिप्शन इडिकेरम, भाग 3, गुप्त-वश (फ्लीट)

का. ला.	कारपोरेट लाइफ इन एंशियेण्ट इंडिया (रमेश-चन्द्र मजूमदार)
किरपाटिक	एन एकाउन्ट आफ द किंगडम आफ नेपाल (किरपाटिक)
खुद्दक.कमे.	खद्दकपाठ कमेंटरी (बुद्धघोष)
गरुड	गरुड पुराण
गुप्ता इ.	गुप्त इंसक्रिप्सान आफ द अर्ली गुप्ता किंगडम दियर सक्सेसर (फ्लीट)
चुल्ल.	चुल्लवग्ग
ज. अ ओ. सो	जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी
ज. इ हि.	जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री
ज. उ प्र हि सो.	जर्नल आफ यू पी. हिस्टारिकल सोसाइटी
ज ए सो	जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
ज. न्यू. सो इ.	जर्नल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इंडिया
ज. ए सो ब	जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता
ज बि उ. रि. सो.	जर्नल आफ बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना
ज. बि रि. सो	जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना
ज रा ए. सो	जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, लण्डन
जा.]	जातक
डा. पार्जिटर	पुराण टेक्स आफ द डायन्सटीज आफ द कलि एज
डि. पा. प्रा. ने	डिक्शनरी आफ द पालि प्रापर नेम
डायलाग्स	डायलाग्स आफ द बुद्ध
डे हि को.	डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू कोनोग्राफी (जे. एन बनर्जी)
तिरहुत.	हिस्ट्री आफ तिरहुत (सत्यनारायण सिंह)
दीर्घा कमे	दीर्घा कमेन्टरी, सुमंगल विलासिनी
दीर्घ.	दीर्घ निकाय
दिव्या	दिव्यावदान
धम्म अट्ठ	धम्मपद अट्ठकथा (धम्मपद कमेन्टरी)

नेपाल इति	नेपाल की ऐतिहासिक रूपरेखा (वी सी शर्मा)
नोली	नेपाल इन्सक्रिप्शन्स इन गुप्ता कैरेक्टर (नोली)
न्यू क्रा	न्यूमिस्मेटिक क्रानिकल, लण्डन
न्यू स	न्यूमिस्मेटिक सप्लीमेन्ट, कलकत्ता
पाणिनि	अष्टाध्यायी
पा टे सो	पाली टेक्स सोसाइटी (जर्नल)
प्रो ए सो ब	प्रोसीडिंगस आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल
प्रो इ हि का	प्रोसीडिंगस आफ इडियन हिस्ट्री काग्रेस
प्रो ओ का	प्रोसीडिंग्स आफ आल इडिया ओरियटल कार्फ्रेंस
पो हि	पोलिटिक्ल हिस्ट्री आफ एशियेण्ट इडिया (रायचौधुरी)
ब्रि म्यू मु. से ए इ	ब्रिटिश म्यूजियम, मुद्रा सूची, एशियेण्ट इडिया
ब्रि म्यू मू गु व	ब्रिटिश म्यूजियम, मुद्रा सूची, गुप्त वश
बि बुद्ध	बिबलिओथेका बुद्धिका (सीरीज)
बि इ सी	बिवलिओथेका इडिया सीरीज
बि घर्मा	बाओग्राफी आफ घर्मास्वामिन (तिब्बती भिक्खु तीर्थयात्री)
बील	बुद्धिष्ट रिकार्ड आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड (अनुदित)
बु इडिया	बुद्धिष्ट इडिया (राइस डेविड)
बु सी	बुद्धिष्ट सीरीज (लण्डन)
बौधा	बौधायन श्रौत्र सूत्र
भ सूत्र	भगवती सूत्र
मज्झिम	मज्झिम निकाय
मज्झिम कमे	मज्झिम कमेन्टरी
मभा	महाभारत
मनु	मनु स्मृति
मार्कण्डेय	मार्कण्डेय पुराण
मिलिद	मिलिन्दपन्हो

याज्ञवल्क्य	याज्ञवल्क्य स्मृति
रतिलाल	द बुद्धिष्ट इंडिया (रतिलाल मेहता)
रामा	रामायण (वाल्मीकि)
रॉकहिल	लाइफ आफ बुद्ध (डब्लू डब्लू रॉकहिल)
राहुल	बुद्धाचार्य (राहुल सांकृत्यायन)
रेग्मी	एंशियेण्ट नेपाल (दिल्ली रमण रेग्मी)
लेवी	ली नेपाल (लेवी)
वायु	वायु पुराण
राइट	हिस्ट्री आफ नेपाल (पर्वतीय स अनुवाद 1877)
विनय	विनय पिटक
विष्णु	विष्णु पुराण
वि स	विक्रमी संवत्
वेद इ	वेदिक इंडेक्स
वै अभि ग्र	वैशाली अभिनन्दन ग्रंथ
वैशाली	एन अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली (योगेन्द्र मिश्र)
संयुक्त	संयुक्त निकाय (द बुक आफ द किन्ड्रड सेइंग, अनुवाद)
सै बु ई	सैक्रेड बुक आफ द ईस्ट सीरीज (राइस डेविड द्वारा अनूदित)
शतपथ	शतपथ ब्राह्मण
क्षत्रिय क्लेन	क्षत्रिय क्लान्स् इन बुद्धिष्ट इंडिया (विमल चरण ला)
तैत्तिरीय	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्तिरीय स	तैत्तिरीय संहिता

विषय-सूची

प्रामुख	v
सकेत-सूची	xi
भूमिका	1
लिच्छवियो की उत्पत्ति, लिच्छवियो की प्रजाति, अनार्य उत्पत्ति, आर्य उत्पत्ति, लिच्छवियो का मूल स्थान, भारतीय उत्पत्ति, वैशाली नगर	
प्रारम्भिक राजनीतिक इतिहास	29
लिच्छवि या वज्जि गणराज्य, विदेह वज्जि सघ मे सम्मिलित था या नही	
बौद्धकालीन राजनीतिक इतिहास	43
मगध साम्राज्य तथा लिच्छवि, लिच्छवि और मगध के मध्य युद्ध के कारण, लिच्छवि और अजातशत्रु के मध्य युद्ध, वज्जि सघ का पतन	
ह्रासोन्मुख लिच्छवि गणराज्य	60
विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति, कनिष्क के समय मे लिच्छवि	
गुप्त साम्राज्य के अभ्युदय के पूर्व	72
समुद्रगुप्त के समय लिच्छवि	
गुप्त काल मे नेपाल के लिच्छवि	85
नेपाली लिच्छवि राजाओ की पुन प्रतिष्ठा	
लिच्छवि गणराज्य का पतन	104
सांस्कृतिक इतिहास	109
सामाजिक व्यवस्था, शूद्र की स्थिति, हीन जातिया, दास प्रथा, नारी की स्थिति, गणिकाए, शिक्षा, खानपान, सामाजिक जीवन लोक महोत्सव और मनोरजन	

धार्मिक दशा 147

ब्राह्मण मत, जैनमत, आजीविक तथा अन्य वेद विरुद्ध मत, बौद्ध मत, वैशाली क्षेत्र के प्रसिद्ध बौद्ध स्थल, वैशाली बौद्ध संगीति

प्रशासन 172

राज्य और क्षेत्र, वज्जि-राज्य का स्वरूप, प्रशासन में भाग लेने का अधिकार, बाहरी व्यक्ति को नागरिकता, लिच्छवि गणतंत्र को दिशा निर्देश करने वाले सिद्धांत, केन्द्रीय शासन, दलीय पद्धति, समिति का संचालन तथा वाद विवाद संबंधी नियम, स्थानीय शासन, न्याय-व्यवस्था

आर्थिक दशा 193

नगर तथा ग्राम, कृषि व्यवस्था, भूमि का स्वामित्व, पशुपालन, व्यवसाय, उद्योग-धन्धे, विनिमय तथा व्यापार

भाषा तथा वाङ्मय 208

वाङ्मय, जातक ग्रन्थ

कला 220

भवन तथा नगर निर्माण कला, कूटागार तथा चैत्य कला, स्तूप तथा स्तम्भ

निष्कर्ष 229

भूमिका

लिच्छवियों की उत्पत्ति

छठी शताब्दी ईसवी पूर्व उत्तर बिहार में एक सुदृढ गणतांत्रिक व्यवस्था का संचालन करने वाले तथा अपने युग की महत्तम शक्ति कहलाने का गौरव प्राप्त करने वाले लिच्छवियों की उत्पत्ति के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। यह आज भी जिज्ञासा का विषय बना हुआ है।

विभिन्न ग्रंथों तथा शिलालेखों में 'लिच्छवि' नाम के अनेक रूप 'लिच्छवि[1] लेच्छवि[2], लेच्छइ[3], लेच्छकी[4], लिच्छिवि[5], निच्छवि[6], लिछिखि[7], लिछवि[8] तथा लिच्छिवि[9] इत्यादि देखने को मिलते हैं। पालि ग्रंथों, नेपाल के लिच्छवि राजाओं के अभिलेखों, सिक्कों तथा विदेशी साहित्य में प्राय 'लिच्छवि' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। कौटिल्य अर्थशास्त्र (11-1) में 'लिच्छविक' तथा चन्द्रगुप्त प्रथम की मुद्राओं पर बहुवचन में 'लिच्छव्या' रूप पाया जाता है।

'लिच्छवि' शब्द की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों ने अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं। काशी प्रसाद जायसवाल[10] के मत में लिच्छवि शब्द लिच्छु से बना है और इसका अर्थ होता है: लिच्छु (लिक्षु) का वंशज। लिक्ष का अर्थ होता है लक्ष्यविशेष। लिक्षु और लिक्ष आपस में मिलते हैं। संभवतः यह पुकारा जाने वाला नाम किसी गोत्र विशेष के चिह्न का द्योतक है। सतीशचन्द्र सरकार[11] का मत है कि लिच्छ शब्द ऋक्ष से बना है। ऋक्ष शब्द का अर्थ भालू या कोई लोमधारी पशु भी होता है जैसे सिंह। सिंह शक्ति का द्योतक है। ऋक्ष से प्राकृत में 'ॠ' का 'लि' तथा 'क्ष' का 'च्छ' अर्थात् ऋक्ष का लिच्छ हो गया। संभवतः लिच्छवियों ने सिंह को अपनी पताका का चिह्न चुना हो, जिसे बाद में शिशुनागों और गुप्तों ने भी अपना लिया। बुद्धघोष[12] ने 'परमत्थजोतिका' में इस शब्द की तथा लिच्छवियों की उत्पत्ति का एक काल्पनिक वर्णन दिया है। कथा के अनुसार बनारस की रानी से मांस-पिंड उत्पन्न हुआ जिसे रानी ने काष्ठपिंजर में रखकर गंगा में बहा दिया। काष्ठपिंजर एक यति को मिला मांस-पिंड की उसने सेवा की जिससे जुड़वा बच्चे (एक लड़की व एक लड़का) पैदा हुए।

ऐसा कहा जाता है कि इन दोनों के पेट म जो कुछ जाता था साफ दिखाई पडता था, जैसे इन दोनो का पेट पारदर्शी हो। अत वे चर्म रहित (निच्छवि) मालूम होते थे, कुछ लोग कहते थे, इनका चर्म इतना पतला है (लिनाच्छवि) कि पेट मे जो कुछ पदार्थ जाता है, सिला हुआ जान पडता है। इस तरह ये बच्चे 'निच्छवि' या लिच्छवि पुकारे जाने लगे। हितनारायण झा[13] ने इस कथा में प्रयुक्त 'लिनाच्छवि' शब्द का व्युत्पत्ति विग्रह इस प्रकार दिया है—लीङ् श्लेषणे—ली (न) चवि - लीनवि= लिच्छवि। उन्होंने 'पारदर्शी पेट' का अभिप्राय सौंदर्यबोध माना है। सतीश चन्द्र, विद्याभूषण तथा कुछ अन्य पाश्चात्य विद्वानो ने इस शब्द की व्युत्पत्ति एक पारसी शब्द 'निसिबिस' से माना है। कहा जाता है कि यह शब्द संस्कृत मे निच्छिवि तथा कालांतर मे पालि मे लिच्छवि हो गया होगा।[14]

वास्तव मे मनुस्मृति (10-22) मे लिच्छवि शब्द को बग टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने 'निच्छवि' पढा था जो पद्रहवीं शताब्दी में बंगाक्षर में 'न' और 'ल' का साम्य होने से 'लि' के बदले 'नि' पढ़ा गया। मनुस्मृति के प्रकाड विद्वानो ने 'लिच्छवि' को शुद्ध पाठ माना है।[15] अत 'निच्छवि' शब्द की व्युत्पत्ति स्वत ही अमान्य हो जाती है। सतीश चन्द्र सरकार का कहना कि लिच्छवि महाकाव्यों तथा पुराणो मे वर्णित ऋक्ष हो सकते हैं, ऐतिहासिक तथ्यो पर आधारित नही हैं। अत लिच्छवि शब्द की व्युत्पत्ति के विषय म अभी तक कुछ स्पष्ट निर्णय नहीं लिया जा सका है।

लिच्छवियो की प्रजाति

लिच्छवियो की जाति क्या थी, इस विषय मे पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानो मे उन्हे विदेशी कहा है, यद्यपि उनमे भी मतैक्य नही है। इन्होने इन्हें यूची, कोलार, तिब्बती तथा पारसी प्रजाति से सबधित बताया है। इनका सक्षिप्त विवरण निम्न रूप मे प्रस्तुत किया जाता है·

(क) यूची सैमुअल बील ने लिच्छवियो को यूची जाति से सबधित बताया है।[16] किंतु इसलिए इसे नही स्वीकार किया जा सकता है, क्योकि भारत मे यूची जाति का प्रवेश प्रथम शताब्दी ई पू [17अ] मे हुआ। जबकि लिच्छवियों को हम छठी शताब्दी ई पू (बुद्ध निर्वाण 483 ई पू) के पूर्व, एक बहुप्रसिद्ध सुसगठित राजनीतिक शक्ति के रूप मे स्थापित देखते हैं जिनकी सभ्यता उच्च-कोटि की थी।[17ब]

(ख) कोलार जे एफ हेविट[18] का मत है कि लिच्छवि आर्यों व द्रविडो के बहुत पहले कभी इस क्षेत्र मे आकर बस गए थे जो कोलार प्रजाति से सबधित थे।

लेकिन लिच्छवियो के पूर्व हम वैशाली मे आर्य क्षत्रिय राजाओ का अस्तित्व पाते हैं ।[19] अत: लिच्छवियो को आर्यों तथा द्रविडो के पूर्व वैशाली क्षेत्र मे स्थापित करना समीचीन नही लगता है ।

(ग) तिब्बती विसेंट आर्थर स्मिथ[20] तथा उनके अनुयायी[21] इतिहासकारो का मत है कि लिच्छवि मंगोल प्रजाति की एक शाखा थी जो तिब्बत और हिमालयवासियो से सबधित थे । उन्होने लिच्छवियो तथा तिब्बतियों मे मृत सस्कार और न्याय व्यवस्था मे एकरूपता के आधार पर यह मत प्रस्तुत किया है ।

इस मत के खण्डन मे विमलचरण ला[22] तथा काशीप्रसाद जायसवाल[23] तथा राय चौधुरी[24] का कहना है कि

(1) वैदिक आर्य मृत सस्कार इसी विधि से करते थे । इस परपरा को लिच्छवियो ने जारी रखा । अथर्ववेद[25अ] कहता है, 'हे अग्नि: ! गडे हुए को, फेंके हुए को, अग्नि से जले हुए को तथा जो डाले पडे गए हैं, उन्हें यज्ञभाग खाने को लाओ ।' गाडने की प्रथा तथा उच्च स्थान पर शवों को रखने की प्रथा का उल्लेख आपस्तब श्रौतसूत्र (1-87) मे भी मिलता है ।[25ब]

(2) वैशाली की प्राचीन न्यायपद्धति और आधुनिक लासा की न्यायपद्धति मे एकरूपता होते हुए भी प्रयोग मे थोडा अतर दिखाई देता है । प्रथम, लिच्छवियो की न्याय व्यवस्था मे सात न्यायालयो की व्यवस्था थी जबकि तिब्बत की न्याय व्यवस्था म तीन न्यायालयो की व्यवस्था हम पाते हैं । द्वितीय, तिब्बती न्याय व्यवस्था मे अभियुक्त के अपराध की जाच के दौरान अपराध स्वीकार कराने के लिए आठ विभिन्न स्तरो से गुजरना होता था जिसमे यातनाए दी जाती थी । केवल अतिम स्तर पर अभियुक्त को निरपराध सिद्ध होने पर मुक्त किया जाता था । जबकि वैशाली की न्यायपद्धति मे अभियुक्त किसी भी स्तर पर निरपराध सिद्ध हो जाने पर मुक्त कर दिया जाता था, उसे अतिम स्तर तक सुनवाई के लिए प्रस्तुत नही होना पडता था ।

इस तरह तिब्बतियो तथा लिच्छवियों की न्यायपद्धति तथा मृतसस्कार मे जो थोड़ी बहुत समता देखते हैं उसका कारण यह हो सकता है कि लिच्छवि उन घुमतू कबीलो मे से रहा हो जो हिमालय की तराई मे बहुत पहले आकर बस गई हो जिससे अन्य घुमतू आर्य कबीलो के रीति-रिवाज इन्होंने ग्रहण कर लिए हों । इस क्षेत्र का तिब्बत सीमात प्रात होने के कारण तिब्बतियों ने मध्य काल मे बौद्ध धर्म के ग्रहण करने के साथ लिच्छवियो के रीति-रिवाज भी ग्रहण कर लिए हो । अपितु प्राचीन बौद्ध काल मे तिब्बती सभ्यता का ज्ञान हमे कम ही है । अत. इस समता के आधार पर लिच्छवियो को तिब्बतियो से सबधित नही सिद्ध किया जा सकता है ।[26]

(घ) पारसी सतीशचन्द्र विद्याभूषण[27] ने पारसिक साम्राज्य के निसिब और बग टीकाकार कुल्लूक भट्ट द्वारा पठित (मनु० 10 22) 'निच्छवि' शब्द मे साम्य देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि लिच्छवि पारसियो से सबधित थे। उनके अनुसार सस्कृत का 'निच्छवि' वास्तव मे पारसी शब्द 'निसिबि' का भारतीय रूपातर है जो पालि मे 'लिच्छवि' बन गया। यह पारसी समूह पाचवी छठी शताब्दी ई पू कभी भारत आकर बसी होगी।

इस मत के खण्डन मे हम यह कह सकते हैं कि विद्याभूषण महोदय का यह तर्क मनुस्मृति (10 22) के 'निच्छवि' शब्द पर आधारित है जो विमलचरण ला[28] के अनुसार कुल्लूक भट्ट ने अशुद्ध पढा है। वास्तव मे मनुस्मृति मे यह शब्द 'लिच्छवि' ही है जिसे मनुस्मृति के अन्य अधिकारी विद्वान जैसे जोली[29], ब्यूलर[30] ने भी स्वीकार किया है। और फिर, हम किसी भी ईरानी साक्ष्य से यह नही जानते हैं कि ईसा के पाचवी या छठी शताब्दी पूर्व कोई पारसी समूह भारत आकर बसा हो।[31] इसके अतिरिक्त लिच्छवियो को ईरानी देवी देवताओ की पूजा करने की अपेक्षा यक्ष की पूजा तथा भगवान महावीर तथा भगवान बुद्ध की शिक्षाओ मे रुचि लेते पाते हैं।[32]

इस प्रकार लिच्छवियो को विदेशी कहना उचित नही है। इस सबध म यह ऐतिहासिक तथ्य और भी ध्यान देने योग्य है कि अगर लिच्छवि विदेशी होते तो साम्राज्यवादी अजातशत्रु के विरुद्ध युद्ध मे लिच्छवि राजा चेटक के आह्वान पर नौ मल्ल, नौलिच्छवि तथा काशी कोसल के अठारह गणराज्य कभी एक पताका के नीचे सगठित[33] न होते। इसस यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि लिच्छवि कम से कम विदेशी नही थे। किसी भी प्राचीन ग्रथ मे इनके विदेशी होने का सकेत या उल्लेख नही है। पहली बार मनुस्मृति (10 22) म उल्लेख होने के कारण यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लिच्छवि बौद्ध काल के बहुत पूर्व कभी यहा आकर स्थाई रूप से बसे होंगे।

अनार्य उत्पत्ति

श्यामाचरण चक्रवर्ती तथा श्रीराम गोयल आदि ने लिच्छवियो को किन्नर, किरात, खशो तथा यक्षो के सदृश्य किसी आर्येतर जाति का माना है।[34] अपने मत के समर्थन में उन्होने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं

(1) लिच्छवि शब्द शुद्ध सस्कृत शब्द नही है। यह शब्द पाणिनि के सूत्रो मे नही मिलता जबकि पाणिनि ने अन्य बहुत से क्षत्रिय जातियो का उल्लेख किया है।[35] पुराणो मे भी लिच्छवियो का कही उल्लेख नही मिलता है जबकि लिच्छवियों के पडोसी विदेह को शतपथ ब्राह्मण[36] म आर्य कहा गया है और विदेह राजा को 'अग्निवैश्वानर' कुल को आगे बढाने वाला कहा है। इस तरह

लिच्छवि बरावर ब्राह्मण साहित्य मे उपेक्षित रहे। सर्वप्रथम इनका उल्लेख मनुस्मृति (10-22) मे हुआ है, वह भी अनार्य प्रजातियो के साथ।

(2) भगवान बुद्ध के जीवन काल में तथा उनके पूर्व वैशाली के लिच्छवि चैत्य की पूजा करते थे, और यह स्पष्ट है कि चैत्यपूजा यक्ष जाति के लोग करते थे, आर्य लोग नहीं।[37] महावस्तु के[38] अनुसार भगवान बुद्ध ने वज्जिसघ की राजधानी को हिमालय प्रदेश के यक्षो के दुष्प्रभाव से बचाया था। महाभारत[39] मे भीम ने उन यक्षो से युद्ध किया जो कुवेर के परिचारक थे और एक कमल सरोवर की रखवाली कर रहे थे। महापरिनिब्बान सुत्त मे भगवान बुद्ध वैशाली मे बहुत सारे चैत्य देखते हैं।[40] आचारागसूत्र (जैकोबी द्वारा सपादित) से पता चलता है कि महावीर के माता-पिता पार्श्व को पूजते थे और श्रमणो के अनुयायी थे। सभव है, महावीर ने अपने इसी धार्मिक आस्था को आगे बढाया हो।

(3) लिच्छवियो म कुछ ऐसी परपराए हम देखते हैं जो वैदिक परपराओ से सर्वथा भिन्न थी, बल्कि तराई प्रदेश की अन्य जातियो की परपराओं के सदृश थी। उदाहरणार्थ, कोलिय जाति के सदृश लिच्छवियो मे भी भाई-बहन मे विवाह की प्रथा प्रचलित थी। इस सदर्भ मे हम 'खुद्दक पाठ' पर बुद्धघोष की 'परमत्थ-जोतिका' नामक टीका मे वर्णित कथा को देख सकते हैं।[41]

उपर्युक्त प्रमाणो के आधार पर श्यामाचरण चक्रवर्ती तथा श्रीराम गोयल ने निष्कर्ष निकाला है कि लिच्छवि हिमालय क्षेत्र मे रहने वाली अन्य प्रजातियो यक्ष, किन्नर, गधर्व, किरात की तरह किसी आर्येतर जाति की शाखा थी जो बहुत पहले कभी यहा आकर स्थायी रूप स बस गई। वस्तुत: वे जन्म से अनार्य ही थे, जिनके पास अपना धर्म और रीति रिवाज था। बाद मे क्षत्रिय कर्म करने के कारण क्षत्रिय कहलाए। इस तरह लिच्छवि वास्तविक रूप मे शुद्ध क्षत्रिय नहीं, बल्कि स्व-आरोपित क्षत्रिय थे।[42] मनुस्मृति मे सभवत इसीलिए उन्हे व्रात्य[43] सूची मे रखा गया है। वस्तुत. उत्तर मौर्य काल मे जब भारतीय समाज का वर्णाश्रम धर्म के आधार पर पुनर्गठन हुआ तो उस समय क्षत्रियोचित कार्यो को करने वाली बहुत-सी प्रजातियो को 'क्षत्रिय वर्ण मे' स्वीकार कर लिया गया। उदाहरणार्थ शक, कुषाण आदि को भी स्मृतियो मे क्षत्रिय नाम दिया गया है।[44] असभव नही कि इसी क्रम मे लिच्छवियो को भी क्षत्रिय माना गया हो।

अनार्य सिद्ध करने वाले विद्वानो द्वारा उपर्युक्त तर्क बहुत सबल नहीं है।

(1) पाणिनि के अष्टाध्यायी मे 'लिच्छवि' शब्द का उल्लेख न होने के कारण यह हो सकता है कि लिच्छवि की अपेक्षा वृजि (वज्जि प्राकृत मे) अधिक सम्मानजनक नाम था, और वज्जि के अतर्गत ही लिच्छवि आते हैं।[45] पुराणो मे उल्लेख न होने के कारण सभवत पुराणो की रचना का परवर्ती होना है।

(2) चैत्यो की पूजा यक्ष जाति के लोग ही नही करते थे। आदि काल से चैत्यो व वृक्षो की पूजा का उल्लेख वैदिक साहित्य मे भी मिलता है।[46]

(3) भाई-बहन मे विवाह की प्रथा आदि काल में आर्यों में भी प्रचलित थी।[47] परमत्थजोतिका' की कथा एक उत्पत्ति कथा है। इस तरह की उत्पत्ति कथाओ मे प्राय परिकल्पनाए अधिक होती हैं। अत इसे गभीरता से नहीं लिया जाना चाहिए।

(4) *व्रात्य क्षत्रिय तथा मनुस्मृति (10-22) में उल्लिखित 'व्रात्य' का* अभिप्राय कुछ विद्वानो[48]अ ने विदेशी अथवा अनार्य माना है। लेकिन यह उनकी भ्रातिपूर्ण व्याख्या पर आधारित है। वास्तव में, 'व्रात्य' आर्य क्षत्रिय के लिए भी प्रयोग होता था।[48]ब मनुस्मृति[49] में भारत के लोगो को दो प्रमुख गुटो में विभाजित किया है—द्विज और व्रात्य। जो सावित्री सिद्वात पर चलते थे, उन्हें द्विज' की श्रेणी में रखा गया तथा जो उसम पतित हो जाते थे उन्हें 'व्रात्य' की श्रेणी में रखा गया। मनु[50] के अनुसार व्रात्य वे हैं जो समान वर्ण से द्विजाति की सतान हो किंतु जो स्वधर्म विमुख होने के कारण सावित्री पतित हो जाते थे। विदेशी और अनार्य सावित्री सिद्वात के लिए अनुपयुक्त थे अत 'वृषल' कहे जाते थे।[51] 'खश' और 'द्रविण' व्रात्य और वृषल दोनो वर्गों में गिन लिए जाते थे।[52] लिच्छवियों को मनुस्मृति मे वृषल की सूची में न रखने से स्पष्ट है कि वे विदेशी या अनार्य नही थे।[53]

लिच्छवि लोग, अब्राह्मण सप्रदाय, जैन और बौद्धो के प्रमुख नेता थे। मनु के बताए मार्ग पर नही चलते थे। सभवत ब्राह्मण व्यवस्थाकारो ने इसी चिढ से उत्तर मौर्य काल मे जब ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हुआ और भारतीय समाज का वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार पुनर्गठन किया गया तो मनुस्मृति (10 22) मे आर्येतर जातियो खशो और द्रविडो के साथ लिच्छवियो की गणना कर 'व्रात्य' की सूची में रख दिया।[54]

आर्य उत्पत्ति

विमलचरण ला, काशीप्रसाद जायसवाल, योगेन्द्र मिश्र तथा अन्य भारतीय विद्वानो ने लिच्छवियो को आर्य क्षत्रिय माना है।[55] अपने तर्क को सिद्ध करने के लिए *इन विद्वानो ने बहुत से ऐतिहासिक तथ्यो तथा साहित्यिक प्रमाणो को* प्रस्तुत किया है

(1) 'महापरिनिब्बान सुत्त' में लिच्छवियों ने भगवान बुद्ध का अस्थि-अवशेष मागते हुए कहा कि भगवान बुद्ध क्षत्रिय थे और वे भी क्षत्रिय हैं, इसलिए उन्हें भी अस्थि-अवशेष का एक भाग मिलना चाहिए।[56] सिगाल जातक[57] मे एक लिच्छवि लडकी को क्षत्रिय-पुत्री कह कर पुकारते हैं। सुमगलविलासिनी[58]

मे महाली नामक लिच्छवि कहता है,"मैं क्षत्रिय हू जैसे बुद्ध हैं। अगर उनमे ज्ञान-वृद्धि हो सकती है और लोकप्रिय हो सकते हैं तो मेरे साथ क्यो नही होना चाहिए।" जैनकल्प सूत्र मे लिच्छवि राजा चेटक की बहन त्रिशला (महावीर स्वामी वर्धमान की मां) को क्षत्राणी कहा गया है।[59]

2. लिच्छवि बहुत प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत करते थे जो विदेशी या अनार्य साधारणतया नही कर सकते। भगवान बुद्ध[60] ने इनकी तुलना तावतिस देवता'[61] (तैंतीस देवता) से की है। भगवान बुद्ध ने लिच्छवियो को सबोधित करते हुए इनकी कई जगह 'वसिष्ठ कुल के महानुभावो'[62] कहा है, इससे पता लगता है कि लिच्छवि वसिष्ठ गोत्र के क्षत्रिय थे। हम जानते हैं वसिष्ठ सूर्यवशी राजाओ के पुरोहित थे।[63]

(3) 'परमत्थजोतिका'[64] की कथा से ज्ञात होता है कि लिच्छवियो की उत्पत्ति वाराणसी के एक क्षत्रिय राजा की रानी के गर्भ से हुआ था। इससे यह बात तय हो जाती है कि लिच्छवि क्षत्रिय थे।

(4) नेपाली वशावलियो[65] तथा नेपाल के लिच्छवि राजाओ के अभिलेखो[66] में लिच्छवियो का सबध इक्ष्वाकु वश से जोडा गया है।

(5) ह्वेन त्साग भी अपनी भारत यात्रा के विवरण मे नेपाल के लिच्छवियो को क्षत्रिय कहता है।[67]

(6) नेपाल के लिच्छवि राजाओं को हम प्राय. ब्राह्मण देवी देवताओ जैसे विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, कार्तिकेय, वासुकी, लक्ष्मी और विजयश्री की पूजा करते पाते हैं।[68] ह्वेनत्साग वैशाली मे कई देव मदिर भी देखता है।[69] नेपाल के लिच्छवि राजाओ को 'भागवत पशुपति भट्टारक पादानुगृहीत'[70] जैसे उपाधि धारण करते हुए गर्व अनुभव करते हम देखते हैं। ये लिच्छवि राजा वैदिक यज्ञ का आयोजन भी करते हैं। अभिलेखो मे यज्ञ भवन[71], याज्ञिनिका[72] और वेद[73] तथा स्मृति[74] पढने का भी उल्लेख मिलता है।

उपर्युक्त साहित्यिक एव अभिलेखीय प्रमाणो, ह्वेन-त्साग के विवरणो, सस्कृत भाषा के प्रति लगाव, देवी देवताओ की पूजा मे आस्था, लिच्छवियो का क्षत्रिय विशेषकर सूर्य वशी क्षत्रिय के रूप मे उल्लेख होना इस बात का परिचायक है कि लिच्छवि, विदेशी या अनार्य नही, बल्कि आर्य क्षत्रिय थे। लिच्छवियो को आर्य क्षत्रिय सिद्ध करने के लिए एक बहुत बडा प्रमाण यह भी है कि 'लिच्छवि राजा' बिना अभिषेक किए हुए राजा नही थे 'अ-भिषिक्त' शब्द का प्रयोग हिंदू लेखको ने उन राजाओ के लिए किया है जो विदेशी जातियो के थे और यहा आकर बस गए थे। अगुत्तर निकाय मे हम लिच्छवि राजाओं को अन्य क्षत्रिय राजाओ की तरह विधिपूर्वक अभिषेक कराते हुए देखते हैं।[75] इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि बहुत से क्षत्रिय राजा लिच्छवि कुमारियों से विवाह

करने के लिए इच्छुक रहते थे और इनसे सबंध स्थापित हो जाने पर गर्व अनुभव करते थे ।[76]

वास्तव मे, उस काल के सामाजिक परिवर्तनो मे लिच्छवि अपने रक्त की शुद्धता का ध्यान रखते हुए भी प्रगतिशील विचारधारा के अग्रणी अनुयायी रहे हैं। ब्राह्मण धर्म के अनुयायी होते हुए उन्होने कुछ रूढियो को अस्वीकार किया और नवोदित बौद्ध व जैन धर्म की अच्छाइयो को ग्रहण किया।[77] उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक सम्पन्नता, गणतान्त्रिक व्यवस्था[78] व कुशल सचालन उन तमाम अवरोधो को पार कर जाती थी जो रूढिवादी ब्राह्मण व्यवस्थाकार समय-समय पर पैदा किया करते थे। जब तक लिच्छवियो की राजनीतिक प्रभुसत्ता दृढ रही, वे व्यवस्थाकार कोई आक्षेप नही कर सके। लेकिन जैसे ही उत्तर मौर्य काल मे बौद्ध-जैन अनुयायी राजाओ का पतन हुआ और ब्राह्मण राजाओ के हाथ मे सत्ता आई, उन ब्राह्मण व्यवस्थाकारो ने बौद्ध-जैन धर्म को मानने वाली तमाम देशी-विदेशी जातियो-प्रजातियो को (मनुस्मृति, 10-22) 'व्रात्य' के अतर्गत रखकर अन्य आर्येतर जातियो के साथ उनकी गणना कर दी। वस्तुत 'व्रात्य' का अर्थ विदेशी या अनार्य होना नही है।

अब हम थोडा लिच्छवि' और 'वज्जि' या वृजियो के समान अर्थ देने वाले शब्दो या वर्गों पर विचार कर लें जिसका सबध वैशाली से रहा है। कुछ स्थलो पर हम देखते हैं कि ये दोनो शब्द पर्यायवाची हैं। बुद्ध काल मे वासभ नामक एक व्यक्ति का पुनर्जन्म वैशाली के लिच्छवि राजा के यहा हुआ।[79] वज्जि-पुत्र 'वज्जि के राज प्रमुख के यहा पैदा हुआ था और उनका नाम वज्जि-पुत्र था।'[80] वज्जि-पुत्र ने वैशाली के लिच्छवि राजा के पुत्र के रूप मे बुद्ध काल मे पुन: जन्म लिया और वह वज्जियो के पुत्र के रूप मे जाना गया क्योकि उसका पिता वज्जियों में से एक था'[81] इस प्रकार के उदाहरण से विद्वानो ने मत प्रकट किया कि ये दोनो शब्द पर्यायवाची हैं।[82] लेकिन उक्त उद्धरणो से हम यह स्पष्ट कह सकते हैं कि लिच्छवि और वज्जि दो अलग-अलग इकाई है जिन्होंने अन्य गणराज्यों को मिलाकर अजातशत्रु के विरुद्ध एक सघ बनाया जिसका नाम 'वज्जि सघ' रखा और लिच्छवि-बहुल 'वैशाली' को राजधानी बनाया। इस तरह वैशाली लिच्छवियो तथा वज्जि सघ दोनो की राजधानी बनी। 'वज्जि' सघ के रूप म भी जाना जाता रहा और साथ ही अलग इकाई के रूप मे भी अस्तित्व मे बना रहा। सभवत सभी लिच्छवि अपने को वज्जि नही कह सकते थे। वज्जि सभवत लिच्छवियो से ज्यादा सम्मानजनक माना जाता था,[83] जैसा कि एक स्थल[84] पर हम पाते हैं कि कुछ युवा लिच्छवियो को भगवान बुद्ध के चारो ओर खडे देखकर लिच्छवि महानाम कहता है, "भविस्सन्ति वज्जि, भविस्सन्ति वज्जि" अर्थात् ये (लिच्छवि) वज्जि हो गए, ये वज्जि

हो गये। हो सकता है कि महानाम यहाँ यह आशा व्यक्त कर रहा हो कि ये युवा लिच्छवि भगवान बुद्ध से उपदेश ग्रहण तथा अनुसरण करके सच्चे वज्जि बन जाएगे। इस प्रकार यहा 'वज्जि' शब्द अधिक बडा तथा सम्मान बढाने वाला प्रतीत होता है। अर्थात् 'वज्जि' का अभिप्राय 'श्रेष्ठ' से लिया जाता था जैसे आर्य का अर्थ 'श्रेष्ठ जन' से भी लिया जाता है। सभवत यह शब्द मूलत उस क्षेत्र के लोगो के लिए प्रयोग होता रहा हो जो इस तराई के क्षेत्र मे बसते थे जिसे बौद्ध ग्रथों मे वज्जिरट्ठ (वृजि राष्ट्र या वज्जि देश) कहा गया है। आगे हम देखते हैं कि अजातशत्रु से पराजित होने पर[85] सघ विघटित हो गया और इसीलिए कौटिल्य अर्थशास्त्र[86] में लिच्छवि व वज्जि का उल्लेख अलग-अलग गणराज्य के रूप मे हुआ है। जिनके सदस्य राजा की उपाधि से सुशोभित होते हैं। फाह्यान[87] ने केवल 'लिच्छवियों का देश' लिखा है तो ह्वेनत्साग[88] ने वृजि और वैशाली का अलग-अलग देश के रूप में उल्लेख किया है।

उपर्युक्त आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'वज्जि' समूचे गणतन्त्र का नाम भी था और सघ मे सम्मिलित एक इकाई भी जो किसी एक क्षेत्र मे बसते थे। वैशाली से लिच्छवि व वज्जि दोनो सबधित थे जैसे ज्ञातृक, उग्र, भोग, अक्षविक, कौरव आदि वैशाली से सबध रखते थे।[89]

लिच्छवियो का मूल स्थान

लिच्छवियो की जाति की भाँति उनके आदि निवास स्थान के विषय मे भी विद्वानो मे मतभेद है। कुछ पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानो ने लिच्छवियो का आदि निवासस्थान भारत से बाहर चीन, तिब्बत व फारस माना है।

(क) खोतान सैमुअल बील[90] तथा ट्यूनर[91] आदि विद्वानो ने लिच्छवियो का आदि निवास स्थान 'खोतान' माना है। उन्होने अपने इस तर्क का आधार फाह्यान के यात्रा व विवरण से दिया है। वे लिखते हैं :

> जब फाह्यान का दल 'खोतान' पहुचा तो वहाँ के राजा ने उनका स्वागत किया। इस 'खोतान' की पहचान तिब्बती लेखक तिब्बत के 'लिन्याल' से करते हैं और इसका सबध वैशाली के लिच्छवि से जोडते हैं। चीनी भाषा मे 'लि' का अर्थ शेर होता है। कोमा कोरासि कहते हैं कि तिब्बती लेखक अपने प्रथम राजा (लगभग 250 ई पू. मे) लिस्मार्विसिस या लिचाविस से होना कहते हैं।[92]

लेकिन हम जानते हैं कि भारत मे यूची जाति का प्रवेश बहुत बाद मे प्रथम ईसा पूर्व[93] मे हुआ जबकि छठी शती ई. पू मे लिच्छवियो को एक बहुत प्रसिद्ध राजनीतिक शक्ति के रूप मे वैशाली क्षेत्र मे स्थापित पाते हैं। जहां तक 'खोतान' का प्रश्न है, सभवत अजातशत्रु से पराजित होने पर लिच्छवि

नेपाल और वही से उनकी एक शाखा बाद मे खोतान पहुच गई होगी ।[94] और हम जानते हैं कि अशोक ने बहुत सारे भिक्षुओ को नेपाल और उसके आगे धम्म प्रचार के लिए भेजा था ।[95]

(ख) ईरान डा सतीशचन्द्र विद्याभूषण[96] ने लिच्छवियो का आदि निवास स्थान फारस (ईरान) के निसिबि' नगर बताया है और यही से छठी शती ई पू भारत म आकर लिच्छवियो के बसने का अनुमान लगाया है । उनका मत है कि मनुस्मृति मे प्रयुक्त निच्छवि' शब्द वास्तव म निसिबि' का भारतीय रूप है जो पालि भाषा म जाकर लिच्छवि' बन गया ।

लेकिन इस तर्क का आधार ही गलत है । वास्तव म मनुस्मृति म प्रयुक्त शब्द 'लिच्छवि' ही है । कुल्लूक भट्ट ने इसे 'निच्छवि गलत पढा था इसका शुद्ध पाठ विमलचरण ला[97] तथा मनुस्मृति के अन्य अधिकारी विद्वान जैस जोली,[98] ब्यूलर[99] आदि ने किया । दूसरे, ईरानी इतिहास म लिच्छवि जनो का कोई उल्लेख नही मिलता और लिच्छवि जाति में ईरानी सस्कृति के विशिष्ट तत्व अज्ञात हैं उदाहरणाथ लिच्छविया की दिलचस्पी ईरानी धर्म मे नही भगवान बुद्ध और महावीर के उपदेशो म थी ।[100] महापरिनिब्बासुत्त[101] के अनुसार भी छठी शती ई पू लिच्छवि वैशाली क्षेत्र मे एक बहुत सभ्य और सुसगठित जाति के रूप म प्रतिष्ठित थी । विद्याभूषण के अनुसार ये छठी शती ई पू अस्तित्व मे आते हैं । अत लिच्छविया का आदि निवासस्थान चीन तिब्बत या ईरान म खोजना किसी प्रकार भी समीचीन नही लगता है ।

भारतीय उत्पत्ति

कुछ विद्वान लिच्छवियो का मूल निवास स्थान वैशाली स अलग भारत के किसी अन्य भाग को मानते है जिन्होने बहुत पहले कभी वैशाली मे आकर अपना निवास स्थान बनाया ।

(क) हिमालय क्षेत्र श्यामाचरण चक्रवर्ती[102] तथा श्रीराम गोयल[103] ने लिच्छवियो का आदि निवास स्थान हिमालय क्षेत्र माना है और इस आधार पर आर्येतर जातियो स इनका सबध जोडा है । अपने तर्क मे उन्होंने लिच्छवियो के धर्म और रीति रिवाजो को प्रस्तुत किया है ।

लेकिन इस तरह के तर्क अत्यत ही दुर्बल हैं जैसा कि पीछे इनकी मीमासा करके स्पष्ट किया जा चुका है कि लिच्छविया मे प्रचलित सभी रीति रिवाज वैदिक काल क आर्यो म भी प्रचलित थे ।[104]

(ख) पजाब जे पी शर्मा[105] का मत है कि लिच्छवि इण्डो आय परिवार की एक ऐसी शाखा के थे जो मूलत किसी अन्य नाम से जानी जाती थी । उनके अनुसार यह ब्राह्मण काल म पजाब अथवा किसी पश्चिमोत्तर प्रदेश'

से हिमालय की तराई वाले मार्ग से आकर कोसल और शाक्य जनपद होते हुए वैशाली मे आकर बसी। और नेपाल की तराई मे रहते समय यह लिच्छवि नाम से विख्यात हुई होगी।

लेकिन यह मान्यता कि पजाब से आकर बिहार मे बसने वाली कोई जाति पर्वतीय मार्ग से होकर आई थी, बडी विचित्र लगती है। पश्चिमोत्तर प्रदेश से आने वाली आक्रामक जातियो मे से किसी ने कभी यह मार्ग शायद नहीं अपनाया। स्वय शर्मा महोदय भी अपने इस मत मे विशेष श्रद्धावान नही लगते क्योकि एक जगह वह लिच्छवियो को 'मध्य देश'[106] के ब्राह्मणो (आर्यों) की एक शाखा बताते हैं।

(ग) वैशाली अधिकाश विद्वानो[107] ने लिच्छवियों का आदि मूल स्थान वैशाली भूमि ही माना है। अपने तर्क के समर्थन में इन विद्वानो ने बहुत से ऐतिहासिक तथ्यो तथा साहित्यिक प्रमाणो को प्रस्तुत किया है जिसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं।[108]

'खुद्दक पाठ' पर बुद्धघोष द्वारा लिखित 'परमत्थजोतिका' नामक टीका से ज्ञात होता है कि लिच्छवि परिवार मे बराबर वृद्धि होने के कारण इस क्षेत्र का नाम वैशाली पडा।[109]

बाल्मीकि रामायण[110] मे इक्ष्वाकु के पुत्र विशाल द्वारा वैशाली के बसाए जाने का उल्लेख है। पुराणो[111] मे भी वैशाली की स्थापना की कहानी का उल्लेख है। सतीशचन्द्र सरकार[112] भी लिच्छवियो का सबध इक्ष्वाकु वश से जोडते हुए वैशाली को ही उसका मूल निवास स्थान मानते हैं।

इस प्रकार उक्त विश्लेषणो मे किसी भी साक्ष्य द्वारा लिच्छवियो का बाहर से आना सिद्ध नही होता है। इसके विपरीत अन्य बहुत से साक्ष्य अप्रत्यक्ष रूप से लिच्छवियो का मूल निवास स्थान वैशाली की ओर सकेत करते हैं। अत हम इसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि लिच्छवियो का मूल स्थान उत्तर बिहार के इसी क्षेत्र मे कहीं रहा होगा। वैशाली क्षेत्र मे अच्छी तरह स्थापित हो जाने पर लिच्छवियो ने वैशाली को अपने राज्य की राजधानी बनाई।

वैशाली नगर

ऐतिहासिक नगरी वैशाली का उल्लेख अति प्रसिद्ध प्राचीन महाकाव्य बाल्मीकि रामायण[113] तथा महाभारत[114] म मिलता है। बाल्मीकि रामायण में इसकी स्थापना के उल्लेख हैं। यहां कहा गया है कि इक्ष्वाकु की रानी अलम्बुषा के पुत्र विशाल ने इसी स्थान पर एक नगरी की स्थापना की जिसका नाम विशाला पुरी रखा।[115] इसके अनतर विशाल से लेकर रामचन्द्र के समकालीन राजा सुमति तक की वंशावली दी गई है। बाल्मीकि रामायण[116] म ही उल्लेख है कि राम और

लक्ष्मण ने विश्वामित्र के साथ मिथिला जाते हुए गगा पार करने के बाद एक रात यहा विश्राम किया था। राजा सुमति ने उनका विशेष आदर सत्कार किया था। पुराणो[117] मे भी इसकी स्थापना की कहानी मिलती है। वैशाली के राजाओ की सूची वायु, विष्णु, गरुड तथा भागवत पुराण मे दी गई है। सभी साक्ष्यो मे सुमति को इक्ष्वाकु वश का अनिम राजा बताया गया है। लेकिन इन पुराणो व महाकाव्यो म इतिवृत के अतिरिक्त उनके वैभव व विस्तार की चर्चा कही नही है और न ही कही वैशाली का भौगोलिक चित्र ही उपलब्ध है। बाल्मीकि रामायण से केवल इतना ज्ञात होता है कि वैशाली गगा के उत्तरी किनारे पर स्थित था।[118]

प्रत्यक्ष रूप से महाभारत मे गणतत्र के रूप मे वैशाली का कही उल्लेख नही है। लेकिन महाभारत[119] के दो महत्त्वपूर्ण अध्यायो मे कई प्रजापतियो की शक्ति और उनकी कमजोरियो का उल्लेख मिलता है। सभवत सुमति के पश्चात् वैशाली क्षेत्र कई प्रजातियो म विभाजित हो गया और इस प्रकार इनके प्रमुखो का कोई विशेष स्थान इतिहास मे नही रह गया जिसके कारण महाभारत के सकलन-कर्त्ताओ ने ग्रथ म इनके नाम का अलग से उल्लेख करना आवश्यक नही समभा। सभव है कि इनके गणतत्र का रूप काफी प्रारभिक अवस्था मे रहा होगा जिनकी व्यवस्था मे बहुत सारी कमिया रही होगी जिस ओर महाभारत म भीष्म ने इगित किया है।[120]

वैशाली के अस्तित्व का उल्लेख परोक्ष रूप मे महाभारत मे हुआ है। महाभारत म एक 'भद्रा वैशाली' राजकुमारी का उल्लेख है।[121] जिसका सबध कारुप चेदि के शिशुपाल और मथुरा तथा द्वारका के वसुदेव की पत्नी के रूप मे मिलता है। (सतीशचन्द्र सरकार की राय मे भद्रा वैशाली सभवत इनमे से किसी एक की पत्नी थी)। जब वह वैशाली से द्वारका जा रही थी तो शिशुपाल ने उसका अपहरण (शक्ति या प्रभाव द्वारा) कर लिया था[122] लेकिन (कारुप और वसुदेव का यहां कोई उल्लेख नही है) जिसका उपभोग उसके मौसा राजा कारुप ने किया था। इसतरह वसुदेव और उसके साले शिशुपाल का भद्रा वैशाली पर बराबर का अधिकार बना रहा था। इस प्रकार वह या तो वसुदेव कारुप और शिशुपाल की सयुक्त पत्नी थी या कारुप और शिशुपाल मे किसी एक की विधवा थी जो अत मे वसुदेव के अधिकार म आई। वसुदेव की मृत्यु के पश्चात वह उनकी अन्य प्रिय पत्नियो (देवकी, रोहिणी, पौरवी और मदिरा) के साथ अग्नि म प्रवेश कर सती हो गई।[123] इस प्रकार यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है कि भद्रा वैशाली एक लडकी थी या इस नाम की तीन अलग-अलग लडकिया थी। महाभारत मे ही एक जगह उल्लेख मिलता है कि भारत युद्ध म वैशालेया भोगिन ' जिसे नाग कबीले का 'नाग' सरदार कहा गया है, ने

अर्जुन की सहायता की थी।[124] लेकिन 'भोगिनः' 'राजन' भी होते थे (सभवत नाग कुमार इजिप्ट के सम्राट की तरह) नाग चिह्न (सर्प-शीर्ष चिह्न) का मुकुट पहनने के कारण 'भोगिन' या भोज कहे जाते थे। यहा वैशाली के 'भोगिन.' या 'राजन' बहुवचन म उल्लिखित है।[125]

महाभारत के भौगोलिक वर्णन से ज्ञात होता है कि एक विशाला नदी वैशाली के पास से गुजरती थी जो गण्डकी नदी की एक शाखा थी।[126] यह नदी गया क्षेत्र मे दूसरी सरस्वती की तरह ही पवित्र मानी जाती थी।[127]

सुमति के बाद प्राचीन ब्राह्मण ग्रथो मे वैशाली का उल्लेख न मिलने के कारण हम अनुमान लगा सकते हैं कि यह मिथिला का अग बन गया।[128] और इसकी सभावना अधिक है कि मिथिला मे जब राज्यक्राति हुई और वहा शासन-तत्र बदला[129] तो वैशाली मे भी प्रजातात्रिक व्यवस्था स्थापित हो गई होगी। वैशाली मे राजतत्र से प्रजातत्र अपनाए जाने के पीछे एक कारण यह भी हो सकता है कि राजघराने के अधिकाश लोग व्यापार मे आ गए हो। लेकिन साथ ही उन्होंने शासन करने का अपना जातीय अधिकार न त्यागा हो, और आपस में कलह न पैदा हो इसलिए कुलीनतत्रीय व्यवस्था कर ली हो। सभवत इसी-लिए उस कुल से सबधित सभी सदस्य अपने को 'राजा' कहते थे। मार्कण्डेय पुराण[130] में एक कथा है कि राजा नाभाग ने वैश्य कन्या से विवाह किया था जिससे उसका वश वैश्य हो गया, जबकि विदेह के राजा क्षत्रिय ही रहे। इस तरह अर्थसचय और शासन करने की भावना के कारण व्यवस्था का स्वरूप कालातर में प्रजातात्रिक हो गया हो।

बौद्ध ग्रथ[131] वैशाली की एक अलग ही कहानी प्रस्तुत करते है। इनके अनुसार यह लिच्छवियो द्वारा बसाई गई थी। बाद में लिच्छवि परिवार की निरतर वृद्धि होने के कारण इसे तीन बार विशाल करना पडा जिसके कारण यह क्षेत्र वैशाली के नाम से जाना जाने लगा।

इस तरह इस क्षेत्र का नाम और इसकी स्थापना की दो अलग-अलग कहानी ब्राह्मण और बौद्ध ग्रथ प्रस्तुत करते हैं। प्रथम के अनुसार इसकी स्थापना राजा विशाल ने की थी और इस कारण उसका नाम 'वैशाली' पडा था, द्वितीय के अनु-सार इसकी स्थापना (परमत्थजोतिका की कथानुसार) लिच्छवियो ने की थी और अपने विस्तृत क्षेत्र के कारण इनका नाम वैशाली पडा था। इन दोनो व्याख्याओ का आधार 'विशाल' शब्द है। इसके अतिरिक्त इसके नामकरण की अन्य सभावनाए भी हमें मिलती हैं। श्री वी रगाचार्य[132] ने सुझाव दिया है कि यह क्षेत्र विश या वैश्य बहुल था इसलिए इसका नाम वैशाली पड गया होगा। श्री योगेन्द्र मिश्र महाभारत[133] का सदर्भ देते हुए सुझाव देते हैं कि विशाला नाम की नदी के कारण इस क्षेत्र का नाम वैशाली पडा।[134] या यह भी सभव है

कि इस क्षेत्र में साल वृक्षों की अधिकता होने के कारण इस क्षेत्र का नाम वैशाली पड़ा।[135] वैशाली क्षेत्र में एक वन 'गोसिंग साल वन' नाम से पुकारा जाता था।[136] गण्डक नदी का एक नाम 'शाल ग्रामी' है क्योंकि यह शालग्राम (नेपाल में) से गुजरती है। यहा ज्यादा सख्या में साल वृक्ष व शालग्राम पत्थर पाए जाते हैं। शाल का एक अर्थ प्राकार (दीवार) भी है।[137] हम वैशाली के बारे में जानते हैं कि यह शहर तीन प्राकारो (दीवारो) से घिरा था जिनके बीच की दूरी 'गव्यूत' थी। अत सभव है इस कारण इसे वैशाली कहा जाने लगा हो।[138] इस प्रकार इसके नामकरण के सबध में कोई निश्चित मत नही व्यक्त किया जा सकता है।

अतिम तीर्थंकर महावीर[139] वैशाली के कुण्डपुर (आज इसे वासो कुण्ड कहते हैं) में पैदा हुए थे। यही पर उनके कुमार काल के तीस वर्ष व्यतीत हुए थे और यही पर वैराग्य उत्पन्न होने पर उन्होने ज्ञातृवन खण्ड में प्रवज्या धारण की थी।[140] वह भी वैसालिक या वैसालिय कह कर पुकारे जाते थे। महावीर की मा त्रिशला[141] (लिच्छवि राजा चेटक की बहन) को भी 'विदेहदिना' और 'विदेहदत्ता' कह कर पुकारा गया है। महावीर ने अपने प्रवज्या काल में द्वादश वर्षावास (12 वर्षाऋतु) वैशाली और वाणिज्यग्राम में बिताए थे।[142]

भगवान बुद्ध इस जगह की बारबार प्रशसा किया करते थे और इस जगह जल्दी-जल्दी आने की इच्छा व्यक्त किया करते थे।[143] 'महावस्तु'[144] से ज्ञात होता है कि जब वैशाली म भीषण रूप से महामारी का प्रकोप फैला हुआ था तब उससे मुक्ति पाने के लिए लिच्छवियो ने अपने एक प्रमुख तोमर देव के अधिनायकत्व में एक दल भगवान बुद्ध को सादर वैशाली लाने के लिए राजगृह भेजा था। भगवान बुद्ध ने मगधराज बिम्बिसार से सहमति लेकर लिच्छवियो के राजा के इस साधु प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। मगधराज ने अपने राज्य की सीमा (गगा किनारे) तक के पथ को साफ करा कर दोना किनारो को फूलों तथा पताकाओ से सुसज्जित कराया और स्वय भगवान बुद्ध को सीमा तक विदा करने गए थे। गगा के दूसरी ओर वैशाली के लिच्छविगण अपनी सीमा को तोरण-द्वारो से सजाकर उनके स्वागत के लिए खडे थे। कहा जाता है कि भगवान बुद्ध ने जैसे ही गगापार करके उत्तरी तट पर पदार्पण किया सपूर्ण वज्जि प्रदेश से महामारी विलीन हो गई।

एक अन्य स्थल पर उल्लेख मिलता है कि जब भगवान बुद्ध उधर से गुजरे थे तो अपने शिष्यो से उन्होने कहा, 'तथागत का यह वैशाली दर्शन अतिम बार है।'[145] एक बार भगवान बुद्ध वैशाली मे एक सरोवर के किनारे बैठे थे कि कही से एक बदर उनके समीप आया और उसने शहद से भरा एक कटोरा (भिक्षा-पात्र) उन्हे भेंट किया। यह पोखर बाद मे बौद्ध ससार मे 'बदर-पोखर' के नाम से विख्यात हो गया।[146] इसी तरह की एक और घटना बौद्ध ससार में

अपना स्थान रखती है। भगवान बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द और महा-प्रजापति गोमती के कई बार आग्रह करने पर नारी को भिक्खुनी बनाने की अनुमति दे दी।[147] भगवान बुद्ध ने वैशाली को अंतिम बार छोडते समय लिच्छवियों से बहुत अधिक प्रसन्न होकर अपना भिक्षापात्र लिच्छवियों को भेंट स्वरूप दे दिया।[148] इसकी पुष्टि फाह्यान और ह्वेनसांग के विवरण में भी होती है।[149] एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना भी वैशाली से जुडी हुई है। ऐसा माना जाता है कि भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 100 वर्ष बाद वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया था जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म प्रथम बार संघ के रूप में कार्य करने लगा।[150]

वैशाली नगर के क्षेत्रफल के संबंध में जातकों में विवरण दिए गए हैं। इसके अनुसार यह नगर तीन ओर से प्राचीरों से घिरा था, एक प्राचीर से दूसरी प्राचीर गव्यूति' की दूरी पर स्थित थी। हर प्राचीर में विशाल प्रवेश-द्वार एवं घटाघर थे।[151]

ह्वेनसांग[152] लिखता है कि संपूर्ण राज्य का क्षेत्रफल 5000 ली है। यहां बौद्ध और बौद्धेतर दोनों वर्ग मिलकर रहते हैं। कई संघाराम हैं परंतु सभी खण्डहरावस्था में हैं। कुछेक मंदिर देवताओं के हैं जिनमें उनके मतानुयायी उपासना करते हैं। जैन धर्मानुयायी काफी संख्या में हैं। पुराने नगर का घेरा साठ सत्तर ली तथा राजप्रासाद का घेरा चार-पांच ली है। राजधानी से पश्चि-मोत्तर दिशा में पांच-छ ली की दूरी पर एक संघाराम है। इनमें कुछ भिक्षु रहते हैं जो संमतीय संस्था अनुसार हीनयान संप्रदाय के अनुयायी हैं।

कनिंघम[153] ने ह्वेनसांग के विवरण का हवाला देते हुए राजप्रासाद का क्षेत्रफल एक मील = 5 925 या छ ली अर्थात् 4—5 ली = एक मील से कम या 3500 से 4400 फीट माना है। खुदाई करने पर यहां उत्तर से दक्षिण में 580 फीट लंबा तथा 750 फीट चौडा अर्थात् 4660 वर्ग फीट क्षेत्रफल का खण्डहर है। 1913—14 के उत्खनन से यह निश्चित पक्का हो गया है कि यही लिच्छवियों की राजधानी थी।[154]

योगेन्द्र मिश्र[155] ने ह्वेनत्सांग के विवरण के अनुसार गणना करके पूरे नगर का क्षेत्रफल नौ वर्ग मील तथा केंद्रीय क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग एक वर्ग मील से कम माना है।

इस प्रकार हम वैशाली नगर का कुल क्षेत्रफल 9—12 वर्ग मील के लगभग होने का अनुमान लगा सकते हैं।

एकपण्ण जातक के अनुसार वैशाली में 7707 राजा, उतने ही उपराजा, सेनापति और भण्डागारिक के रहने के लिए भवन, चैत्य व महल थे।[156] वैशाली में खूबसूरत उद्यान, उपवन तथा कमल के सरोवर थे जहां हमेशा

पक्षियो[157] की चहचहाहट हुआ करती थी। नगर हमेशा समृद्धि सपन्न और जनसकुल रहता था।[158] नगर का वैभव शक्र लोक के समान थी जहा सुख और शाति व्याप्त रहती थी।[159] हमेशा कोई न कोई त्योहार-उत्सव हुआ करता था।[160] वैशाली म घूमते हुए एक बौद्ध भिक्षु छत्रगिया कहता है, 'ऐसा वैभव उसने कभी नही देखा, तब भी जब वह तावतिंस (तैंतीस) देवताओ के बीच मे था।[161] वैशाली मे सैकडो खूबसूरत स्थलों को देखकर महात्मा बुद्ध अनायास ही एक जगह कह उठते हैं, 'कितनी खूबसूरत जगह है आनन्द! उदयन चैत्य, गौतम चैत्य, सप्ताम्रक चैत्य, बहु पुत्रक चैत्य, सारदद चैत्य तथा चापाल चैत्य हमे कैसे आकर्षित कर रहे हैं।[162] इन सभी स्थानो को लिच्छवियो ने बौद्ध सघ को अर्पित कर दिया था।

तिब्बत दुल्व के अनुसार वैशाली तीन भागो मे विभाजित था जिसके प्रथम भाग मे 7000 स्वर्णकलश वाले, मध्य मे 14000 रजत कलश वाले तथा अतिम भाग मे 21000 ताम्र कलश वाले भवन थे।[163] ये उनके स्तर के अनुसार उच्च मध्य व निम्न वर्ग के रहने के लिए होते थे।[164] इस तरह का विवरण हमे गिलगित मैनुस्क्रीप्ट[165] में भी पढने को मिलता है। जैनियो के अनुसार वैशाली मे तीन जातियो (क्षत्रिय, ब्राह्मण और वणिक) के अलग-अलग उपनगर थे।[166] नगर के एक ओर हिमालय पर्वत की श्रेणिया हैं जहा एक प्राकृतिक महावन' था।[167] फाह्यान के यात्रा विवरण स भी यह स्पष्ट हो जाता है, 'नगर के उत्तर म एक विशाल वन है जिसमें दो गलियारो वाले विहार हैं जहा भगवान बुद्ध निवास किया करते थे। इसी स्थान पर प्रिय शिष्य आनन्द के आधे शरीर के अस्थि अवशेष पर एक स्तूप बना था।[168] दो गलियारे वाले विहार जैसे 'कूटागार शाला कहते थे, देव विमान के सदृश्य थे।[169] ह्वेन त्साग के समय तक यह स्थान खण्डहर म परिवर्तित हो चुका था।[170] जैन परपरा हमे वैशाली के विषय म एक अन्य सूचना देता है कि वैशाली नगर मुख्यत तीन मुख्य खण्डो—मुख्य वैशाली, कुण्डग्राम व वाणिज्य ग्राम तथा कुण्ड ग्राम के उत्तरपूर्व मे कोल्लाग (उपनगर) था।[171] वैशाली मे कम से कम 52 सरोवर थे जिसमे से कुछ आज भी विद्यमान हैं जैसे, बावन पोखर, घोघा पोखर, खरौना पोखर (जनश्रुति के अनुसार यही अभिषेक पुष्करणी), गगा सागर आदि।[172]

वैशाली की जनसख्या के विषय मे कोई निश्चित जानकारी हमे उपलब्ध नही है। केवल महावस्तु[173] अनुसार बोधि प्राप्त करने के पश्चात् प्रथम बार जब भगवान बुद्ध वैशाली आए तो 168000 वैशालियो (जिनम आधे नगर के भीतरी क्षेत्र और आधे बाह्य क्षेत्र से अर्थात् 84000+84000 नागरिक) ने उनका स्वागत किया था। लेकिन हम इस सख्या को विश्वसनीय नही मान सकते हैं क्योंकि 84 का अक, देवी सूचक अक है जो कई रूपो मे कई जगह प्रयुक्त हुआ

है।[174] उदाहरण के लिए एकपण्ण जातक मे उल्लिखित 7707 राजा, 7707 उपराजा 7707 सेनापति, 7707 भाण्डागारिक का आपसी जोड (7+7+7=21×4=) 84 आता है, इसी तरह तिब्बती दुल्व के अनुसार भवनो की सख्या 7000 स्वर्ण कलश, 14000 रजत कलश तथा 21000 ताम्र कलश वाले भी दूसरे अक पर आधारित सख्या (7+14+21)=42 है इसी तरह का अक 'महावग्ग' मे दिए वर्णन मे भी है।[175] इसके अतिरिक्त हमे वैशाली की जनसख्या की सरचना के विषय मे अन्यत्र कही वर्णन नहीं मिलता है। हम विभिन्न ग्रथो[176] में वैशाली की सरचना के विषय में वर्णन के आधार पर केवल इतना ही कह सकते हैं कि वैशाली हर तरह से खुशहाल, मनोरजन से परिपूर्ण सपन्न नगर था।

वज्जि सघ की राजधानी वैशाली की पहचान कराना विद्वानो के लिए एक समस्या रही है। कुछ विद्वान पहले इसकी पहचान इलाहाबाद[177] और कुछ छपरा जिले से सात मील दक्षिण 'चिराद'[178] (सारन जिला, बिहार के अतर्गत आता है) से करा रहे थ। लेकिन सर्वप्रथम कनिघम ने ह्वेनसाग के यात्रा विवरण से मेल कराते हुए मुजफ्फरपुर से चालीस कि मी दक्षिण तथा हाजीपुर से पैंतीस कि मी पूर्व स्थित बसाढ (खसरा-खतौनी में दर्ज बसाढ बनिया) नामक गाव से कराया।[179] बाद में वि ए स्मिथ ने इस पहचान को बहुत वैज्ञानिक ढग से प्रमाणित भी कर दिया कि यही प्राचीन वैशाली थी।[180] 1945 ई में इसका नाम पुन. वैशाली रख दिया गया।

कनिघम ने वैशाली क्षेत्र पर प्रकाश डालते हुए लिखा है 'वैशाली गण्डक के पूर्व में स्थित थी। इसकी पहचान अब बसाढ से की जा चुकी है यहा एक पुराना गढ है जिसे 'राजा विशाल का गढ' कहकर पुकारते है। ये प्राचीन वैशाली के सस्थापक माने जाते हैं। अबुल फज़ल के 'आइने अकबरी' (ग्लाडविन द्वारा अनुदित, II, 198) में भी यही नाम लिखा है। वैशाली के राजा के रहने का मुख्य स्थान चार या पाच मील (एक मील से कम या 3500 से 4400 फीट) वर्ग क्षेत्र में था। 'गढ' उत्तर से दक्षिण में 1580 फीट लबा तथा गढ की बीच की चौडाई 750 फीट अर्थात पूरा गढ 4660 वर्ग फीट के क्षेत्र मे फैला है। 1903-04 मे टी. ब्लोच[181] द्वारा इस क्षेत्र का सर्वप्रथम उत्खनन किया गया जिसमें बहुत बडी मात्रा में जैन व अन्य हिन्दू देवी-देवताओ की मूर्तिया तथा गुप्तकालीन मुहरा (जिस पर 'तीर-कुमारामात्यधिकरणस्य' 'वैशाल्यधिष्ठानाधिकरण') आदि अकित हैं, के मिलने से यह विश्वास पक्का हो गया कि यही प्राचीन वैशाली रही होगी। गुप्त काल में यह क्षेत्र 'तीरभुक्ति' के अतर्गत आता था। फूशे[182] महोदय के अनुसार बारहवी शताब्दी के दो हस्तलिखित ताड़पत्रों पर 'तीरभुक्ति वैशाली तारा' लिखा है जिसस सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वैशाली बारहवी

शताब्दी तक तिरहुत के अतर्गत रहा होगा। इसी तरह 1913-14[183] के उत्खनन में कुछ और गुप्तकालीन मुहरो का मिलना तथा 1958-59[184] में अल्तेकर के निरीक्षण में हुए उत्खनन में चीनी यात्री द्वारा वर्णित लिच्छवियो द्वारा निर्मित भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष पर बना हुआ स्तूप मिल जाने से इसकी प्रामाणिकता सार्वभौम रूप से स्वीकार कर ली गई है। इस स्थान पर किए गए उत्खनन स्पष्ट रूप से प्रामाणित कर देते हैं कि इस क्षेत्र पर मौर्यों, कुषाणो, शुगो तथा गुप्त शासकों का आधिपत्य रहा होगा। साहित्यिक प्रमाणो के अनुसार वैशाली तीनो ओर से प्राचीरो से घिरी थी। इन तीन में से दो दीवारो का घेरा आज खण्डहर के रूप में दिखाई पडते हैं।[185]

सदर्भ तथा टिप्पणियां

1 पालि साहित्य तथा कुछ बौद्ध ग्रथो में, उदाहरणार्थ, दिव्यावदान 5055-56, 136 ' पेत वत्थु (राहुल, कौसल्यायन एव कश्यप द्वारा सपा) (1937) पृ 40-41, ‹5-50 द जातक (कावेल द्वारा सपा) (1957) भाग 1, पृ 316 भाग 4, पृ 4 बील-बुद्धिष्ट रिकार्डस (लण्डन 1884) भाग 2, पृ 67, पा छि विमलचरण ला— सम जैन कानिकल्स (धर्म विहित) सूत्र (बबई 1949) पृ 103 जैकोबी—जैनसूत्र, पृ 266, पा टि . डायलाग्स, खण्ड 2, पृ 187, 190। रॉकहिल—द लाइफ आफ द बुद्ध (लण्डन 1907), पृ 97 और आगे वाटर्स-आन ह्वेन-त्साग ट्रैवल, (लण्डन 1907) पृ 97 भाग 2, पृ 77 कुछ चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्के (दिनेश चन्द्र सरकार, सेलेक्टेड इन्सक्रिप्शन्स बीयरिंग आन इडियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजशन (कलकत्ता 1942) भाग 2, पृ 254. स्मिथ ज. रा. ए सो (1889) पृ 63 अनन्त सदाशिव अल्तेकर, कैटलाग आफ द गुप्त गोल्ड क्वाइन्स इन द बयाना होर्ड (बबई 1954) पृ 2-3, 6 और गुप्तकालीन मुद्राए (पटना 1954) पृ 24 25, जे एलन कैटलाग आफ द क्वान्स आफ द गुप्त डायनस्टीज एण्ड आफ शशाक, किंग आफ गौड (लण्डन 1914) पृ 18 (लिच्छवय सिक्को पर बहुवचन का प्रयोग किया गया है) कुछ गुप्त अभिलेखों में, उदाहरणार्थ समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति, चन्द्रगुप्त द्वितीय का मथुरा शिलालेख, कुमार गुप्त के स 96 का बिल्साद शिला स्तभ लेख और स्कन्दगुप्त का बिहार शिलालेख (स्तभ) (फ्लीट, कारपस इन्सक्रिप्शन्स इन्डीकरम,) भाग 3, इन्सक्रिप्शन्स आफ द अर्ली गुप्त किंग्स एण्ड दियर सक्सेसर (कलकत्ता 1888), पृ 8, 26, 43 59 क्रमश दिनेशचन्द्र सरकार, वही, पृ 259, 278, 318), कुमार गुप्त द्वितीय या तृतीय का भीतरी लेख तथा प्रभावती गुप्त का पूना ताम्रपत्र लेख (दि च सरकार, पृ 263 321 तथा 412 क्रमश), नेपाल के लिच्छवि राजाओ का अभिलेख शिवदेव प्रथम का मदगांव अभिलेख, बुद्ध नीलकठ लेख, ध्रुवदेव का थानकोट लेख, भीमार्जुनदेव का लगन टोला लेख, नरेन्द्रदेव का लगन टोला लेख, शिवदेव का चांगनारायण लेख, भीमार्जुनदेव का वलबू लेख, बसोनागुठी लेख. (नोली लेख क्रम सं 24, 27, 51 58 77, 55, 61, 62, क्रमश),

2 महावस्तु भाग 1, पृ 254 और आगे, 261 और आगे 270, 271, 289, 290, 295, 297, 299, 300 वाटर्स, आन ह्वेन-त्सांग, भाग 2, पृ 77
3 सूत्रकृतांग से बु ई, भाग 45 पृ 321 टिप्पणी, ला, वही, पृ. 3, जैकोबी, वही, पृ 266 टि
4 जैन भाष्यकार द्वारा, ईस्ट सी , 22, पृ 266 टि
5 कौटिल्य अर्थशास्त्र (XI 1 5 6) कुछ गुप्त अभिलेखों में, जैसे एक स्कन्दगुप्त का भीतरी शिला स्तम अभिलेख व समुद्रगुप्त का गया ताम्रपत्र अभिलेख (फ्लीट पृ 53 व 256 क्रमश), सरकार दि च द्र वही, पृ 313 व 265 क्रमश) मेधातिथि तथा गोविन्दराज ने मनुस्मृति (x 22) में लिच्छवि' पढ़ा जिसके लिए देखिए, ब्यूलर' द ला आफ मनु से. बु इ , 25 (आक्सफोर्ड 1886) पृ 406, टिप्पणी
6 कुल्लूक भट्ट तथा राघवानन्द ने मनुस्मृति (x 22) में पढ़ा
7 नन्दनाचार्य ने मनुस्मृति (x 22) में पढ़ा (ब्यूलर, वही पृ 406 टिप्पणी)
8 मनुस्मृति (x 22) के कश्मीरी टीकाकार (ब्यूलर, वही, पृ 406 टिप्पणी.
9 रामनाथ शास्त्री, कौमुदी महोत्सव, पृ 3 मगध कुल वैरिभि म्लेच्छैलिच्छवि
10 हिन्दू पालिटी (1924) भाग 1 पृ 184
11 वे अभि ग्रथ, पृ 66 टिप्पणी त्रिवेद, वही पृ 32
12. ला, वही, पृ 17 21 पा सो (स्मिथ द्वारा सम्पा) पृ 158-60,
13 झा, वही, पृ 9
14 विद्याभूषण, जे एस बी 8 भाग 1 नोली 2, इ ए (1908) पृ 78 80 स्पूनर का सुझाव भी इसी मत की ओर था अ स इ अ रि (1913 14), पृ 118 20 ज ए सो ब भाग 71, (1902) पृ 142 30
15 ला वही पृ 29 तथा आगे, जोली मनुस्मृति (x 22), पृ 230, ब्यूलर द लॉ आफ मनु x 22 पृ 406, टिप्पणी, योगेन्द्र मिश्र वहीपृ 107 बंगाली भाषा में सामान्यत ल का न उच्चारण हो जाता है। यह गलत पाठ इसी कारण बंगाली टीकाकार से हो गया था। (आर डी बनर्जी द ओरिजिन आफ द बंगाली स्क्रिप्ट कलकत्ता विश्वविद्यालय, पृ 82, 108-109)
16 बील, वही, 2 (1884), पृ 66 और आगे द लाइफ आफ ह्वेन-त्सांग, (लण्डन, 1911) पृ 22 24 होम्सन ने भी लिच्छवियों को सीथियन से सबधित कहा है (कलेक्टेड एसेज, टूबनर सस्क पृ 17) लाइफ आफ ह्वेन त्सांग (पृ XXIII) पर उद्धृत,
17 ब मिथिला, पृ 114, त्रिवेद, प्राङ् मौर्य बिहार, पृ 43
17 ब मिथिला, वही त्रिवेद, प्राङ् मौर्य बिहार वही
18 जे एफ. हेविट, 'नोट्स आन द अर्ली हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया ज रा ए सो , (1888) पृ 356-359 (तर्क के लिए) हेविट, ज रा ए सो (1889) पृ 262
19 योगेन्द्र मिश्र , वैशाली, पृ 108
20 द अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया चतुर्थ सस्करण, पृ 172-73 तिब्बतन एफिनिटिज आफ द लिच्छविज, इ ए भाग 32 (1903) पृ 233-235,
21 वाशम—द वण्डर दैट वाज इंडिया (लन्दन, 1954) पृ 40 दिनेशचन्द्र सरकार, वै अभि ग्र , पृ 173
22 क्षत्रिय क्लान्स पृ 29-32.

23 हिंदू पालिटी पृ 174 177
24 पो हिस्ट्री प, 122 टिप्पणी 2
25 अ अथर्ववेद संहिता (ह्विटिने द्वारा अनूदित और—मैमन द्वारा हावर्ड ओरिंटल सीरिज आठ (1905) पृ 840-41 म संपादित अथर्ववेद संहिता रोथ एण्ड ह्विटिने पृ 239, मिथिला पृ 112 लिच्छवि प 5
25 ब आपस्तम्ब (1 87) त्रिवेदी प्राइ मौय विहार प 43
26 उपेन्द्र ठाकुर मिथिला पृ 112
27 विद्याभूषण ई ए भाग 37 (1908) पृ 78 80 विद्याभूषण ज ए सो ब भाग 71 (1902) प 142 43
28 ला—क्षत्रिय क्लास कलकत्ता एण्ड शिमला पृ 32
29 जोली मनुस्मृति (x 22) पृ 230
30 ब्यूलर—द ला आफ मनु x 22 (आक्सफोर्ड 1887) से बु ई पृ 406
31 योगेन्द्र मिश्र—वैशाली पृ 109
32 पो हिस्ट्री पृ 137 टिप्पणी 3
33 पो हिस्ट्री वही
34 श्यामाचरण चक्रवर्ती सम ब्वाइंटस रिगार्डिंग द ओरिजिन आफ द लिच्छवि आफ वैशाली इ क्वा 1933 भाग IX 2 पृ 439 47 श्रीराम गोयल पृ 29-30
35 उपेन्द्र ठाकुर मिथिला पृ 20 इ हि क्वा IX 2 1933 पृ 440
36 उपेन्द्र ठाकुर वही पृ 20 इ हि क्वा वही पृ 441 42
37 इ हि क्वा IX 2 (1933) पृ 444
38 वही पृ 444
39 महाभारत वनपर्व 161 4 5 इ हि क्वा वही पृ 444
40 इ हि क्वा वही पृ 444
41 वि च ला वही पृ 17 21 ट सो (स्मिथ द्वारा सम्पा) पृ 158 60
42 इ हि क्वा वही प 447
43 मनुस्मृति X 2?
44 चन्द्रभान पाण्डेय आन्ध्र-सातवाहन साम्राज्य का इतिहास पृ नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 1963 प 119
45 अष्टाध्यायी (IV 12 131) वैशाली प 111 टिप्पणी 6 पर उद्धृत
46 अथर्ववेद 18 2 34 आपस्तम्ब 1 87 त्रिवेदी प्राइ मौय विहार पृ 42-43
47 श्रीपाद अमृत डांगे भारत साम्यवाद से दासप्रथा तक पृ 82 तैत्तरीय ब्राह्मण (3 10 9 4) में सीता व सावित्री की कथा मिलती है सीता सावित्री प्रजापति की पुत्री थी वह अपने भाई सोम का प्रणय चाहती थी पर सोम उसको नहीं चाहता था वह अपनी बहन श्रद्धा से प्रेम करता था सीता सावित्री ने अपने पिता से इस विषय में राय ली उसके पिता ने उसे एक मन्त्र दिया जिससे उसने सोम को जीत लिया महाभारत (आदि पर्व) और हरिवंश पुराण में ब्रह्मा से कुटुम्ब की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है इसमें वर्णित है कि ब्रह्मा के बाएं पैर के अंगूठे से उत्पन्न दक्ष ने उनके दाएं पैर के अंगूठे से उत्पन्न दक्ष के साथ विवाह किया जिसका अर्थ यह हुआ कि दक्ष ने अपनी बहन के साथ विवाह किया उस काल में प्रचलित सगोत्र विवाह के कारण ही इस तरह के संबंधों को उचित समझा

गया बाद में ऐसे सगोत्र विवाह पर रोक लगाई गई जिसने उस सामाजिक संगठन को जन्म दिया जिसमें गण गोत्र में नर-नारियों में परस्पर विवाह अब नहीं हो सकता था, पर जहां पर विवाह एक ही कुल के सदस्यों के बीच हो जाया करता था (महा आदि पर्व, 128 26) उस पर रोक लगा दी गई, इस प्रकार सगोत्र विवाह का अंत हो गया, (श्री।।द अमृत डांगे वही पृ 82 83)

48 अ नगेन्द्रनाथ घोष 'इण्डो आर्यन लिटरेचर एण्ड कल्चर' में कहा गया है कि जिन अनार्यों को 'व्रात्यष्टोम द्वारा शुद्धि करके आर्य बनाया गया उन्हें व्रात्य' कहते हैं, (सम्पूर्णानन्द आर्यों का आदि देश, परिशिष्ट, पृ 219 पर उद्धृत, श्र राम गोयल, पृ 29 70 विद्याभूषण इ ए भाग 37, पृ 78 80

48 ब त्रिवेद देवसहाय, प्राङ्, मौर्य बिहार, पृ 13

49 जोली मनुस्मृति, x 4 20 23 सम्पूर्णानन्द आर्यों का आदि देश, पृ 218

50 अमरकोष, 2 8 1 2 7 53 पाणिनि 4 1 137

51. मनु x-41-46 प्राङ् मौर्य बिहार, पृ 43

52 मनु, x-22 झा, लिच्छवि, पृ 7 टिप्पणी

53. मनु x, 43 44 झा, लिच्छवि, पृ 7 टिप्पणी

54 मनु 11 38 39

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथा कालमसंस्कृता ।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य विगर्हिता ॥ (मनु, 11 39)

55. ला, वि च, सम क्षत्रिय ट्राइब्स आफ एंशियेण्ट इंडिया, पृ 16 जायसवाल, हिन्दू पालिटी पृ. 174 77 योगेन्द्र मिश्र, अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली पृ 111 रायचौधुरी, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एंशियेण्ट इंडिया, पृ 122-24 हित नारायण झा, लिच्छवि पृ 7 त्रिवेद देव सहाय, प्राङ्, मौर्य बिहार, पृ 43

56 डायलाग्स आफ द बुद्ध, 2, पृ 187

57 कावेल, जातक, भाग 2 पृ 4, जातक संख्या 152

58. सुमंगलविलासिनी, पा टे सो, भाग 1, पृ 312

59 सैं बु ई 22, पृ 226 230, 238 240, 246 47, 550 (क्षत्रिय०) उनके नाम का भाग नहीं था वही पृ 193)

60 डायलाग्स, 2, पृ 103 महावस्तु, 1, पृ 262

61 हिन्दू धर्म के विश्वासों के अनुसार देवताओं की संख्या 33 मानी गई है

62. ला, वही पृ 130

63 मिश्र, वही, पृ 111,

64 ला, वही, पृ 17 21, पा टे सो (स्मिथ द्वारा सपा) पृ 158 60

65 रेग्मी, एन अर्ली हिस्ट्री आफ नेपाल पृ 65.

66. नोली नेपाल इन्स्क्रिप्शन इन गुप्त कैरेक्टर, पार्ट 1 (मूल), अभि स 81 (पशुपतिनाथ प्रशस्ति) इन्द्र एण्ड ब्यूलर, टवेन्टी थ्री इ सक्रिप्शन्स, 15, पृ. 16 19, अभिलेख सं 15, इसमें लिच्छवियों के आदि पुरुष (श्री मान भूलिच्छवि) को इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न लिखा गया है

67 वाटर्स, ट्रैवेल्स, 2, पृ 84 बील वही पृ 318

68 नोली, अभि 3, 20 59, 61 81 ट्वेन्टी थ्री इन्सक्रिप्शन्स, अभि 1, ला क्षत्रिय क्लान्स

पृ 77-78, दत्त अर्ली हिस्ट्री आफ द स्प्रेड आफ बुद्धिज्म, पृ 155-56.

69 ट्रेवेल्स आफ ह्वेन त्सांग, भाग 3 कलकत्ता, 1958, पृ 308

70 बोली, अभि 37, 41, 50, 55, 58, 61, 66, 68

71 अभिलेख, भाग 1, पृ 38 झा, लिच्छवि, पृ 12

72 वही पृ.25, मोमी, अभि 12, झा वही, पृ 12.

73 मोमी, अभि 11, झा वही, पृ 12.

74 नोली, अभि 1, झा, वही पृ 12

75 जायसवाल, वही पृ 184 झा, वही, पृ 11

76 जैन ग्रंथ निरायावली सूत्र (जेकोबी, ई सी 22 पृ 13 और टिप्पणी के अनुसार मगध राज बिम्बिसार का एक विवाह लिच्छवि राजा चेटक की पुत्री चेल्लना से हुआ था इसी तरह चीरवस्तु इ हि क्वा 1947 भाग 23-1, पृ 58 61) के अनुसार बिम्बिसार की प्रमुख रानी की मृत्यु हो जाने पर बिम्बिसार की इच्छानुसार उसके प्रधान मंत्री गोप ने लिच्छवियों के सेनापति सिंह की छोटी पुत्री से विवाह करने का प्रस्ताव सिंह के पास भेजा लेकिन सिंह ने यह कहकर प्रस्ताव ठुकरा दिया कि लिच्छवियों के नियमानुसार वैशाली में अभी किसी कन्या का विवाह बाहर के व्यक्ति से नहीं हो सकता है। इस प्रकार यह घटना दर्शाती है कि लिच्छवि अपने रक्त की शुद्धता का ध्यान रखते थे संभवत इसीलिए उन्होंने यह नियम पास कर रखा था। लिच्छवि लोग इस नियम का उल्लंघन बहुत कम, कभी कभी अपनी सुरक्षा हेतु शक्तिशाली राजाओं से मित्रता कायम करने के लिए करते थे। इस तरह के वैवाहिक संबंध का उदाहरण हम वैशाली के लिच्छवि राजा चेटक की एक पुत्री मृगावती (श्रमण भगवान महावीर भाग 2, पार्ट 2, पृ. 231-246) का विवाह वत्स, जिसकी राजधानी कोशाम्बी, के राजा शतानीक से हुआ था, चन्द्रगुप्त प्रथम से इसी तरह का संबंध लिच्छवि कुमारी कुमारदेवी से हुआ था जिससे गुप्तों का इतना विशाल साम्राज्य स्थापित हो सका, और समुद्रगुप्त प्रयाग प्रशस्ति में अपने नाम के साथ 'लिच्छवि दौहित्र, का उल्लेख करना नहीं भूलता

77 बील, वही, पृ 308, 314, 315, लाय, भाग 2, पृ 80 दत्त अर्ली हि आफ द स्प्रेड आफ बुद्धिज्म, पृ 157 62, ला, क्षत्रिय क्लान्स, पृ 77-78 उपेन्द्र ठाकुर, मिथिला, पृ 149-50

78 अल्तेकर, द कांस्टीच्यूशनल हिस्ट्री आफ वैशाली, वै अभि ग्रं पृ. 67 71, रा कु मुकर्जी, हिन्दू सिविलाइजेशन, भाग 2, पृ 240 और आगे, योगेन्द्र मिश्र, अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली पृ 143 और आगे.

79 श्रीमती रिस डेविड्स साम आफ ब्रेदेन, (लंदन, 1951) पृ 118, परमत्थजोतिका की कथा में भी ऐसा है (स्मिथ द्वारा सम्पा, पा टे सो, पृ 158 60)

80 वही, पृ 63

81 वही, पृ 106

82 उपाध्याय, वही पृ 383, दिवाकर, वही, पृ 110

83 झा, लिच्छवि, पृ 9 थारु भाषा का बाजे' जिसका अर्थ बाबा (पितामह) से आज भी लिया जाता है, संभवत 'वज्जि से संबंधित रहा होगा जो विशाल संघ की ओर 'वृजि' (पाणिनी-IV 2 131) से निकला है, ह्वेन सांग (बुद्धिस्ट रिकार्ड, पृ 66-67) भी इसे वृजि (फो, शि, लि) तथा कौटिल्य (XI 1) 'वृजिक' लिखते हैं

84 अंगुत्तर निकाय 3, पृ 76

85 बासम वही पृ 47 सिन्हा व बनर्जी वही पृ 47 जैन क्रानिकल्स सूत्र, (बम्बई, 1949) पृ 87 88
86 वय पृ 407
87 हार्डी वही पृ 243
88 बील बुद्धिस्ट रिकार्ड पृ 66 67 77 78
89 श्रीमती रिस डविड्स साम आफ ब्रेद्रन (लदन 1951) पृ 112 पा हे सी (स्मिथ द्वारा सम्पा) पृ 158 60
90 इ ए (1903) पृ 233 बील सं पु ई 2 (1884), प 66 अ बील, लाइफ आफ ह्नन सांग (लडन 1911) पृ 22 24
91 टयनर इन ओरियन्टल सीरिज इन्ट्रोडक्शन पृ XIII श्यामनारायण सिंह हिस्ट्री आफ तिरहुत (1922) पृ 37 पर उद्धृत
92 इ ए (1903) पृ 233
93 मिथिला पृ 114
94 श्यामनारायण सिंह वही पृ 37 पा टिप्पणी
95 वही
96 विद्याभूषण ज ए सो ब भाग 71 (1902) प 142-43 विद्याभूषण इ ए भाग 37 (1908) पृ 78 80 स्पूनर का भी झुकाव इसी मत की ओर था ज स इ अ रि. (1913 14) पृ 118 20
97 वि चरण ला क्षत्रिय क्लान्स कलकत्ता एण्ड शिमला पृ 32
98 जोली मनुस्मृति (x 22) पृ 23
99 ब्यूलर द ला आफ मनु x 22 (आक्सफोर्ड 1887) ईस्ट सी पृ 406
100 श्रीराम गोयल पृ 29-30
101 पो हिस्ट्री ई पृ 122 टिप्पणी
102 इ हि क्वा 1933 भाग IX 2 पृ 439-47
103 श्रीराम गोयल वही पृ 29
104 पीछे देखिए,
105 जे पी शर्मा रिपब्लिक्स इन एशिएन्ट इंडिया पृ 89-92 (श्रीराम गोयल, वही पृ 28 टिप्पणी 2 पर उद्धृत)
106 जे पी शर्मा वही पृ 92 (श्रीराम गोयल वही पृ 28 टिप्पणी 2 पर उद्धृत)
107 विमलचरण ला क्षत्रिय ट्राइब्स आफ एशिएन्ट इंडिया, पृ 16 जायसवाल, हिन्दू पालिटि पृ 174 71, योगेन्द्र मिश्र अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली पृ 111, रायचौधुरी, पो हि इ पृ 122 24 हितनारायण झा, लिच्छवि पृ 7 त्रिवेद देवसहाय, प्राङ मौर्य बिहार पृ 30
108 पीछे देखिए
109 वि च ला वही पृ 17 21 पा टे सी (सम्पा स्मिथ) पृ 158 60
110 रामा 1 45 9
111 वायु 86 3-12 विष्णु IV 1 15 19 गरुण 1 13805 13, भाग IX 2 23 36, मार्क 109-36 मिथिला ए 115-160
112 वै अभि ग्रंथ पृ 66, त्रिवेद वही पृ 32.

113 रामा 1 45 9-11 1 47 11 17
114 मभा VII 55 XII 20 XIX 4 65 86
115 उत्तरतीरमासाद्य सम्पूज्यर्षि गण तत ।
गगकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशु पुरीम् । रामा 1 45 9
116 तस्य पुत्रो महातेजा सम्प्रत्येष पुरीं मिमाम
आवस व मर प्रख्य सुमतिर्नाम दुर्जय (16)
सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम्
श्रुत्वा नरवर श्रेष्ठ प्रत्यगच्छन्महायशा (19) बाल काण्ड सग 47
117 वायु 86 3 12 विष्णु IV I 15 19 गरुण 1 138 5 13 भाग IX 2 23 36 मार्क 109 36 मिथिला पृ 115 116 हिस्ट्री आफ तिरहुत पृ 34
118 हाजीपुर जिले के पश्चिम म राम मन्दिर आज भी मौजूद है जहां आजकल तीन तीर्थ स्थल हैं गज द्र मोक्ष तीर्थ विशाल स्थल और तीसरा जहा आज सोन मदिर है (वै अभि ग्र पृ 62 स्थानीय जनश्रुति के अनुसार हाजीपुर मे राम लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ गगा के दक्षिण तट से उत्तरी तट पर उतरे थे (श्यामनारायण सिंह हिस्ट्री आफ तिरहुत पृ 33) आज भी यहां एक घाट है जिसे रामचौरा घाट कहते हैं श्री रामचन्द्रजी ने इस घाट पर स्नान किया था यह एक हाली लोकगीत में भी गाया जाता है यह लोकगीत मुजफ्फरपुर के कुछ हिस्सों में खूब गाया जाता है (योगेन्द्र मिश्र वशाली पृ 73 पर उद्धत)
119 मभा XII 81 107
120 वही
121 योगेन्द्र मिश्र वैशाली पृ 89 भद्रा वैशाली सभवत विशाला के राजा की पुत्री थी और यह विशाला हमारी वैशाली हो सकती है यद्यपि महाभारत के व्याख्याकार नील कठ इस वैशाली को बदरी या बदरी के पास कहीं ठहराते हैं (मभा 11 139 11 XII 344 20 111 90 2९ 26) लेकिन महाभारत में वैशाली (एक राजकुमारी के रूप मे) है वैशालेया कोगिन (वशाली नाग का सरदार) और विशाला (एक नदी) का उल्लेख है नीलकठ की पहचान को बहुत बाद का होने के कारण अस्वीकार कर दिया जाए तो भी विशाला का सदर्भ बदरी या उसके पास के बजाए वैशाली से हो सकता है वैशाली में नागो का सबध अति प्राचीन काल से होना प्राचीन ग्रथों से भी सिद्ध होता है अथ अथर्ववेद (VII 10 29) में एक तक्षक वैशालीये का उल्लेख मिलता है तथा इसी तरह वाल्मीकि रामायण (आदि काण्ड 45वें सग के) अनुसार इसी स्थान (वैशाली) पर देवो और दानवो म समुद्र मथन की मत्रणा की थी और हम जानते हैं कि समुद्र मथन में नागो को भी प्रमुख भूमिका रही है इन प्राचीन ग्रथों मे नागो के उल्लेख के अतिरिक्त बुद्ध काल के ग्रथ दीघ निकाय मे भी (डायलाग 11 पृ 288) वैशाली के नागो का उल्लेख है
122 मभा 11 45 11
123 वही XVI 7 18
124 वही VIII 87 44
125 योगेन्द्र मिश्र वशाली प 90 स चन्द्र सरकार, व अभि ग्र प 63
126 मभा IX 38 4 21 XIII 25.44

127. मभा 1 35 12 v 103 14 : xiii 25 44

128 हित ना भा, लिच्छवि, पृ. 14, वैशाली के मिथिला का अंग होने का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है.

129 हेमचन्द्र रायचौधुरी, पो हिस्ट्री, प 81, मिथिला में राजतंत्र से प्रजातंत्र अपनाए जाने का कारण लिखा है, पर वैशाली के बारे में संकेत नहीं करते हैं, विदेह का राजा कराल जनक बड़ा कामी था और एक कन्या पर आक्रमण करने के कारण प्रजा ने उसे मार डाला जिससे राजतंत्र का अंत हो गया

130, सूर्य देव वं, अभि ग्र, पृ. 100 से उद्धृत

131 स्मिथ (सम्पा) परमत्थजोतिका आन द खुद्दक पाठ, पा टे सो पृ 158 60, वि च. ला क्षत्रिय क्लान्स पृ 17-21 हार्डी, मैनुअल आफ बुद्धिज्म, पृ 242-43

132. वैदिक इंडिया, पाट 1, पृ. 126

133 मभा, ix 38 4 21 xiii 25 44

134 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 128

135 वही पृ 128, यद्यपि वर्तमान काल में वैशाली क्षेत्र में शाल वृक्ष गिनती के हैं जबकि बौद्ध ग्रंथों में वर्णित तालाबों की संख्या में से अधिकांश मौजूद हैं

136 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 128

137 वाचस्पति, पृ 6000, शब्द कल्प द्रुम, भाग v, पृ 60 'के वी पाठक, आन मेघदूत 1 30 (विशाला का अर्थ=विशिष्ठा शाला प्रकारा यस्या सा), दसवीं शताब्दी के वल्लभदेव कहते हैं, 'विविधाश्च शाला यास्यास्ताम' (श्री रंजन सूरिदेव, मेघदूत एक अनुचिंतन, पटना, 1960, पृ 202)

138 जातक न 149 (एक पण्ण जातक)

139 श्रीमती रिसडेविडस साम आफ द ब्रेदरन पृ 63, ला, सम जैन क्रानोनिकल्स सूत्र (कल्प-सूत्र), पृ 101, बनर्जी, पो हिस्टोरिक, एंशियेन्ट एण्ड हिन्दू इंडिया, पृ 54, हजरा, स्टडीज इन द पुराणिक रिकार्ड्स पृ 194, एड्वास हिस्ट्री पृ 84

140 बासी कुण्ड में महावीर के जन्मस्थली पर स्थापित शिला स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख

141 ला, सम जैन, क्रानोनिकल्स सूत्र, ए 101 जैकोबी, वही, पृ भूमिका, xii प्रो हिस्ट्री (चतुर्थ संस्करण) पृ 106 बनर्जी, वही, पृ 54

142. ला, वही, पृ 102, मललसेकेरा पृ 942 मिथिला पृ 149

143 रिस डेविडस—महापरिनिब्बान सुत्त इन द डायलाग आफ द बुद्ध, पृ 110 ओल्डन वर्ग बुद्ध पृ 148, भगवान बुद्ध कुछ युवा लिच्छवियों को अपने समीप आते देखकर अपने शिष्यों से बोले, 'तुममें से जिस किसी ने 33 देवताओं का समूह न देखा हो, उसे लिच्छवियों के इस समूह को टकटकी लगाकर देखना चाहिए और विचार करना चाहिए

144 जोन्स (अनु) महावस्तु खण्ड 1, पृ 224 242, ग्रेजर (अनु) पुल्ल वंश, पार्ट 1, पृ 6 पाद टिप्पणी, बापट (सम्पा) 2500 ईयर्स आफ बुद्धिज्म, (1959), पृ 147.

145 रिस डेविड्स महापरिनिब्बान सुत्त इन द डायलाग्स आफ बुद्ध, पृ 131 ला, ए हिस्ट्री आफ पालि लिटरेचर, भाग 1, पृ 100

146 ला, ए हिस्ट्री आफ द पालि लिटरेचर, भाग 1 पृ 100 (वर्तमान में यह बंदर पोखर वाणिज्य ग्राम के निकट आधुनिक उफरौल गांव में स्थित है इस पोखर के किनारे ही

सिंह शीर्ष का अशोक लाट है जिस पर लेख अंकित है। यह अशोक लाट अब तक प्राप्त अशोक लाटों में प्राचीनतम है, लाट के साथ ही भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द के अस्थि-अवशेष पर स्थापित स्तूप है, स्तूप के उत्तर की ओर बुद्ध की एक मूर्ति (शीर्ष रहित) भूमि स्पर्श मुद्रा में प्राप्त हुई है जो वैशाली संग्रहालय में सुरक्षित है.)

147 दत्त अर्ली हिस्ट्री आफ द स्प्रेड आफ बुद्धिज्म, पृ 160

148. अ स इ रि. भाग 16, 1880-81, पृ 8

149 वही,

150 उपेन्द्र महारथी, वैशाली के लिच्छवि, पृ 12, द्वितीय महासंगीति वैशाली के बालुका राम विहार में हुई थी जिसमें 700 श्रेष्ठ बौद्ध भिक्षु सम्मिलित हुए थे, सभा की संपूर्ण व्यवस्था वैशाली निवासी 'अजित' नामक युवक भिक्षु ने की थी. संगीति की अध्यक्षता करने का गौरव भी वैशाली निवासी 'सर्वकामी' नामक भिक्षु को प्राप्त हुआ था

151. जातक नं 94 (लोमहंस जातक) व 149 (इकपण्ण जातक),

152 तीर्थंकर महावीर, पृ 77, बील, बुद्धिस्ट रिकार्ड्स आफ वेस्टर्न वर्ल्ड, द्वितीय खण्ड, पृ 66-67,

153 अ स इ अ रि. भाग 16, (1880-81) पृ. 6, प आ रा ओ सो (1902) पृ 275, शास्त्री (मज्रा) कनिंघम की एंशियेन्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया (कलकत्ता 1924) पृ 507-8, भण्डारकर द कार्मिकल लेटर्स (1918) पृ 51, त्रिपाठी हिस्ट्री आफ एंशियेन्ट इंडिया, पृ 86, वैशाली इक्वेशन पो हिस्ट्री चतुर्थ संस्करण पृ 93-100

154 अ स ई अ रि 1913-14 इक्वेशन एट बसाढ़, पृ 93 185 मिथिला, पृ 119

155 अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली, पृ 131 'गव्यूति' का आधुनिक माप 3 मील मिश्र जी मानते हैं इस तीन प्राचारों का कुल क्षेत्रफल 3 × 3 = 9 मील बताया है

156 जातक (कावेल सपा), भाग 1, पृ 316, इ हि क्वा भाग 27, (1951), पृ 331, महावंश के अनुसार (सै बु ई 17, पृ 171) वैशाली में 7707 मंजिलों वाले भवन, 7707 गुम्बद वाले भवन तथा 7707 आराम (उद्यान) तथा 7707 कमल के पोखर थे.

157. ज ए सो ब. भाग 16 (1921), पृ 267 मलालसेकेरा, पृ 143, रॉकहिल, लाइफ आफ बुद्ध, पृ 63

158 लेफमन, ललित विस्तर अध्याय III, पृ 21, हार्डी मैनुअल आफ बुद्धिज्म, पृ 242-43, मलालिसकरा, पृ 943

159 हार्डी, वही, पृ 242-43

160. रॉकहिल, वही, पृ. 63, ज ए सो ब, भाग 17 (1921), पृ 266-67, केन और 'सब्बरत्तिवारो' लिच्छवियों के बहुत महत्वपूर्ण त्योहार थे जिसमें 'लिच्छवि लोग सारी रात उत्सव मनाते थे

161 रॉकहिल, वही, पृ 63

162. डायलाग्स, भाग II, पृ 110

163 रॉकहिल, वही, पृ 62, इ हिस्ट क्वा भाग 23, पृ 58, वैशाली इक्वेशन, (1950) पृ 1

164 रॉकहिल, वही, पृ 62

165 गिलगित मैनुस्क्रिप्ट, भाग 3, पार्ट ii, (नलिनदत्त द्वारा सम्पा) श्रीनगर, काश्मीर (1942) पृ 6
166 वैशाली इवैवे 1950, पृ 1.
167 सुमंगल विलासिनी, भाग 1, पा टे सो पृ 309, ला, क्षत्रिय क्लान्स, 52-53
168 ला, वही, पृ 52, लैग, फाह्यान, पृ 72, 75-77 पर फाह्यान लिखता है, 'जब आनन्द मगध से वैशाली परिनिर्वाण के लिए जा रहे थे तो देवों ने राजा अजातशत्रु को भविष्यवाणी करके आनन्द की इच्छा की सूचना दे दी, भविष्यवाणी सुनकर राजा अपने कुछ सिपाहियों के साथ तुरन्त विमानयान द्वारा नदी पर पहुंचा दूसरी ओर वैशाली के लिच्छवियों ने जब यह सुना कि आनन्द उनके नगर आ रहे हैं तो वे सब उनका स्वागत करने नदी तट पर पहुंच गए इस तरह नदी के दोनों तटों पर लोग एकत्र हो गए यह देखकर आनन्द ने विचार किया, अगर वह आगे बढते हैं तो अजातशत्रु रुष्ट हो जाएगे और यदि वह वापस मुडते हैं तो लिच्छवि बुरा मान जाएगे अतः उन्होंने नदी के मध्य ही समाधि ले ली अपने अस्थि-अवशेष को दो भाग करके दोनों किनारों तक पहुंचा दिया, इस प्रकार आधे-आधे अस्थि-अवशेष को लेकर लिच्छवि व अजातशत्रु अपनी-अपनी राजधानी में लौट आए और उन्होंने उस अस्थि-अवशेष पर एक-एक स्तूप बनवाया
169 सुमंगल विलासिनी, भाग 1, पा टे सो, पृ 309, ला, वही, पृ 52 53
170 वाटर्स, आन व्हेन त्सांग ट्रैवल, भाग 2, (लण्डन, 1905) पृ. 71, ला, वही, पृ 54
171 ज ब ओ सो (1902), पृ 282, तिब्बती दुल्व (रॉकहिल, लाइफ आफ द बुद्ध, पृ 62) भी इसी तरह वैशाली को 3 प्रमुख पुरों, वैशाली खास, कुण्डपुर व वनिया ग्राम में विभाजित करता है जो क्रमशः दक्षिणपूर्व, उत्तर पूर्व और पश्चिम में स्थित थे, कुण्डपुर के आगे उत्तरपूर्व दिशा में कोल्लाग उपनगर (सन्निवेश) था, नाय (या ज्ञाति) शाखा के क्षत्रियों द्वारा आबाद था जिससे महावीर स्वामी सबंधित थे। (हार्नले', उवासगदसाव भाग 2, अनूदित, टिप्पणी 8, पृ 4)
172 हितनारायण झा, लिच्छवि, पृ 19
173 श्री विजेन्द्र सूरि, वैशाली, दिल्ली, वि स 2003, पृ 19
174 महावस्तु, I, पृ 256, 271
175 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 132
176 जातक (फावेल सम्पा), भाग 1, पृ 316; दुल्व (रॉकहिल वही, पृ 62); महावग्ग (से बु ई. 17, पृ 171)
177 महावग्ग' viii 1. 1 1 (भाग 2, पृ. 122, एन के. भागवत संस्करण, बम्बई 1952); दुल्व (रॉकहिल, वही, पृ 62); गिलगित मैनुस्क्रिप्ट, भाग 3 पार्ट 2, पृ 6, ललित विस्तर (अंग्रेजी अनुवाद, पृ 38-39)
178 ज ए सो. ब भाग 84, दिसं 1838 पृ 992, पाद टिप्पणी
179 वही, भाग Lxix 1900, पार्ट 1, पृ 78-83
180 कनिंघम, आ स इ अ रि भाग I, पृ 55-56 एव भाग 16, पृ 6, एन्शियेन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया पृ 507-508; वैशाली इवैवे, 19*0 पृ 2

181 वै अभि प पृ 149 158.
182 अ स इ अ रि 1903-4 पृ 81–122.
183 अ स इ अ रि 1903-4 पृ 82 बनर्जी द एज आफ इंपीरियल गुप्ता, पृ 4
184 अ ग इ अ रि 1913-14 पृ 98 18
185 अ स इ अ रि, 1958 9 पृ 12 16 वैशाली इक्के 1950 पृ 2

2

प्रारंभिक राजनीतिक इतिहास

वाल्मीकि रामायण[1] से ज्ञात होता है कि कोशल के राजा दशरथ तथा विदेह के राजा सीरध्वज जनक के समय वैशाली में सुमति का शासन था। राजा सुमति ने राम तथा लक्ष्मण के वैशाली आगमन[2] पर उनका सत्कार किया था। सुमति के पश्चात् वैशाली में कौन राजा हुआ। इसका कहीं उल्लेख नहीं है। सभी पुराणों[3] में सुमति को वैशाली के अंतिम इक्ष्वाकु वंशीय राजा के रूप में दर्शाया गया है। इससे विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि संभवत सुमति के पश्चात वैशाली में इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं का शासन समाप्त हो गया, और वैशाली क्षेत्र विदेह राजा के अंतर्गत आ गया।[4] योगेन्द्र मिश्र[5] के अनुसार वैशाली क्षेत्र संभवत कई छोटे-छोटे गणराज्यों में विभाजित हो गया था। देवसहाय त्रिवेद[6] का मत है कि वैशाली क्षेत्र का एक बड़ा भू भाग संभवत विदेह में मिला लिया गया। सतीश चन्द्र सरकार[7] का अनुमान है कि सुमति के पश्चात् वैशाली संभवत कुछ समय के लिए कोशल का भाग रहा हो, लेकिन बाद में राम के पश्चात् जब अयोध्या का अपकर्ष हो रहा था उस समय वैशाली मिथिला के अधिकार में आ गया। वी रंगाचार्य[8] के अनुसार सुमति के पश्चात् वैशाली विदेह के अधीन आ गया था और राज्यक्रांति के समय तक यह विदेह के अधीन ही रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि वैशाली विदेह में आत्मसात हो गया था, क्योंकि वैशाली विदेह से लगा था।

भारत युद्ध के समय वैशाली तथा वैशाली के लोगों का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, जबकि मल्लों का उल्लेख है।[9] संभवत इस क्षेत्र में मल्ल ही शक्तिशाली गणराज्य था।[10] महाभारत में वैशाली का अलग से उल्लेख न होने का कारण संभवत उसका विदेह राज्य का अंग होना रहा हो। रायकृष्ण चौधुरी का मत है कि भारत युद्ध के समय मिथिला का राजा क्षेमधूर्ति[11] था जो दुर्योधन के पक्ष में भारत युद्ध में सम्मिलित हुआ था।[12] संभवत उस समय विदेह राज्य के अंतर्गत वैशाली क्षेत्र में वृजि (वज्जि) के अतिरिक्त उग्र, ज्ञातृक, भोग,

कौरव, लिच्छवि, अक्षविक आदि क्षत्रिय कुल भी निवास करती थी।[13] और इनका प्रशासनिक स्वरूप गणतात्रिक रहा हो। महाभारत[14] मे भीष्म कहते हैं कि आर्य भूमि मे कुछ ऐसे भी गणराज्य हैं जहा हर कोई अपने को राजा कहता है। उनका सकेत सभवत वज्जि भूमि म फैले गणो की ओर था।[15] दवसहाय त्रिवेद[16] का मत है कि उस समय तक ये छोटे-छोटे गणराज्य ठीक से विकसित नही हो पाए थे, इसलिए उनका स्पष्ट उल्लेख महाभारत मे नही हो पाया। योगेन्द्र मिश्र ने महाभारत म उल्लिखित कुछ गणो की पहचान वैशाली क्षेत्र के गणो से करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार महाभारत[17] मे उल्लिखित 'वैशाली भोगिन' जो नाग कुल के प्रमुख थे तथा भारत युद्ध मे अर्जुन की सहायता की थी, सभवत वैशाली 'भोग' कुल के प्रमुख थे।[18] इसी प्रकार उनके मत मे महाभारत[19] म उल्लिखित भद्रा वैशाली' नामक कुमारी सभवत 'विशाला के राजा' की पुत्री थी। उनके अनुसार यह विशाला उत्तर बिहार की वैशाली हो सकती है।[20] इसी तरह उन्होने कुछ अन्य गणो[21] का सबध भी वैशाली से जोडने का प्रयास किया है। महाभारत मे विशाला[22] नदी का उल्लेख है, जो गण्डकी की एक शाखा या सहायक नदी थी तथा इस क्षेत्र से होकर बहती थी। इस क्षेत्र मे यह पवित्र नदी मानी जाती थी जिसके किनारे करवीर पुरा[23]अ मे 'करवीर'[23]ब नामक पवित्र स्थल था। सतीशचन्द्र सरकार[24]अ इस तीर्थस्थल की पहचान वैशाली क्षेत्र के कोल्हुआ नामक गाव से करते हैं, जो बाया नदी (न कि गया) के किनारे वर्तमान सरैया से सटा हुआ है।

महाभारत युद्ध के पश्चात् तथा भगवान बुद्ध के पूर्व वैशाली के विषय मे *कहीं उल्लेख नही मिलता है। लेकिन विदेह के विषय म उल्लेख मिलता है। भारत* युद्ध के पश्चात् जनक परपरा[24]ब मे कृति जनक नामक बहुत बडे दार्शनिक राजा हुए थे, जो हस्तिनापुर के जनमेजय के समकालीन थे। इसकी पुष्टि इस साक्ष्य से होती है कि कृति जनक की सभा मे ही याज्ञवल्क्य थे जिनके पास जनमेजय के पुत्र व उत्तराधिकारी शतानिक वेदो का अध्ययन करने के लिए गए थे।[25] रिस डेविड्स[26] कृति जनक की पहचान महाजनक (जातक, 539) से करते हैं जो महान् दार्शनिक राजा थे। पुराण कृति जनक के पश्चात् विदेह वश की सूची समाप्त कर देते है।[27] इससे विदित होता है कि कृति जनक के पश्चात् विदेह मे राजा दुर्बल होने लगे थे। कृति जनक के उत्तराधिकारी अपने वश की प्रतिष्ठा व शक्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने मे असमर्थ रहे।[28] इसके पश्चात् के कई विदेह राजाओ के नाम पुराणो मे मिलते हैं, लेकिन उनको क्रमबद्ध करना तथा उनका कालनिर्धारण करना किसी प्रकार सभव नहीं है।[29] जातको मे कई विदेह राजाओ का उल्लेख मिलता है। सुरुचि जातक[30] मे सुरुचि नाम के किसी राजा का उल्लेख है जिसका पुत्र सुरुचिकुमार तथा पौत्र महापनाद था। गधार जातक[31]

मे एक विदेह राजा 'विदेह' का उल्लेख है जो गधार के राजा बोधिसत्व से वार्तालाप करता है। महाजनक जातक[32] मे महाजनक नामक राजा को मिथिला मे राज्य करते दर्शाया है जिसके दो पुत्र अरिट्ठजनक और पोलजनक हुए। कथानुसार अरिट्ठजनक की हत्या कर पोलजनक मिथिला का राजा हुआ। लेकिन कुछ समय पश्चात् पोलजनक की अचानक मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उसका पुत्र महाजनक द्वितीय मिथिला का राजा बना। महाजनक द्वितीय का पुत्र व उत्तराधिकारी दीघावु (दीर्घायु ?) कुमार था। निमिजातक[33] भी हमे कुछ विदेह राजाओ की सूचना देता है। कथनानुसार मिथिला मे एक राजा महादेव हुआ था जिसने जीवन के अतिम समय मे सन्यास ग्रहण कर लिया। उसके पश्चात् निमि राजा हुआ, उसने भी पूर्वजो का अनुसरण किया। निमि का पुत्र कलार (कराल) जनक था। उसने भी अपने पूर्वजो का अनुसरण किया। इस तरह उसके वश का अत हो गया। इसी तरह महानारद कस्सप जातक[34] से ज्ञात होता है कि एक अगति नामक धार्मिक राजा ने मिथिला पर राज्य किया था। महाउम्मग्ग जातक[35] मे भी एक विदेह राजा को मिथिला मे राज्य करता दर्शाया गया है जिसने उत्तर पाचाल के हठीचूलनि ब्रह्मदत्त के विरुद्ध युद्ध किया था। साधुन जातक[36] मे एक और राजा साधुन का वर्णन मिलता है जो अपने सदाचार और सज्जनता के लिए काफी प्रसिद्ध था। इसी प्रकार साख्यान श्रोतसूत्र[37] मे अह्लार नामक एक और विदेह राजा का उल्लेख मिलता है।

जातको मे उल्लिखित इन राजाओ का काल तथा क्रम निर्धारण करना कठिन है, क्योकि इन राजाओ की क्रमसूची न पुराणो मे और न बौद्ध जैन ग्रथो मे ही मिलती है। इसके अतिरिक्त जातको के विवरण और भी समस्या पैदा करते हैं। जब वे कराल जनक को निमि का पुत्र कहते हैं। उपेन्द्र ठाकुर[38] पुराणो के कृतिजनक की पहचान निमि या महाजनक से करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कराल जनक का समय महाभारत युद्ध के समीप होना चाहिए, जबकि हम कराल जनक जिसके राज्य काल मे राज्यक्राति हुई और राजतत्र का अत हुआ, को भगवान बुद्ध म बहुत अधिक पूर्व नही रख सकते हैं। कराल जनक के राज्यकाल म राज्यक्राति की पुष्टि अश्वघोष[39] करते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र[40] म भी प्रसगवश कहा गया है कि कराल जनक कामवश एक ब्राह्मण कन्या का स्त्रीत्व नष्ट करने के कारण अपने बधु-बाधव सहित विनष्ट हो गए।

विदेह म राज्यक्राति के पश्चात् सभवत हिमालय की तराई से लेकर गगा की उपत्यका के मध्य के क्षेत्र मे कई गणराज्यो का उदय हुआ जिनका उल्लेख अगुत्तर निकाय[41] मे मिलता है। इनम से कुछ राज्याधीन तथा कुछ सघाधीन थे।[42] लिच्छवि सघाधीन गणराज्य था।

लिच्छवि या वज्जि गणराज्य

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कराल जनक की हत्या के उपरात विदेह म राजतत्र का अत हो गया और तत्पश्चात् इस सम्पूर्ण क्षेत्र का पुन राजनीतिक गठन हुआ जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र मे एक सगठित गणराज्य (वज्जि गणराज्य) का उदय हुआ है। अब हम कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर वज्जि गणराज्य की स्थापना-तिथि निर्धारित करने का प्रयास करेंगे।

1 जैसाकि बौद्ध साहित्य से ज्ञात है कि भगवान बुद्ध के समय (563-483 ई पू) वज्जि गणराज्य एक पूर्ण विकसित एव सुसगठित गणराज्य था।[43] वज्जि गणराज्य को इस उच्च स्तर तक पहुचने के लिए कुछ समय अवश्य लगा होगा।

2 भगवान बुद्ध के समय के सोलह महाजनपदो[44] मे वज्जि गणराज्य के अतिरिक्त काशी व अग भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। उत्तर बिहार के आगे के इतिहास से ज्ञात होता है कि बाद मे काशी पर कोसल तथा अग पर मगध का अधिकार हो गया था। इस प्रकार काशी और अग पर क्रमश कोसल तथा मगध द्वारा अधिकार किए जाने के पूर्व वज्जि या लिच्छवि अपने गणतत्र को स्थापित करते हैं। कोसल द्वारा काशी पर अधिकार करने की निश्चित तिथि ज्ञात नही है। जातको[45] म काशी तथा कोसल राज्यो के बीच दीर्घकाल से चलती आ रही वैमनस्य का विवरण मिलता है जिसमे कभी इस पक्ष की कभी उस पक्ष की जीत होती थी। लेकिन अतिम रूप से काशी पर कोसल का अधिकार कब हुआ, यह किसी भी जातक स स्पष्ट नही होता है। रायचौधुरी[46] का मत है कि कोसल द्वारा काशी पर अतिम रूप से विजय हासिल करना कस का कार्य था, जिसके नाम के साथ 'बाराअसग्गिहो' (अर्थात् बनारस का विजेता) जुडा है।[47] इस कस का शासन सभवत भगवान बुद्ध से बहुत पूर्व नही था। क्योकि न केवल भगवान बुद्ध के समय मे, बल्कि उनके समय के पश्चात् भी जब अगुत्तर निकाय का पुस्तकीकरण हुआ, लोगो के मस्तिष्क मे काशी की स्वतत्रता की याद ताजी बनी रही थी।[48] काशी कोसल का अग सभवत छठी शताब्दी ई पू के मध्य मे प्रसेनजित के पिता महाकोसल के समय मे बना था।[49] हरितमात[50] तथा *वड्ढकी सूकर[51] जातक मे उल्लेख मिलता है कि महाकोसल ने बिम्बिसार के* साथ अपनी पुत्री के विवाहोपलक्ष मे काशी गाव दहेज मे दिया। इस प्रकार काशी के कोसल द्वारा अधिकृत किए जाने की घटना प्रसेनजित के पिता महाकोसल के समय मे हुई होगी जिसे छठी शताब्दी ई. पू के मध्य के पूर्व *जहा रखा जा सकता* है, क्योकि प्रसेनजित भगवान बुद्ध तथा मगधराज बिम्बिसार का समकालीन[52] था।

इसी प्रकार मगध द्वारा अग पर अधिकार करने की घटना बिम्बिसार के शासनकाल (543-491 ई पू.) मे स्थान लेती है।[53] अतः स्पष्ट है कि वज्जि गणराज्य की स्थापना भगवान बुद्ध (563-483 ई. पू) काशी और अग क्रमशः कोसल तथा मगध द्वारा आत्मसात किए जाने के पूर्व तथा कराल जनक की मृत्यु के पश्चात् हुई होगी। विदेह के राजाओ मे कृति जनक के बारे मे आगे पुराण कोई सूचना नहीं देते।[54] इसलिए स्पष्ट नही कहा जा सकता है कि भारत युद्ध के पश्चात् कराल जनक तक कितने मैथिल राजाओं ने राज्य किया। लेकिन मगध के विषय मे पुराण तथा बौद्ध ग्रंथ थोडा बहुत प्रकाश अवश्य डालते हैं। अतः हम मगध राजा बिम्बिसार के माध्यम से वज्जि गणराज्य की तिथि निर्धारित करने का प्रयास करेंगे।

पुराणो[55] मे हमे भारत युद्ध के पश्चात् तीन राजवशो—पौरव (हस्तिनापुर-कोशाम्बी) इक्ष्वाकु (कोसल) तथा बार्हद्रथ (मगध) की सूची मिलती है जो भारत युद्ध से महापद्मनन्द के शासन काल तक शासन करते हैं। पुराणो[56] के अनुसार महापद्मनन्द ने 24 वर्ष तथा उसके 8 पुत्रो ने 12 वर्ष राज्य किया था। इस प्रकार महापद्मनन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य के (323 ई. पू.) शासन मे आने के 40 वर्ष पूर्व अर्थात् 323 + 40 = 363 ई पू. सिंहासन पर बैठा होगा।

इसी प्रकार महावश[57] मगध के राजाओ और उनके शासनावधि की सूचना देता है कि बिम्बिसार (52 वर्ष), अजातशत्रु (32 वर्ष), उदायी (16 वर्ष), अनुरुद्ध तथा मुण्ड (8 वर्ष), नागदासक (24 वर्ष), शिशुनाग (18 वर्ष), कालाशोक (28 वर्ष) तथा कालाशोक के 10 पुत्रो ने (22 वर्ष) तक शासन किया। जैन ग्रंथ परिशिष्ट पर्व के अनुसार महापद्मनन्द कालाशोक (काकवर्ण) की हत्या करके सिंहासन पर बैठा था।[58] अतः कालाशोक के पुत्रों की 22 वर्ष की शासनावधि (सभवत महापद्मनन्द ने 22 वर्ष इन राजपुत्रो के सरक्षक के रूप मे तथा 6 वर्ष स्वतत्र शासक के रूप मे राज्य किया था) उक्त मगध राजाओ के कुल शासन काल से निकाल देने पर बिम्बिसार से कालाशोक तक का योग 178 या 180 वर्ष (सुविधा के लिए मान लें, क्योकि प्रत्येक राजाओ के शासनावधि मे महीनो की गणना छोड दी गई होगी) आता है। इस गणना के अनुसार बिम्बिसार 363 + 180 = 543 ई. पू. के लगभग सिंहासन पर बैठा होगा। महावश के अनुसार उसने 52 वर्ष राज्य किया अर्थात् उसने 543-491 ई. पू. तक शासन किया। जनश्रुति[59] के अनुसार बिम्बिसार की मृत्यु भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण (483 ई. पू) के 8 वर्ष पूर्व, अर्थात् 483 + 8 = 491 ई. पू. में हुई थी। इस तरह अजातशत्रु लगभग 491 ई. पू. मे सिंहासन पर बैठा होगा। अजातशत्रु के ही शासन काल में महावीर स्वामी का महापरिनिर्वाण[60] (485 ई पू.) तथा भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण (483 ई. पू) हुआ था। अत

बिम्बिसार का शासनकाल 543-491 ई पू. मानना समीचीन होगा क्योकि यह *तिथि उस समय की किसी भी घटना की तिथि निर्धारण मे बाधा उपस्थित नही* करती है।

अब हमारे पास दो तिथिया बिम्बिसार (543 491 ई पू) तथा भगवान बुद्ध (563-483 ई पू) की हैं। इसी तरह कोसल का प्रसेनजित भगवान बुद्ध का हमउम्र तथा बिम्बिसार का समकालीन था।[61] इन तीनों व्यक्तियो के पूर्व कराल जनक का समय निश्चित करने के लिए कोई ठोस साक्ष्य उपलब्ध नही है। योगेन्द्र मिश्र[62] पार्जिटर द्वारा प्रतिपादित विधि से गणना करते हुए कराल जनक की मृत्यु तथा वज्जि गणराज्य की तिथि 725 ई पू के लगभग निश्चित किया है। उपेन्द्र ठाकुर[63] ने भी इसी विधि का अनुसरण करते हुए कराल जनक की मृत्यु तथा वज्जि गणराज्य की स्थापना की तिथि 750 ई पू. के लगभग निश्चित है। राय चौधुरी[64] विदेह मे राजतत्र की समाप्ति तथा कराल जनक की मृत्यु की तिथि 600 ई पू के लगभग निश्चित करते हैं। लेकिन 600 ई पू मे वज्जि-*गणराज्य की स्थापना तिथि इसलिए उचित नही प्रतीत होती है क्योकि भगवान* बुद्ध के समय मे वज्जि गणराज्य एक पूर्ण विकसित तथा सुसगठित गणराज्य था। इस उच्च स्तर की स्थिति प्राप्त करने में कुछ समय अवश्य लगा होगा। अतः हम यहा केवल यह कह सकते है कि कराल जनक की मृत्यु 650 ई पू मे हुई होगी, तथा विदेह क्षेत्र में फैले कुल या गणराज्यो का लिच्छवियो के नेतृत्व में एकीकरण *तथा वज्जि गणराज्य की स्थापना 600 ई पू के कुछ वर्ष पूर्व लगभग 650 ई.* पू. में हुई होगी। सभवत पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी लिखे जाने का समय भी यही था।[65] पाणिनि ने पालि के वज्जि को वृजि[66] (सस्कृत) का उल्लेख एक गणराज्य के रूप में किया है।

विदेह वज्जि सघ म सम्मिलित था या नही

योगेन्द्र मिश्र[67] ने इस प्रश्न को उठाते हुए निष्कर्ष निकाला कि विदेह वज्जि सघ *में सम्मिलित नही था, बल्कि यह कराल जनक की मृत्यु के पश्चात् भी एक राज*-तत्र के रूप में अस्तित्व में रहा, जिसे बाद में महापद्मनन्द ने 363 ई पू. मे ध्वस्त किया था। इसीलिए पतजलि के समय के पूर्व विदेह का कही भी गणराज्य के रूप में उल्लेख नही हुआ है।' हम यहा इस मत की समीक्षा करेंगे।

1 योगेन्द्र मिश्र ने जातकों में उल्लिखित विदेह राजाओ (जिनकी कुल *सख्या जातको में 15 है) का शासन कराल जनक की मृत्यु के पश्चात् माना है।*[68] लेकिन बहुत से विद्वानो[69] ने जातको में उल्लिखित कुछ विदेह राजाओ की पहचान कराल जनक के पूर्व जनक राजाओ से की है। उपेन्द्र ठाकुर ने जातको के विदेह राजाओ को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में लेने से पैदा होने वाली

समस्याओं[70] की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए इन राजाओं को विदेह गण के नेता[71] के रूप में मानने की राय दी है।

2 इसी तरह योगेन्द्र मिश्र का यह तर्क है कि सूत्रकृतांग[72] में उल्लिखित 6 क्षत्रिय कुल (उग्र, भोग, अश्वकि ज्ञातृक, कौरव तथा लिच्छवि) में विदेह का उल्लेख नहीं होने से स्पष्ट है कि विदेह वज्जि संघ में सम्मिलित नहीं था। लेकिन उक्त ग्रंथ में वज्जि (अट्ठकथा के परमत्थ जोतिका[73] के अनुसार जिन्हें गोपालक कहा गया है) का भी उल्लेख नहीं है। क्या उन्हें भी वज्जि संघ से अलग माना जाए ? अतः योगेन्द्र मिश्र का यह तर्क समीचीन नहीं प्रतीत होता है।

3 भारत युद्ध के पश्चात् तथा महापद्मनन्द के समय तक विदेह में अगर राजतंत्र व्यवस्था जारी रही होती तो पुराण कृति जनक (जनमेजय कालीन) के आगे भी संभवतः उन राजाओं का क्रम जारी रखते। इसके अभाव में कहा जा सकता है कि विदेह में कृति जनक के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी दुर्बल हुए होंगे तथा उनके समय में विदेह में राजनीतिक उथल पुथल हुई होगी। संभव है, कराल जनक तक जनक वंश के राजा किसी न किसी रूप में अपने को स्थापित किए रहे होंगे। इन राजाओं को जातकों में खोजा जा सकता है। लेकिन कराल जनक की मृत्यु के पश्चात् यह स्थिति भी संभवतः नहीं रह गई, और विदेह में गणराज्य स्थापित हो गया। उपेन्द्र ठाकुर का मत है कि पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी लिखे जाने के पूर्व तक विदेह और वैशाली अलग अलग गणराज्य के रूप में अस्तित्व में रहे होंगे।[74] और बाद में अन्य 6 कुलों को मिलाकर वज्जि संघ की स्थापना कर ली हो।[75] इस प्रकार अजातशत्रु द्वारा वज्जि संघ तोड़े जाने तक यह वज्जि संघ का एक अंग रहा होगा।[76]

4 योगेन्द्र मिश्र ने[77] बौद्ध साहित्य में उल्लिखित कुछ राजाओं को भगवान बुद्ध का समकालीन विदेह राजा सिद्ध करने का प्रयास किया है जो समीचीन नहीं प्रतीत होता है। उन्होंने ललित विस्तार[78] में उल्लिखित सुमित को विदेह का राजा माना है। लेकिन पुराणों[79] में इस सुमित को स्पष्ट रूप से बृहद्बल (इक्ष्वाकु वंशीय राजा जो भारत युद्ध में कौरवों के पक्ष में लड़ा तथा अभिमन्यु द्वारा मारा गया था) के वंश का राजा बताया गया है। इसी प्रकार योगेन्द्र मिश्र तिब्बती दुल्व[80] में उल्लिखित विरुद्धक को विदेह का राजा कहा है जो उचित नहीं है क्योंकि विरुद्धक (विडडभ) प्रसेनजित का पुत्र व उत्तराधिकारी था। इसने ही भगवान बुद्ध की मृत्यु के कुछ माह पूर्व शाक्यों पर आक्रमण कर उन्हें जड़ मूल नष्ट कर दिया था।[81]

5 विदेह में राजतंत्र के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपने अंतिम साक्ष्य में गिलगित मैनुस्क्रिप्ट[82] की कथा का उल्लेख करते हुए कहा है कि विदेह बिंबिसार तथा भगवान बुद्ध के समय एकाधीन राज्य था। इसमें उल्लिखित

कथा के अनुसार 'मगध या विदेह राज्य' (स्पष्ट नहीं है) में 500 अमात्यों का दरबार। अमात्य खण्ड था जो अन्य अमात्यों की ईर्ष्या के कारण राज्य छोड़ कर वैशाली चला गया, जो गणाधीन था। किन्तु विलियम [illegible] का यह विवरण बहुत ही विवादास्पद है। अन्य विद्वान इसे 'विदेहराज' कहते हैं तथा पी. के. भट्टाचार्य[43] 'मगधराज' कहते हैं। अतः इस विवादास्पद विवरण को आधार मानकर कोई निष्कर्ष निकालना उचित प्रतीत नहीं होता।

6. पुराणों[44] का कथन है कि भारत युद्ध के पश्चात महापद्मनन्द के समय तक मिथिला में 28 राजाओं ने राज्य किया। किन्तु पुराणों में मात्र 28 राजाओं की गणना का उल्लेख होने से यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता है कि विदेह में भारत युद्ध के पश्चात 28 राजाओं ने राजतन्त्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत अनवरत रूप से शासन किया। अतः केवल यही अनुमान लगाया जा सकता है कि कराल जनक की मृत्यु के पश्चात् विदेह वज्जि संघ का अंग होकर अस्तित्व में रहा होगा तथा वज्जि संघ के पतन के पश्चात् काशी मगध का हो गया होगा। सम्भवतः इसीलिए पतंजलि ने महाभाष्य[45] में विदेह तथा लिच्छवि का अलग-अलग गणराज्य के रूप में उल्लेख किया। रिस डेविड्स[46] भी विदेह में हुए शासन व्यवस्था के परिवर्तन की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि वैदिक साहित्य तथा जातक के अनुसार यहां पहले राजतन्त्र था तथा बाद में गणतन्त्र के अन्तर्गत आ गया। तिब्बतीय अथवा पाली विवरण में लिखा है कि यहां तीन बार प्रजातन्त्र शासन प्रणालियां स्थापित की गई थी, और तीन बार पुनः एकराज शासन प्रणाली के रूप में परिवर्तित हुई।[47]

उपरोक्त तथ्यों के अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विदेह वज्जि गण का अंग रहा था, जैसा कि अन्य बहुत से विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।[48] इसीलिए अंगुत्तर निकाय में विदेह का अलग से उल्लेख नहीं हुआ।[49] बौद्ध ग्रंथों से भी हमें यह ज्ञात होता है कि वैशाली में रहने वाले प्रत्येक कुल अलग-अलग प्रतीकात्मक रंग का अपना पताका तथा वस्त्र धारण करता था।[50] इसके अतिरिक्त [illegible] यही सूचना देता है कि निरयावलियों में लिखा है कि विदेह की राजधानी वैशाली भी रही थी।[51] इसी तरह बारहवीं शताब्दी में रचित त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरितम्[52] में भी विदेह की राजधानी वैशाली होने की पुष्टि की गई है। इन विवरणों से पता चलता है कि विदेह की राजधानी में परिवर्तन होता रहा है। जनक काल में मिथिला तथा भगवान बुद्ध के समय में वैशाली इस सम्पूर्ण क्षेत्र की राजधानी रही होगी।[53] संभवतः इसीलिए महावीर स्वामी को जैन ग्रंथों में विदेह पुत्र, वैदेहदत्त, विदेहजात्य तथा विदेहकुमार के साथ ही वेसालिये (वैशालिक) के नाम से भी पुकारा गया है।[54]

संदर्भ तथा टिप्पणियां

1 उपेन्द्र ठाकुर, मिथिला, पृ 63, वाल्मीकि रामायण, 1, 47-48
2 वाल्मीकि रामा (सम्पा जी. एच भट्ट, ओरियंटल इंस्टीच्यूट, बड़ोदा, 1960), 1. 46 17,20

तस्य पुत्रो महातेजा सम्प्रत्येष पुरीमिमाम्
आवसत्यमरप्रख्य सुमतिर्नाम दुर्जय ॥17॥
सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम्
श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठ प्रत्युद्गच्छ महायशा ॥20॥

3 वायु 85 22, विष्णु, IV 1 59, 61, गरुण, I 138 14 भाग IX एवस 2 36, पृ III 61 17, मिथिला पृ 115 16, पार्जि, एशियेन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन्स (लण्डन) 1922, पृ 147, वैशाली, पृ 73
4 उपेन्द्र ठाकुर, मिथिला, पृ 63 सुमति के विभिन्न नाम पुराणों में मिलते हैं जैसे विष्णु पु (IV 1 58) में सुमति, भाग पु (IX, 2 36) में सुमात तथा रामा (1 47 17) में प्रमाति, लेकिन सभी में इसे अंतिम राजा के रूप में दर्शाया है
5 योगेन्द्र मिश्र वैशाली, पृ 88
6 बी एस त्रिवेद, ज वि रि सो (1951) भाग, 1-2 पृ 140
7 डी एस सरकार, वैं अभि ग्र पृ 67
8 बी वगाचाय, वैदिक इंडिया पार्ट 1, पृ 434
9 महा, II 30 3, 12
10 योगेन्द्र मिश्र वैशाली पृ 87
11 रा कृ चौधुरी, वही, पृ 4, महा, कर्णपर्व, अध्याय 5, सत्यनारायण सिंह, हिस्ट्री आफ तिरहुत, पृ 16-17, क्षेमधृति की पहचान मिथिला के राजा क्षेमारि (विष्णु पु) से का जा सकती है
12 वही, पृ 4, महा आदि पर्व, 113
13 अति प्राचीन ग्रंथ 'सूत्र कृतांग' में वैशाली क्षेत्र के छ क्षत्रिय कुल में उग्र, भोग, इक्ष्वाकु, ज्ञातिक कौरव तथा लिच्छवि का उल्लेख है जिसके प्रत्येक सदस्य अपने को राजा कहते थे (सैं बु ई 45 पृ 339)
14 महा XIII 81, 107 भीष्म कहते हैं, आर्य भूमि में कुछ ऐसे राज्य हैं जहां हर कोई अपने को राजा कहता है
15 वैं अभि ग्रं पृ 100 मिथिला, पृ 117
16 देवसहाय त्रिवेद, ज रि सो 1951, भाग 1-2, पृ 140
17 महा XIII 80 44
18 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 90, अथर्ववेद (XII 10.29) में एक तक्षक वैशालेय का उल्लेख मिलता है तथा वैशाली के नागाओं का उल्लेख दीघ निकाय (डाय, II, पृ 288) में भी है, इसी तरह शिशु नाग का सबंध वैशाली से है (द्रष्टव्य, जार्ज टर्नर, महावंश, सीलोन, 1837, भूमिका पृ 37 38) संभवत 'भोग' कुल के लोग मुकुट में सर्पफण को

अलग से पहचान के रूप में लगाते थे. सर्पफण से चित्रित गुप्त काल की मूर्तियां इस क्षेत्र के उत्खनन में मिली हैं, जो वैशाली सग्रहालय में सुरक्षित रखी हैं

19 महाभारत के भाष्यकार नीलकण्ठ के अनुसार (महा III, 139, XII 344 20) विशाला नदी बड़ी या बद्री के पास (महा III 90 25 26) में बहती थी

20 वैशाली, पृ 89

21. महा VI ९ 56-57 कच्छो, गोपालकक्षो जागलो कुरु वारणको, किरातों, बर्बरों, सिद्धो, वैदेहो तथा ताम्रलिप्तको आदि का उल्लेख गणो की सूची में है इनमें से 'गोपाल कक्ष' का सबध गोपालव वज्जियो से जोड़ा गया है इसी तरह महाभारत (महा II 29 4) में उल्लिखित पूर्वी कबीले जिन्हें भीम ने दिग्विजय के समय परास्त किया था, का सबध मूल वैशाली क्षेत्र से जोड़ा गया है (वैशाली पृ 91 94 पर उद्धृत)

22. महा IX 38 4, 21, XIII 25 44

23अ महा 13 25 44

23ब महा I.35 12, V 103 14 वै अभि ग्र, पृ 63

24अ वै अभि ग्र, पृ. 63

24ब मिथिला, पृ 30 विद्वानो ने 'जनक' नाम को पारिवारिक वश पद माना है (राय चौधुरी, पो हिस्ट्री पृ 54), वायु पुराण (89 23) कहता है

धृतेस्तु बहुला श्चोऽभद् बहुता श्वमुत कृति
तस्मिन सतिष्ठतेवंशो जनकाना महात्म नाम् ॥

जनक पद के लिए देखिए, महा III 133 17 रामा 1 67 8, 1 5 3, भाग, IX 13, पार्जिटर के अनुसार मिथि से जनक वश नाम का आरम्भ हुआ (मिथिला, पृ 31 पर उद्धृत), जातको में कई सारे जनको के उल्लेख मिलते हैं परतु यहा जनक को जन कबीले के नेता के रूप में लिया गया है (मिथिला पृ 32) अत जातको में आए जनक राजाओं को राजतत्रीय परपरा में नहीं लिया जा सकता है

25 मिथिला, पृ 4 जनक और याज्ञवल्क्य दोनो हिरण्य नामक व्यक्ति के शिष्य या याज्ञवल्क्य और कृतिजनक के समकालीन होने के प्रमाण का इससे भी पता लगता है कि जनमेजय के पुत्र व उत्तराधिकारी शतानिक याज्ञवल्क्य के पास वेदो का अध्ययन करने के लिए गए थे

26 रिस डेविड्स (बुद्धिष्ट इडिया पृ 26)

27 मिथिला, पृ ९3 पुराणो मे भारत युद्ध के पश्चात केवल तीन राजवशों की वश तालिका मिलती है जो भगवान बुद्ध के समय तक क्रमबद्ध रूप से चलते हैं वे हैं पौरव (हस्तिनापुर कोशाम्बी), इक्ष्वाकु (कोशल) तथा बार्हद्रथ (मगध) । (एन एन प्रसाद, क्रानोलाजी आफ एशियेन्ट इडिया पृ 249 259)

28 वही पृ 53

29 वही, पृ 54 58

30 सुरुचि जातक, सख्या, 489

31 गधार जातक, 406

32 जातक, 539

33 जातक, 541

34 जातक, 544

35 जातक, 546

36. जातक, 494
37 साङ्यायन श्रौतसूत्र, xvi 9 11
38 मिथिला, पृ 51
39 जातक, 541; अश्व घोष, बुद्ध चरित्र, iv 80, (ईस्ट सी xl-ix, 45, पो हिस्ट्री, छठा संस्करण, 81 रायचौधुरी कराल जनक की पहचान पुराण के कृति जनक से करते हैं, द वैदिक एज, पृ 236, मिथिला, पृ 59
40 अर्थ 1 7 दाण्डक्यो नाम भोज • कमाद् ब्राह्मण कायामभिमन्यमान सबन्धु राष्ट्रो विनाश करालश्च वैदेह'
41 पो हिस्ट्री, पृ 95-96, रायचौधुरी स्वीकार करते हैं कि जनक कुल के पतन के पश्चात् भारत की राजनीतिक स्थिति का बहुत सही चित्र बौद्ध सूची प्रस्तुत करती है
42 पाणिनि (अष्ट IV 1 71) ने दो तरह के गणराज्यो का उल्लेख किया है एक जो राजा के अन्तर्गत था दूसरा सघो या गणो के अतर्गत था पाणिनी ने 'सघोद्गोगणप्रशसयो,' में सघ व गण को एक ही अर्थ में लिया है (वही III 3 47)
43. महापरिनिब्बान सुत्त (डायलाग्स, II, पृ 78 81)
44 पो हिस्ट्री, पृ 95
45 फाउसबोल जातक, खण्ड 1, पृ 203 और आगे, खण्ड 3, पृ 168, जा, 351, खण्ड 3, पृ 13-14
46 रायचौधुरी, पो हिस्ट्री (पचम स), पृ 154, वि पाठक, हिस्ट्री आफ कोशल, पृ 210
47 फाउस बाल जातक खण्ड 2 (सेय्य जातक), पृ 403, खण्ड 5, (तेसकुण जा), पृ 112
48 रायचौधुरी, पो हिस्ट्री (पचम स) पृ 154, रतिलाल मेहता, प्री बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ 67, रैप्सन, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, भाग 1 पृ 180 वि पाठक, हिस्ट्री आफ कोशल पृ 210
49 रायचौधुरी, पृ 154, वि पाठक, वही, पृ 210.
50 जातक, 239
51 जातक, 283 • समवत काशी से प्राप्त होने वाला वार्षिक लगान ही दहेज के रूप में दिया गया, न कि काशी का अधिकार बिम्बिसार के पास गया था (वि पाठक, हिस्ट्री आफ कोशल, पृ 210)
52 वि पाठक, हिस्ट्री आफ कोशल, पृ 107 व 21 . प्रसेनजित भगवान बुद्ध का हमउम्र होने का दावा करता था प्रसेनजित कहता है, 'भगवाऽपि कोसलको अहम्पि कोसलको। भगवाऽपि असीतिको अहम्पि असीतिको 11' (मज्झिम निकाय, ii 4 9 धम्मचेतिय सुत्तान्त) इसी प्रकार दुल्व (रॉक हिल, लाइफ आफ बुद्ध, पृ 16) कहता है कि वह उसी दिन पैदा हुआ था जिस दिन भगवान बुद्ध पैदा हुए थे प्रसेनजित जब अतिम बार भगवान बुद्ध से मिलता है (मेटलुम्प में) तो इसी प्रकार का दावा करता है (अट्ठ कथा, राहुल साङ्कृत्यायन द्वारा 'बुद्धचर्या' हिन्दी, पृ 473 और आगे मे उद्धृत) यह सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है कि भगवान बुद्ध का जन्म 563 ई पू में हुआ था, अत. प्रसेनजित के जन्म का वर्ष भी इसे ही स्वीकार किया जा सकता है भगवान बुद्ध की मृत्यु 483 ई पू मे हुई थी, सभवत मेटलुम्प में प्रसेनजित से अतिमबार मिलने के कुछ माह उपरान्त, लेकिन प्रसेनजित के पुत्र व उत्तराधिकारी विडुभ द्वारा शाक्यो पर आक्रमण के

पूर्व नहीं, क्योंकि भगवान बुद्ध ने स्वयं विड्डम द्वारा शाक्यों का नष्ट किया जाना देखा था इस तरह प्रसेनजित का अंतिम शासन काल 483 ई पू माना जा सकता है (वही, पृ 107) इसी प्रकार प्रसेनजित की बहन का विवाह बिम्बिसार से हुआ था (वही, पृ. 210) अत प्रसेनजित को भगवान बुद्ध तथा बिम्बिसार का समकालीन स्वीकार किया जा सकता है वड्ढकी सूकर जातक (जा 283) के अनुसार प्रसेनजित ने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह अजातशत्रु के साथ किया था (वही, पृ 214)

53 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 9०.

54 मिथिला, पृ 39, एनलस, भाग 13, पृ 323 और आगे

55 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 99 योगेन्द्र मिश्र ने इन तीन वंशो का तुलनात्मक विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला है कि भारत युद्ध (पार्जिटर के गणनानुसार भारत युद्ध की तिथि 950 ई पू तथा प्रत्येक राजाओं की शासनावधि 19 वर्ष मानते हुए) से बौद्ध धर्म के उत्थान काल तक 22 पीढ़िया बीत चुकी थीं.

55 पार्जिटर, वही, पृ 125

57 वैशाली पृ 101, टिप्पणी

58 कृष्णदत्त वाजपेयी तथा वि चन्द पांडे, प्राचीन भारत का इतिहास (आदर्श प्रकाशन, 1963) पृ 79, मजुमदार, रायचौधुरी (प्राचीन भारत, 1970 पृ 49) तथा वि पाठक (हिस्ट्री आफ कोशल, पृ 107) आदि भगवान बुद्ध का निर्वाण तिथि 483 ई पू माना है

59 महावंश के अनुसार बुद्ध निर्माण के 60 वर्ष पूर्व बिम्बिसार सिंहासन पर बैठा था

60. राहुल साकृत्यायन बुद्ध चर्या (हिन्दी), पृ 426

61 पीछे, टिप्पणी 52 देखिए

62 वैशाली पृ 101-102 योगेन्द्र मिश्र ने भारत युद्ध के पश्चात् से महापद्मनन्द तक राज्य कर चुके 28 मैथिली राजाओं में से जातकों में आए 15 विदेह राजाओं को घटाकर 13 राजाओं की 12 पीढिया (दो राजा भाई-भाई थे) भारत युद्ध (950 ई पू) से कराल जनक तक राज्य किया माना है और इसके अनुसार उन्होंने 950-225 वर्ष (12 × 19) = 725 ई पू के लगभग कराल जनक की मृत्यु तथा वज्जि गणराज्य की स्थापना तिथि निकाला है

63 उपेन्द्र ठाकुर, मिथिला, पृ 53

64 रायचौधुरी, पो हिस्ट्री, पृ 83

65 अष्टाध्यायी की रचना तिथि के विषय में वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनि कालीन भारत (हिंदी, पृ 477 और आगे) मे विभिन्न विद्वानों ने अपना मत इस प्रकार दिया है श्री गोल्डस्तुकेर और आर जी भण्डारकर (पाणिनि कालीन भारत पृ 267 पर उद्धृत) के मतानुसार इसकी रचना सातवी शताब्दी ई पू में हुई थी के बी पाठक (ज. बि उ रि सी पृ 83) ने इसका समय सातवीं शताब्दी पूर्व के उत्तरार्द्ध रखा है डी आर भण्डारकर (पाणिनि कालीन भारत, पृ 467 पर उद्धृत) ने इसकी रचना तिथि 600 ई पू. माना है रायचौधुरी (हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट., 1936, पृ 30) ने इसका रचना काल 500 ई पू, माना है

66 अष्टाध्यायी IV 2. 131 'मद्रवृज्यो कन्',

67 योगेन्द्र मिश्र वैशाली पृ 117
68 वही पृ 101 पाद टिप्पणी 3
69 रिस डविड्स (बुद्धिस्ट इंडिया पृ 26) महाजनक (जा 539) की पहचान कृति जनक से करता है निमि जनक के निमि पहचान मिथिला के आदि संस्थापक मिथि के पिता के रूप मे भविष्य पुराण कराता है (मिथिला प 30 पर उपेन्द्र ठाकुर द्वारा उद्धत)
70 उपेन्द्र ठाकुर मिथिला पृ 59
71 उपेन्द्र ठाकुर मिथिला पृ 3
72 सें बु ई 45 पृ 339
73 पा ट मो प 158 160
74 उपेन्द्र ठाकुर मिथिला प 63 64 65 66
75 वही प 66 हिंदू पा द्वितीय स प 54 184
76 वही प 55 65 कनिंघम एशियण्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया (स मजूमदार) पृ 445 46
77 योगेन्द्र मिश्र वशाली पृ 121
78 ललित विस्तार (अंग्रेजी अनुवाद) प 40
79 शिव 11 5 1941 भाग IX 12 15 विष्णु IV 22 10 मत्स्य 270 14 15 इसकी मत्यु से सूय वंश का अंत कोशल मे हो जाता है (इस्वाकुणमय वंश सुमित्रान्तो भविष्यति' भाग मत्य शिव आदि) हिस्ट्री आफ कोशल प 107 पर उद्धृत
80 राकहिल पृ 63 योगेन्द्र मिश्र वही प 121
81 विशुद्धानंद पाठक हिस्ट्री आफ कोशल प 107
82 गिलगित मैनुस्क्रिप्ट भाग 3 खण्ड 2 प 3 5 रमेशचंद्र मजूमदार ने भी इसे हिस्टोरिकाल मैटीरियल इन द गिलगित मनुस्क्रिप्ट में विदेह राज पढा है (विमलचरण ला वाल्यूम पाट 1 प 134)
83 इ हि क्वा 1947 भाग 23 1 पृ 58 61
84 मत्य 272 16 वायु 98 318 वह III 74 137 डायेनिस्ट्रीज आफ कलि एज प 24 69
85 महाभाष्य 4 168 (हिंदू पा पृ 50 टिप्पणी)
86 बु इ पृ 26 (जायसवाल हिंदू राज्यतंत्र हिंदी अनुवाद काशी संवत 2008 विक्रमी) पृ 180 पर उद्धत
87 मैक्रिंडल कृत मेगस्थनीज पृ 203 (जायसवाल वही पृ 180 पर उद्धत)
88 रिस डविड्स बुद्धिस्टइंडिया पृ 22 25 26 सत्यनारायण सिंह हिस्ट्री आफ तिरहुत (कलकत्ता 1922) पृ 34 वि च ला क्षत्रिय क्लान्स (कलकत्ता 1922) प 160 161 राय चौधुरी पो हि (प्रथम संस्करण 1923 व छठा स) प 83 95 118 काशीप्रसाद जायसवाल हिंदू पालिटी प 41 42 47 50 मलालसेकरा डिक्शनरी आफ़पाली प्रापर नेम (लण्डन 1938) भाग 2 पृ 813 818 879
89 अंगुत्तर निकाय भाग 1 प 213 भाग 4 पृ 252 256 260
90 वि च ला क्षत्रिय क्लॉस पृ 8
91 निरयावलियाओ (गोपानी व चोक्षा द्वारा सम्पा) पृ 16 (वैं अभि ग्र पृ 92 पर उद्धत)

92 वै अभि ग्र पृ 92, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरितम्, पत्र 77, पर्व 10, सर्ग 6.
93 वै अभि ग्र, पृ 92
94 आचारांगसूत्र, पत्र, 389, वै अभि० ग्र पृ. 92, विजेन्द्र सूरी, तीर्थंकर महावीर, भाग 1, पृ 83. विशाल देश मे जन्म लेने के कारण महावीर स्वामी को 'वैशालिक' कहा गया है वैशाली न सिर्फ नगरी का नाम है बल्कि पूरे क्षेत्र को वैशाली क्षेत्र कहते थे ह्वेनसाग (*बील बुद्धिस्ट रिकार्ड, भाग 2, पृ 66*) ने इसे वैशाली देश कहा है

3

बौद्धकालीन राजनीतिक इतिहास

मगध साम्राज्य तथा लिच्छवि

बौद्ध साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी ई पू मे वर्तमान गोरखपुर तथा उत्तरी बिहार के प्रदेशो मे अनेक गणतन्त्र विद्यमान थे।[1] कुछ गणराज्य जैसे भग्ग, बुली, कोलिय बहुत छोटे गणराज्य थे जिनकी सीमा आधुनिक तहसीलो से अधिक नही थी। शाक्य, मल्ल, लिच्छवि और विदेह राज्य कुछ बडे थे, परतु सब मिलाकर भी इनका विस्तार लबाई मे 200 तथा चौडाई मे 100 मील से अधिक नही था।[2] पश्चिम मे वर्तमान गोरखपुर से पूर्व मे दरभगा तक, उत्तर मे हिमालय से दक्षिण मे गगा तक इन गणराज्यो का विस्तार था।[3] वज्जि गणराज्य सबसे अधिक भू भाग पर फैला था।[4] केवल यही गणराज्य इतना शक्तिशाली था जो अपने पडोसी मगध के राजतन्त्र से प्रतिस्पर्धा कर सकता था।

छठी शताब्दी ई पू के मध्य तक वज्जि गणराज्य तथा मगध राज्य बिना किसी प्रतिस्पर्धा के साथ साथ चल रहे थे। लेकिन राजगृह मे बिम्बिसार के सिंहासनारूढ (543 ई पू) होने पश्चात् दोना राज्यो की महत्वाकाक्षाए आपस मे टकराने लगी थीं। डी आर. भण्डारकर का मत है कि मगधराज बिम्बिसार ने वज्जियो का मागध से निष्कासन किया था।[5] उन्होंने तर्क दिया कि वैशाली को पहले (बौद्ध ग्रथ सुत्त निपात)[6] मागधपुरम् कहा जाता था। लेकिन उनका यह तर्क स्वीकार नही किया जा सकता। क्योकि किसी भी साक्ष्य से यह ज्ञात नही होता है कि बिम्बिसार ने कभी वज्जियो को गगा पार निष्कासित करके मगध पर अधिकार किया था। वास्तव मे भण्डारकर का यह तर्क सुत्त निकाय के श्लोक (38) का अशुद्ध अर्थ लेने पर आधारित है। व्याख्याकार ने मागधपुरम वैशाली के लिए नही, बल्कि राजगृह के लिए प्रयुक्त किया है।[7] उसी श्लोक मे 'पासाण-चेतिय' (पाषाण चैत्य) का उल्लेख यह दर्शाता है कि मागधपुरम वैशाली नही

था। वैशाली के चारो ओर कई चैत्यों का उल्लेख मिलता है लेकिन पासाण चैतिय (पाषाण चैत्य) का उल्लेख यहीं भी नहीं मिलता है। सुत्त निपात के श्लोक (1014) म इस बात का उल्लेख है कि यह चैत्य एक पर्वत शिखर पर स्थित था। इसस सभावना बनती है कि यह राजगृह के आसपास के चैत्यों मे से एक रहा होगा, जैसा कि स्पष्ट है कि वैशाली मे या आसपास कोई पर्वत श्रेणी नहीं है।[8]

लिच्छवियो और मगध नरेश बिम्बिसार के मध्य युद्ध और मैत्री स्थापित होने का वर्णन बौद्ध ग्रथ[9] मे मिलता है। लेकिन युद्ध का कारण और उसकी तिथि का उल्लेख नही मिलता है। योगेन्द्र मिश्र[10] का विचार है कि यह युद्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे मगधराजा के द्वारा अग आक्रमण से जुडा था। सभवत. लिच्छवियो ने बिम्बिसार के द्वारा अग पर आक्रमण करने का विरोध किया हो, या अग विजय के पश्चात् बिम्बिसार ने गगा की उपत्यका (बौद्ध साहित्य में जिसे अग उत्तराप कहा गया है) पर अपने अधिकार का दावा किया हो जो सभवत पहले अग का भाग रहा हो और इस बीच लिच्छवियो ने अनुकूल अवसर देखकर गगा की उपत्यका पर अधिकार कर लिया हो। स्थिति जो भी रही हो, इतना सत्य है कि इसी क्षेत्र पर अधिकार को लेकर लिच्छवियो तथा मगध राज बिम्बिसार के मध्य युद्ध हुआ था। इस युद्ध का विस्तृत विवरण नही मिलता है। केवल इतना ज्ञात होता है कि युद्ध के दौरान बिम्बिसार वैशाली की प्रसिद्ध राज गणिका अम्बपाली से मिलने गया था। वहा वह सात दिन तक ठहरा था, बाद म जिससे अम्बपाली को अभय[11] नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पाली ग्रथो मे बिम्बिसार से उत्पन्न अम्बपाली के पुत्र का नाम 'विमलकोंदण्ड' लिखा है जो बाद मे भिक्षु बन गया था।[12]

जैन स्रोतो स ज्ञात होता है कि बिम्बिसार का विवाह लिच्छवि राजा चेटक की पुत्री चेल्लणा स हुआ था। डी आर भण्डारकर इसे मगध तथा वैशाली के मध्य वैवाहिक सधि के रूप मे लेते हैं।[13]

राहुल साकृत्यायन[14] धम्मपद अट्ठकथा (4-2) के आधार पर बिम्बिसार और भगवान बुद्ध के मध्य एक वार्ता का उल्लेख करते हैं जिसमे बिम्बिसार का 300 योजन क्षेत्र (अर्थात अग मगध) पर आधिपत्य कहा गया है। इस वार्ता की तिथि राहुल साकृत्यायन के अनुसार भगवान बुद्ध के 6 वर्षा ऋतु के फाल्गुन पूर्णमासी (अर्थात् मार्च 522 ई पू) है। इस प्रकार वैवाहिक सधि के पश्चात् शाति स्थापना की तिथि मार्च, 522 ई पू की हो सकती है।

इतिहासकारो का मत है कि अजातशत्रु अपने पिता बिम्बिसार को बदीगृह मे डालकर 491 ई पू के लगभग (भगवान बुद्ध के निर्वाण की तिथि 483 ई पू को) सिंहासन पर बैठा था। अगर अजातशत्रु इस समय 34 वर्ष[15] का था तो उसका जन्म 525 ई पू के लगभग हुआ होगा। इस प्रकार अजातशत्रु की मा

चेल्लणा का बिम्बिसार के साथ विवाह 526 ई पू से पूर्व मे नही हो सकता है। यही तिथि (526 ई पू) मगध वज्जि युद्ध की तिथि के रूप म स्वीकार की जा सकती है।

अजातशत्रु की मा लिच्छवि कुमारी चेल्लणा ही थी या अन्य कोई, यह विचारणीय प्रश्न है। अति प्राचीन जैन ग्रथ निरयावली सुत्त के अनुसार वैशाली के लिच्छवि राजा चेटक की पुत्री चेल्लणा थी।[16] चेटक की बहन स्वामी महावीर (विदेह दत्ता) की मा त्रिशला थी। महावीर चरित्र के अनुसार श्रेणिक (बिम्बिसार) ने चेल्लणा का अपहरण करके विवाह किया था, और इसी से हल्ल और वेहल्ल नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।[17] दिव्यावदान[18] के अनुसार राजगृह का राजा बिम्बिसार की वैदेही उसकी महादवी (प्रमुख रानी) थी जिसका पुत्र व कुमार अजातशत्रु था। यह वैदेही, विदेह की अर्थात् वैशाली की राजकुमारी हो सकती है। ऐसा लगता है कि इसी कारण अजातशत्रु को वेदेहि पुत्र-या वैदेही पुत्र[19] कहा गया है। निरयावली सूत्र की यह कहानी आगे भी जैन ग्रथों मे दोहराई गई है। अत यह तो निश्चित है कि बिम्बिसार की एक पत्नी विदेह अर्थात वैशाली (क्योकि वैशाली विदेह भूमि मे स्थित था) की थी।[20] तिब्बती दुल्व अजातशत्रु की मा का नाम वासवी बताता है, और एक आख्यान[21] की चर्चा करता है जिसे बौद्ध ग्रथों म नही खोजा जा सकता है। इस आख्यान के अनुसार वासवी लिच्छवियो के सेनापति सिंह की ज्येष्ठ पुत्री थी जिसका विवाह बिम्बिसार से हुआ था। एक अन्य तिब्बती कथा में अजातशत्रु की मा का उल्लेख श्री भद्रा के रूप मे हुआ है जो हमें चेटक की पत्नी सुभद्रा[22] की याद दिलाता है। इसी तरह मद्दा (मद्रा) के नाम का उल्लेख भी अजातशत्रु की मा क रूप म हुआ है।[23] इस प्रकार हम अजातशत्रु की मा के पाच नामो—चेल्लणा, वैदेही, वासवी, श्री भद्रा और मद्दा (मद्रा) का उल्लेख मिलता है। इनमे स दो नाम वैदेही और मद्रा क्रमश विदेह तथा मद्रा की कुमारी के रूप मे हो सकता है, जैसे कौशल्या व कैकेया नाम क्रमश. कोशल व कैकेय देश से बने हैं सभवत। बिम्बिसार की सभी रानिया मातृत्व भावना से अजातशत्रु को पुत्र कहती थी, जो विदेह, कोशल और मद्र (क्रमश चेल्लणा, कोशलदेवी और खेमा) से सबध रखती थी।

जैन परपरा मे जहा अजातशत्रु की मा को चेल्लणा कहा गया है, वहा बौद्ध परपरा मे ऐसा नही है। दिव्यावदान[24] के अनुसार वैदेही बिम्बिसार की महादेवी है और अजातशत्रु उसका पुत्र व कुमार है। इस तरह जैन व बौद्ध दोनो साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि अजातशत्रु की मा एक विदेह कुमारी थी। बौद्ध निकायो में अजातशत्रु को उसी तरह विदेही पुत्र (वैदेही पुत्र) कहा गया है जिस तरह महावीर स्वामी को जैन ग्रथो में वेदेहिपुत्र, वैदेह दत्ता, विदेहजात्य तथा विदेह

कुमार कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि अजातशत्रु तथा महावीर स्वामी की मा विदेह भूमि से सबध रखती थी। बुद्धघोष सयुक्त निकाय[25] के भाष्य मे यद्यपि वेदेहि पुत्र का एक दूसरा अर्थ वेद—इन – वेदनि दूहति अर्थात् 'गुणसम्पन्न राजकुमारी का पुत्र' लिया है। लेकिन यह स्वीकार नही किया जा सकता है। यहा अजातशत्रु को विदेह भूमि से सबध रखने के कारण ही वेदेहि पुत्र कहा गया है। स्वय बुद्धघोष ने एक अन्य स्थान पर इस शब्द का सीधा अभिप्राय विदेह भूमि से सबद्ध होने के कारण वेदेहि पुत्र लिया है।[26] सयुक्त निकाय म प्रसेनजित अजातशत्रु को भगिनी पुत्र कहकर पुकारता है[27] परतु वह यहा भगिनिपुत्र शिष्टाचार मे कहा है। अजातशत्रु प्रसेनजित का सगा भगिनीपुत्र नही था। वरना अपने सगे भगिनीपुत्र से काशी गाव का अधिकार वापस नही लेता और युद्ध के पश्चात् पुन. अपनी पुत्री का विवाह अजातशत्रु से नही करता। तच्छ सूकर जातक[28] मे अजातशत्रु और प्रसनजित के मध्य एक युद्ध का सदर्भ मिलता है। लेकिन इसमे स्पष्ट रूप से नही कहा गया है कि महाकोसल की पुत्री (प्रसेनजित की बहन) जिसका विवाह बिम्बिसार से हुआ था, अजातशत्रु की वास्तविक मा थी। इसी तरह घुस जातक[29] और मूषिक जातक[30] मे कोसलकुमारी को अजातशत्रु की मा कहा गया है, लेकिन इसमे दिया विवरण भ्रम पैदा करता है। अत कहा जा सकता है कि कोसलादेवी अजातशत्रु की वास्तविक मा नही, बल्कि सौतेली मा थी।

बिम्बिसार वैशाली से वैभव एव ऐश्वर्य मे प्रतिस्पर्धा करता था। उसने एक प्रमुख श्रेष्ठि के मुख से जब यह सुना कि वैशाली मे अम्बपाली नाम की एक राजगणिका है जो परम सुदरी, रमणीय, नयनाभिराम, परम सुदर वर्णा, गायन-वादन नृत्य विशारद तथा अभिलाषी जन बहु दर्शनीय है[31] तो उसने भी उसका अनुसरण कर राजगृह नगरी की सालवती[32] नामक एक परम सुदरी नवयुवती को राजगणिका का पद देकर सम्मान किया। सभवत यह घटना बिम्बिसार-अम्बपाली के गुप्त मिलन से पूर्व की है।

बिम्बिसार के समय मे मगध[33] के कुछ ब्राह्मण दूत व्यापार आदि के सबध मे वैशाली मे रहते थे। इससे वैशाली और मगध के मध्य मैत्री होने का आभास मिलता है।

मगध की भाति अन्य पडोसी राज्या से भी लिच्छवियो का सबध मैत्रीपूर्ण था। लिच्छवियो के पडोसी मल्ल भी वसिष्ठ गोत्र[34] के थे। दोनो गणतत्र व्यवस्था के थे।[35] दोनों अपने सदस्यो को राजा[36] उपाधि से विभूषित करते थे। ये सदस्य राजा अपने अपने राज्य के सथागार मे एकत्र होकर आतरिक तथा बाह्य समस्याओ पर विचार करते थे।[37] दोनो उस समय नए उभर रहे प्रगतिशील धर्म, बौद्ध व जैन धर्म म रुचि लेते थे। उपरोक्त तथा अन्य कई कारणो से दोनों को मनुस्मृति मे ब्राह्मण व्यवस्थाकारो ने 'व्रात्य' के अतर्गत उल्लेख किया है।[38]

निरयावलि सूत्र के अनुसार नौ लिच्छवि, नौ मल्ल तथा काशी कोशल के अठारह गणराजाओं ने अजातशत्रु के आक्रमण का विरोध करने के लिए एक सयुक्त मोर्चा बनाया था।[39] अपनी मैत्री सुदृढ करने के लिए इन सभी राजाओं ने महावीर स्वामी के निर्वाण पर शोक प्रकट करते हुए प्रस्ताव पास किया, 'ज्ञान का प्रकाश हमारे बीच नही रहा। अब हमे उनके आदर्शों और जीवन मूल्यों को स्थायी बनाने के लिए दीपसज्जा करनी चाहिए[40] काशी कोशल के इन अठारह गणराजाओं की पहचान करना कठिन है। हेमचन्द्र रायचौधुरी सुझाव देते हैं कि काशी कोसल ये के गणराजा सभवत कोसल राज्य के अतर्गत स्वशासित कोलिय, शाक्य तथा गणराज्य थे।[41]

कोसल के साथ भी लिच्छवियो का सबध मैत्रीपूर्ण था। महालि[42] (वैशाली का एक लिच्छवि कुमार) तथा प्रसेनजित (जब कोशल के कुमार थे) तक्षशिला मे सहपाठी और घनिष्ठ मित्र थे।[42] एक बार प्रसेनजित एक हत्यारे अगुलिमाल को पकडने के लिए जा रहे थे तो मार्ग म भगवान बुद्ध मिले। भगवान बुद्ध के यह पूछने पर कि तुम मगध राज बिम्बिसार से लडने जा रहे हो या लिच्छवियो से ?' प्रसेनजित ने उत्तर दिया, 'मगधराज बिम्बिसार और वैशाली के लिच्छवि दोनो मेरे मित्र हैं।'[44] दीघ निकाय के अनुसार भगवान बुद्ध जब महावन के कूटागारशाला मे ठहरे हुए थे तो कोशल और मगध के ब्राह्मण दूत भी वैशाली म एक साथ रह रहे थे।[45]

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य राज्यो के साथ भी मैत्री सबध का उल्लेख हमे जैन साहित्य में मिलता है। वत्स तथा वैशाली के मध्य वैवाहिक सबध था। मृगावती[46] (चेटक की सात पुत्रियो म स एक) का विवाह शतानीक (वत्स का राजा जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी) से हुआ था। इस विवाह की पुष्टि भास रचित 'स्वप्न वासवदत्तम्'[47] म भी मिलता है जिसम उदयन (शतानीक का पुत्र) को वैदेही कहकर पुकारा गया है। मृगावती विदेह (वैशाली) की थी। सभवत इसीलिए उसे वैदेही और उसके पुत्र उदयन को वैदेही पुत्र कहा गया है।[48]

मगध के सिंहासन पर जब तक बिम्बिसार रहा, लिच्छवियो के सबध मैत्रीपूर्ण रहे। बिम्बिसार के काल म केवल एक घटना, अग पर आक्रमण की मिलती है, जिसका सभवत लिच्छवियो ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विरोध किया था। लेकिन दोनो राज्यो म वैवाहिक सधि (जिसकी तिथि हम ऊपर 522 ई पू के लगभग निर्धारित कर चुके हैं) के पश्चात् सबध पुन मधुर हो गए। लेकिन अजातशत्रु के विचार सभवत अपने पिता बिम्बिसार के विपरीत थे। बिम्बिसार के समय म जब वह अग की राजधानी चम्पा में राज प्रतिनिधि के रूप मे शासन कर रहा था, तभी से लिच्छवियों को पूरी तरह से नष्ट करने का सकल्प

दोहराया करता था।[49] जब वह 491 ई पू के लगभग मगध के सिंहासन पर बैठा तो सर्वप्रथम उसने अपना ध्यान लिच्छवियो की ओर केन्द्रित किया। फलस्वरूप मगध तथा लिच्छवि राज्य के मध्य एव निर्णायक युद्ध हुआ जिसमे लिच्छवियो की हार हुई, और वज्जि सघ का पतन हो गया।

लिच्छवि और मगध के मध्य युद्ध के कारण

(1) लिच्छवि और मगध के मध्य सघर्ष के कारण मूलत बाह्य नही बल्कि आतरिक थे। वैशाली म गणतत्र तथा मगध म राजतत्र होने के कारण उनमें सैद्धातिक मतभेद होना स्वाभाविक था। आदिकाल से इन दो विचारधाराओ मे सघर्ष चलता आया है। गणतात्रिक व्यवस्था मे प्रत्येक सदस्य महत्त्वपूर्ण होता है जबकि राजतात्रिक व्यवस्था म कुछ प्रमुख व्यक्ति ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। लिच्छवि लोग अपने प्रत्येक सदस्य को 'राजा' कहकर सम्मान देते थे। अत उसके प्रत्येक सदस्य मे अपने देश एव स्वतत्रता के प्रति आत्मोत्सर्ग की भावना रहती थी, जबकि मगध राज्य की नीति पडोसी राज्यो को हडप लेने की रहती थी। अजातशत्रु अक्सर कहा करता था, 'मैं इन वज्जियो पर प्रहार करूगा। यद्यपि वे पराक्रमी और शक्तिशाली हैं फिर भी मैं उन्हे उजाड दूगा ! मैं उन्हें समूल नष्ट कर दूगा।[50] अजातशत्रु की इसी नीति के परिणामस्वरूप अतत दोनो राज्यो के मध्य भयकर युद्ध हुआ।

(2) बिम्बिसार के समय म अग विजय से मगध को एक विस्तृत भूभाग और जलमार्ग प्राप्त हुआ। इससे मगध की आय मे पर्याप्त वृद्धि हुई। इसी जलमार्ग का उपयोग वैशाली के लिच्छवि भी करते थे।[51] अजातशत्रु इसी जलमार्ग पर एकाधिकार चाहता था। अत सिंहासन पर बैठते ही उसने सर्वप्रथम इसी जलमार्ग पर पूर्ण नियत्रण स्थापित करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया जिससे राज्य की आय म पर्याप्त वृद्धि हो सके।[52] लिच्छवि मगधराज अजातशत्रु के इस विचार से भलीभाति परिचित थे। वे अपने पडोसी शत्रु राज्य को किसी भी स्थिति म शक्तिशाली बनता नही देख सकते थे। वे जब भी अनुकूल अवसर पाते, नदी पार कर सीमा पर स्थित पाटलि ग्राम पर आक्रमण कर देते थे, और गाव वालो को घर से बेदखल कर आधे आधे माह तक गाव पर अधिकार जमाए रहते थे।[53] इस तरह लिच्छवि अजातशत्रु को तग किया करते थे जिससे अजातशत्रु क्रोधित होकर वज्जियो (लिच्छवियो) को समूल नष्ट करने की धमकी दिया करता था।[54] उसने इस ग्राम की सुरक्षा के लिए अपने दो मत्री सुनीध व वस्सकार को पाटलिग्राम मे दुर्ग निर्माण कराने का आदेश दिया।[55] वह जानता था कि लिच्छवियो को अशक्त करके ही मगध का प्रसार किया जा सकता था, जब तक लिच्छवि स्वतत्र हैं, मगध के प्रसार मे अवरोध उत्पन्न करते रहेंगे।

सुमगल विलासिनी[56] मे दी गई कहानी से भी अनुमान लगाया जा सकता है कि अजातशत्रु और लिच्छवियो के मध्य युद्ध होने का प्रमुख कारण दोनो राज्यो की सीमा निर्धारण करती गगा नदी के तट को अपने अधिकार में रखने के कारण हुआ था। कथा के अनुसार इस तट की लबाई एक योजन से अधिक थी। आधे भाग पर अजातशत्रु तथा आधे भाग पर वज्जियो (लिच्छवियो) का अधिकार था। इस तट के कुछ दूर हिमालय की तराई में एक बहुमूल्य पदार्थ (गधभण्ड ?) की खान थी। अजातशत्रु जब तक इस बहुमूल्य पदार्थ को लाने के लिए पहुचता उसके पूर्व ही लिच्छवि उसे खान स निकालकर भाग जाते थे। अजातशत्रु लिच्छवियो की इस कार्यवाही से बहुत क्रोधित होता था। लिच्छवि बार-बार ऐसा करने मे सफल हो जाते थे। जिससे मगध के कोप को भारी क्षति पहुचती थी। अतत अजातशत्रु ने इस खानयुक्त तट को पूर्णरूप से अपने अधिकार मे करने के लिए युद्ध किया।[57]

3 अजातशत्रु अपने पिता बिम्बिसार को बदीगृह मे डालकर सिहासन पर बैठा था। अजातशत्रु ने बदीगृह म अन्न-जल की पूर्ति पर भी रोक लगा दी जिससे कुछ ही समय पश्चात् बिम्बिसार की मृत्यु हो गई।[58] उसके इस घृणित कर्म से उसके सबधी भी शत्रु बन गए होगे।[59] अजातशत्रु को अपने एक सौतेले भाई अभय से भी खतरा था[60] जिसके रगो म लिच्छवि खून दौड रहा था। लिच्छवि अभय को बहुत चाहते थे।[61] अजातशत्रु ने सोचा कि लिच्छवियो की सहायता से अभय मगध के सिहासन पर बैठने की सोच सकता है। इस कारण भी सभव है अजातशत्रु के मस्तिष्क मे लिच्छवियो को नष्ट करने का विचार आया।[62]

4 वीरवस्तु से हमे एक और कहानी मिलती है। इसके अनुसार मगधराज (?) के यहा खण्ड नामक व्यक्ति 500 आमात्यो का प्रधान अमात्य था।[63] अन्य अमात्यो के ईर्ष्या के कारण खिन्न होकर एक दिन वह राज्य छोडकर वैशाली चला आया। कुछ दिनो पश्चात् वह लिच्छवियो का सेनापति नियुक्त हो गया। खण्ड की मृत्यु के पश्चात् वैशाली मे सनापति पद के लिए खण्ड के दोनो पुत्र गोप व सिह प्रत्याशी हुए। बहुमत द्वारा सिह सेनापति पद के लिए चुना गया। इस निर्णय से खण्ड का ज्येष्ठ पुत्र गोप दु खी होकर पुन राजगृह लौट आया, और बिम्बिसार की अनुमति पाकर उसने 'प्रधान मत्री' का पद सभाला। कुछ समय पश्चात् बिम्बिसार की प्रमुख रानी अकस्मात स्वर्गवासी हो गई जिससे बिम्बिसार बहुत दु खी रहने लगा। मगधराज की यह स्थिति देखकर अपने कनिष्ठ भाई सिह की दो पुत्रियो मे से कनिष्ठ पुत्री का विवाह बिम्बिसार से करने के लिए गोप ने सिह को पत्र लिखा। सिह ने उत्तर म लिखा कि वैशाली के नियमानुसार वैशाली म उत्पन्न किसी कन्या का विवाह बाहर के व्यक्ति से नहीं हो

सकता। अत कनिष्ठ पुत्री का विवाह बिम्बिसार से नही कर सकता। सौभाग्य से ज्येष्ठ पुत्री का जन्म वैशाली म नही हुआ था अत सिंह ने ज्येष्ठ पुत्री का विवाह बिम्बिसार से कर दिया। गोप ने यह बात गुप्त रखी थी लेकिन कुछ समय पश्चात् बिम्बिसार को इस बात की जानकारी होने पर दोना राज्यो के मध्य अत्यत कष्टदाई युद्ध हुआ। युद्ध मे पराजित होने पर लिच्छवियो ने मगधराज से बदला लेने (वैर निर्यातन) का प्रस्ताव पास किया जिसे एक बक्स म बद करके सुरक्षित रखा गया।[64]

5 इसके अतिरिक्त जैन ग्रथ निरयावलियाओ और त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र मे लिच्छवि और कुणिक (अजातशत्रु) के मध्य हुए युद्ध के एक अन्य कारण का उल्लेख है।[65] इसके अनुसार बिम्बिसार की एक लिच्छवि पत्नी चेलणा (राजा चेटक की पुत्री) से उत्पन्न दो पुत्र हल्ल और वेहल्ल थे। श्रेणिक (बिम्बिसार) अपने जीवनकाल में वेहल्ल को सयणग हाथी तथा अट्ठार सेवक हार उपहार मे दिया था। बाद मे इस उपहार को कुणिक (अजातशत्रु) की पत्नी ने प्राप्त करना चाहा। लेकिन अजातशत्रु द्वारा इन दोनो उपहारो की माग पर वेहल्ल ने यह शर्त लगा दी कि इस उपहार के बदले मे उसे आधा राज्य मिलना चाहिए। कुणिक ने इस माग को अस्वीकार कर पुन उपहारो की माग की। वेहल्ल डर कर अपने नाना चेटक के पास भाग आया। अजातशत्रु ने राजा चेटक से पुन उन उपहारो को वापस करने को कहा। उत्तर म चेटक ने कहा कि तुम (अजातशत्रु) और वेहल्ल दोनो मेरे दौहित्र और श्रेणिक (बिम्बिसार) के पुत्र हो। अत तुम (अजातशत्रु) अपने भाई वेहल्ल की बात मान लो, मैं तुम्हे वह उपहार लौटा दूगा। इस पर कुणिक ने क्रोधित होकर युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध मे चेटक की हार हुई जिसस दुखी होकर एक कुए (या गहरे जल) म कूदकर उसने आत्महत्या कर ली।[66]

लिच्छवि और अजातशत्रु के मध्य युद्ध

अजातशत्रु लिच्छवियो से युद्ध करने के लिए प्रारभ से ही अपनी शक्ति मे वृद्धि तथा सुरक्षात्मक कार्यवाही मे लगा रहता था। मगध राज के प्रतिनिधि के रूप में चपा मे रहते हुए उसने गगा और शोण के सगम के समीप पाटलिग्राम[67] को दुर्ग मे परिवर्तित कराया था। दूसरी ओर लिच्छवियो ने भी वैशाली की सुरक्षा हेतु उसे प्राकार मे घेर लिया जिसमे तीन ही प्रवेश द्वार थे तथा वहा सुरक्षा के सभी आवश्यक साधन जुटाए गए थे।[68] लिच्छवियो की इस सुदृढ स्थिति को देखते हुए अजातशत्रु उन पर आक्रमण करने की भूल नही कर सकता था। अत उसने पहले लिच्छवियो की सैनिक शक्ति की तुलना मे अपनी सैनिक शक्ति बढाने की ओर विशेष ध्यान दिया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने दो आधुनिक ढग के भयकर

हथियारों का निर्माण कराया।[69] वह अच्छी तरह जानता था कि लिच्छवियो की अतुलनीय एकता और अदम्य देश भक्ति के रहते उसकी इच्छा कभी नहीं पूर्ण हो सकेगी।[70] अत लिच्छवियो मे फूट डालने की इच्छा से उसने अपने कुशल राजनीतिज्ञ मन्त्री वस्सकार को भगवान बुद्ध के पास परामर्श के लिए भेजा।[71] भगवान बुद्ध लिच्छवियो तथा अजातशत्रु दोनो से बहुत स्नेह करते थे।[72] अत वस्सकार के आग्रह पर भगवान बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द को सबोधित करते हुए लिच्छवियो की उन सात विशेषताओ का विवरण वस्सकार को दिया जो लिच्छवियों की शक्ति के मूल कारण थे।[73] इन सात विशेषताओ, जिसका लिच्छवि पालन करते थे, का विवरण सुनकर बुद्धिमान मत्री वस्सकार भगवान बुद्ध से बोला, इसका अर्थ यह हुआ कि बिना लिच्छवियों मे फूट पैदा किए उनकी एकता व शक्ति को तोडना मगधराज के लिए कठिन है।[74] वस्सकार के माध्यम से लिच्छवियो की शक्ति का मूल आधार जानकर अजातशत्रु ने लिच्छवियो मे फूट डालने के लिए एक षड्यत्र रचा। उसने वस्सकार के परामर्श से राजगृह मे ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिसमे पडोसी लिच्छवि यह समझ बैठे कि वस्सकार और अजातशत्रु मे अनबन हो गई है। इस तरह वस्सकार कौटिल्य नीति द्वारा राजगृह को छोडकर लिच्छवियो की राजधानी वैशाली आ गया। लिच्छवि अपनी अदूरदर्शी दृष्टि के कारण वस्सकार को समझने मे भूल कर बैठे, और वस्सकार को अपना हितैषी समझ कर उसे एक सम्मानित पद (धर्माधिकारी) पर आसीन कर दिया। इस महत्त्वपूर्ण पद का उपयोग करते हुए वस्सकार ने पहले लिच्छवियो मे उनका हितैषी होने का विश्वास पैदा किया। इसके पश्चात् कौटिल्य नीति से उनमे फूट पैदा करना उसने प्रारभ किया जिसका तनिक भी आभास लिच्छवियो को नहीं हुआ। इस तरह वस्सकार लिच्छवियो की सभी महत्त्वपूर्ण बातो की गुप्त सूचना अजातशत्रु को देता रहा। इस सूचना के माध्यम से लिच्छवियो को पराजित करना अजातशत्रु के लिए सुगम हो गया।[75]

लिच्छवि अजातशत्रु की साम्राज्यवादी नीति से भलीभाति परिचित थे। उन्होंने भी अपनी शक्ति मे वृद्धि के लिए आवश्यक कदम उठाए। लिच्छवि राजा चेटक ने राजतत्रीय राजा अजातशत्रु के विरुद्ध गणतत्र की रक्षा के लिए, जिसके लिए लिच्छवि सदैव बलिदान के लिए तैयार रहते थे, लोगो को उठ खडे होने का आह्वान किया।[76] चेटक ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पडोसी गण-राजाओं को भी सगठित होने का आह्वान किया जिससे गणतात्रिक व्यवस्था की सुरक्षा की जा सके। फलस्वरूप अजातशत्रु के विरुद्ध नौ लिच्छवि, नौ मल्ल तथा काशी कोशल के अठारह गण राजा चेटक के नेतृत्व मे सगठित हो गए।[77] इस प्रकार लिच्छवियो की स्थिति काफी सुदृढ हो गई।

लिच्छवि और अजातशत्रु के मध्य युद्ध सभवत भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण

(483 ई पू) के पश्चात प्रारभ हुआ था। अजातशत्रु अपने दस सौतेले भाइयो के साथ मैदान मे आ डटा जिनमे प्रत्येक के पास तीन हजार हाथी, तीन हजार रथ, तीन हजार घोड़े तथा बडी सख्या मे पैदल सैनिक थे।[78] युद्ध के प्रथम दस दिनो मे हर दिन मगध-सेना का एक सेनापति चेटक के हाथो मारा गया।[79] इससे अजातशत्रु बहुत अधिक हतोत्साहित हुआ। ग्यारहवें दिन अजातशत्रु ने लिच्छवियो के विरुद्ध दो नए के ढग विनाशकारी यत्र—महाशिला कण्टक तथा रथमूसल का प्रयोग किया जिससे अजातशत्रु की पराजय विजय मे परिवर्तित होने लगी।[80] और अत मे चेटक के नेतृत्व मे बना सयुक्त मोर्चा बिखर गया।

सयुक्त मोर्चे मे सम्मिलित सभी गणराजा चेटक का साथ छोडकर अपने-अपने घर (राज्य) लौट आए। चेटक अकेला मगध सना से लडता रहा। अतत वह भी पराजित हुआ जिससे दुखी होकर उसने आत्महत्या कर ली। चेटक के नेतृत्व मे लड रही लिच्छवि सेना नेपाल की ओर जगलो मे भाग गई।[81] युद्ध-क्षेत्र मे लिच्छवि राजा चेटक को पराजित करने के पश्चात् अजातशत्रु ने अभेद्य वैशाली पर घेरा डाला। लेकिन वैशाली के प्राकार के भीतर प्रवेश करना मगध सेना के लिए सरल नही था। उपेन्द्र ठाकुर[82] का मत है कि दोनो के मध्य यह युद्ध लगातार सोलह वर्ष तक चला था। लेकिन भगवती सूत्र[83] मे इस युद्ध की केवल एक वर्ष की अवधि का उल्लेख है जो अधिक विश्वसनीय लगती है। इसका समर्थन बुद्ध घोष[84] ने भी किया है। श्रमण-भगवान-महावीर[85] के विवरण के अनुसार इस युद्ध मे 96,00,00 सैनिक मारे गए थे। तथ्य जो भी हो, यह निश्चित है कि लिच्छवियो की पराजय तथा वैशाली पर अजातशत्रु का अधिकार भेद नीति[86] के कारण हुआ था। वैशाली के पराजित शेष लिच्छवियो ने अजातशत्रु की प्रभुता स्वीकार कर ली।[87]

बौद्ध तथा जैन ग्रथो के वर्णन कई जगह पर मेल नही खाते हैं। बौद्ध विवरण के अनुसार लिच्छवियो की पराजय वस्सकार के कूटनीति के कारण हुई। जैन विवरण के अनुसार लिच्छवियो की पराजय का प्रमुख कारण युद्ध का लबा और कठिन होना था। लेकिन दोनो विवरण यह विश्वास करने को बाध्य करते है कि लिच्छवियो की पराजय सरलता से नही हुई होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अजातशत्रु की निपुणता, कूटनीति तथा सुदृढ सैनिक सगठन के कारण लिच्छवियो को अतत पराजित होना पडा था। अजातशत्रु इसलिए भी प्रशसा के योग्य है कि युद्ध जीतने के लिए उसने दो आधुनिक अस्त्र महाशिला कण्टक तथा रथमूसल को प्रस्तुत करने मे विशेष रुचि दिखाई।[88] बाशम महोदय इन दोनो हथियारो की ऐतिहासिकता को स्वीकार करने मे असहमति प्रकट करते हैं। उनके विचार मे सिकदर के आक्रमण के समय मे भी एशिया में ऐसे युद्धास्त्रो के प्रयोग का प्रमाण नही मिलता।[89] फिर भी बाशम

महोदय यह अनुभव करते हैं कि जैन कथा यह दर्शाती है कि नागरिक तथा सैनिक दोनो क्षेत्र मे मगधराज अपने समय से आगे बढ गया था।

वज्जि संघ का पतन

वज्जि सघ यद्यपि एक बहुत ही शक्तिशाली राजनीतिक सगठन था लेकिन अजातशत्रु उससे भी अधिक कुशल राजनीतिज्ञ तथा सगठनकर्ता था। उसने एक ओर अपनी सुरक्षा शक्ति दृढ करने के लिए पाटलिपुत्र ग्राम के निर्माण मे रुचि ली, दूसरी ओर उसने लिच्छवियो की एकता भग करने के लिए कुशल राजनीतिज्ञ वस्सकार को कूटनीति द्वारा वैशाली भेजा जिसने बडी बुद्धिमत्ता[90] से लिच्छवियो मे फूट डाल दी। लिच्छवियो की पराजय का एक कारण धीरे-धीरे उनका विलासी होते जाना भी था। बौद्ध ग्रथों[91] से लिच्छवियो के सबध मे पता लगता है कि युवा लिच्छवि नर्म तकिए पर लबी नींद सोना पसद करने लगे थे। स्त्रियो को लेकर आपस मे झगडते थे। इनमे विलासिता बढती जा रही थी। वैशाली मे प्लेग तथा अनावृष्टि के कारण भी लिच्छवियो की शक्ति और समृद्धि को गहरा धक्का लगा होगा। लेकिन उनके पतन का प्रमुख कारण उनकी एकता मे कमी था, जो प्राचीन भारत के गणराज्यों के सदस्यो मे सामान्य तौर से पाई जाती थी जिसका सकेत महाभारत[92] मे भीष्म के मुख से कराया गया है।

इस प्रकार लिच्छवियो की पराजय का मुख्य कारण युवा-लिच्छवियों मे एकता की कमी, उनका निरतर विलासी होते जाना तथा दूसरी ओर मगध के राजनीतिक मच पर अजातशत्रु जैसे कुशल, दूरदर्शी एव महत्त्वाकाक्षी राजा का आना था।

लिच्छवियो की पराजय से मगध राज्य बढता हुआ एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित हो गया। अब अन्य कोई पडोसी राज्य लिच्छवि राज्य की भाति शक्तिशाली नही रहा था जो अजातशत्रु की महत्त्वाकाक्षा पर अकुश लगाने का प्रयत्न करता। अजातशत्रु दूरदर्शी था। लिच्छवियो को पूर्ण रूप से नष्ट नही करना चाहता था। उसका उद्देश्य केवल वज्जि सघ को तोडकर लिच्छवियो को निर्बल बनाना था। सभवत. इसीलिए उसने लिच्छवियो से अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार कराने के पश्चात् वैशाली में गणतात्रिक व्यवस्था पूर्ववत् रहने दी। आगे हम सभवत. इसीलिए कौटिल्य अर्थशास्त्र मे लिच्छवियो का गणराज्य के रूप मे उल्लेख देखते हैं।[93]

वज्जि सघ का पतन बुद्ध घोष[94] के अनुसार भगवान बुद्ध के निर्वाण के तीन वर्ष पश्चात् हुआ था। अर्थात् लगभग 480 ई. पू. मे वैशाली का पतन हुआ था।[95]

संदर्भ तथा टिप्पणियां

1 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, (प्रथम संस्करण), पृ 77
2 अल्तेकर, वही, पृ 77
3 वही,
4 परमत्थ जोतिका (पा टे सो) पृ 158 160 के आधार पर वज्जि 300 योजन क्षेत्र मे फैले हुए थे (वि च ला , क्षत्रिय क्लान्स 25 पर उद्धृत)
5 कारमाइकेल लेक्चर्स, 1918, पृ 72
6 सुत्तनिपात, पृ 185, श्लोक 38
7 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 136
8 वही, पृ 136, विमल चरण ला ने ट्राइब्स इन एंशियेन्ट इंडिया, पृ 328) इस पर्वत की पहचान राजगृह में गृध्रकूट पर्वत से की है, यहा भगवान बुद्ध अवसर ठहरा करते थे
9 द बुक आफ द डिसिप्लिन (विनयपिटक), भाग 1, पृ 189, गिल्गिट मैनुस्क्रिप्ट, भाग 3 खण्ड 2, पृ 20, रॉकहिल, पृ 64, हेनत्सांग विवरण (बुद्धिष्ट रिकार्ड्स आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, सैम्युल बील द्वारा अनु भाग 2, पृ 166) प्रस्तुत करता है कि वैशाली का राजा अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाते हुए बिम्बिसार के आक्रमण के विरुद्ध लगा रहा था
10 वैशाली, पृ 136
11 रॉकहिल, पृ 64, गिल्गिट मैनुस्क्रिप्ट, भाग 3 खण्ड 2 पृ 15 22
12 वैशाली पृ 137, साम आफ द सिस्टर्स, पृ '120-121, साम आफ द ब्रेद्रन, पृ 65
13 कारमाइकेल लेक्चर्स (1918) पृ 74
14 बुद्धचर्या (हिन्दी), पृ 78
15 योगेन्द्रमिश्र, वैशाली पृ 137
16 जैकोबी, स बु ई 22 पृ 13 टिप्पणी 3, आवश्यक चूर्णि (उत्तर भाग) पत्र 164, श्री हेम चन्द्राचार्य विरचित त्रिषष्ट शलाकापुरुषचरित्रम् पर्व 10, सर्ग 6 श्लोक 184-93
17 वै अभि ग्र पृ 92, त्रि श पर्व 10, सर्ग 6, श्लोक 184,
18 कावेल व वेल (अनु व सपा) भाग 1, पृ 545
19 दिव्यावदान, पृ 55, कमेन्ट्री आन मज्झिम निकाय, भाग 2, पृ 125, कमेन्ट्री आन सयुक्त निकाय, भाग 2, पृ 215, सयुक्त निकाय, भाग 2, पृ 268
20 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 138, पो हिस्ट्री पृ 207, टिप्पणी
21 रॉकहिल, पृ 63 64
22 ईस्ट सी 22, पृ 13, टिप्पणी 3
23 द बुक आफ द किन्ड्रेड सेयिंग्स, भाग 1, पृ 38, टिप्पणी
24 दिव्यावदान, पृ 55
25 सयुक्त निकाय III, 2 सेक्शन 4-5, बुद्धचर्या, पृ 409, टिप्पणी एक बार काशी गाव को लेकर प्रसेनजित और मगध के अजातशत्रु में विवाद उत्पन्न हो जाता है अजातशत्रु इस भूमि पर अपना अधिकार सिद्ध करते हुए तर्क करता है 'यह भूमि उसकी मां कोसला देवी

(बिम्बिसार की कोशल देश से ब्याही पत्नी) से संबंधित है'

26 कमेंट्री आन दीर्घ निकाय, भाग 1, पृ 47, कमे आफ मज्झिम निकाय भाग 1, पृ. 155, कमे, आन स निकाय, भाग 2, पृ 215, श्रीमती रिस डेविड्स द बुक आफ द क्रिड्रेड सेइग, भाग 1, पृ 109 टिप्पणी पर उद्धृत.

27 रिस डेविड्स, द बुक आफ द क्रिड्रेड सेइग, भ ग 1, पृ 110

28 जातक, 492

29 जातक, 338

30 जातक, 373

31 महावग्ग 8/1/2

32 महावग्ग, 8/1/3, रघुनाथ सिंह, बुद्ध कथा, पृ 407

33 दीर्घ निकाय, भाग 1, 6 (महालि सुत्र) = डायलाग्स भाग, पृ. 197

34 लिच्छवि के लिए देखिए, महावस्तु, भाग 1, पृ 283, रॉकहिल, पृ 97 और आगे, सैं बु ई भाग 22 पृ 191, 193, 226

35 मज्झिम निकाय, भाग 1, पृ 231

36 लिच्छवियों के लिए देखिए अर्थशास्त्र, XI 1, ललित विस्तर (अंग्रेजी अनु) पृ 39, मल्लो के लिए देखिए, अर्थशास्त्र, XI 1, डायलाग्स, III, पृ 201, टिप्पणी

37 सैं बु ई, 17, पृ 108 और आगे (लिच्छवि मोट हल्ल के लिए), डाय II, पृ. 167 (मल्ल मोट हल्ल के लिए)

38 मनु X 22

39 पो हि पृ 212 'निरयावलि सूत्र' नामक जैन ग्रथ का कथन है कि चेटक के नेतृत्व में नौ लिच्छवि, नौ मल्ल तथा काशी कोशल के अठारह गणराजा अजातशत्रु के विरुद्ध युद्ध मे सम्मलित हुए

40 सैं बु ई भाग 22, पृ 266

41 इडिया कल्चर, भाग 2, प 803, पो हि पृ 99 155, 192 193

42 धम्मपद (पृ 219) में इसे महालिच्छवि कहा गया है

43 बुद्धचर्या, पृ 440, टिप्पणी (धम्मपद-अट्ठकथा IV 3)

44 मज्झिम निकाय, II पृ 101

45 दीघ निकाय, II पृ 150

45 वै अभि ग्र, पृ 93, श्रमण भगवान महावीर, भाग 2, खण्ड 2, पृ 231 246

47 (गणपति शास्त्री द्वारा सपा) अक 4 पृ 68

48 वैशाली, पृ 142

49. सैं बु ई भाग 2, पृ 1-2

50 डायलाग्स, II, पृ 78, सैं. बु ई, भाग 2, पृ. 1 2

51 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 256-57 प्राचीन भारत में जब यातायात के अन्य साधन सड़क आदि सुरक्षित नहीं होते थे, व्यापारियों के आवागमन का जलयातायात ही प्रमुख साधन हुआ करता था बिम्बिसार ने इसलिए पहले ही अग विजय के साथ चपा के नदी-बंदरगाह (तट) को अपने अधिकार में ले लिया था अगर हम पालि विवरणों पर विश्वास करें तो देखते हैं कि व्यापारी दक्षिण से सोना, मणि तथा मसाले लाकर व्यापार करते थे विनय मूल, II, पृ 299, 301, महावस, 23 28.

52. वही, पृ 257, हितनारायण झा लिच्छवि पृ 92
53 बुद्धचर्या, पृ 491, टिप्पणी (उदान-अट्ठ कथा VIII 6)
54 डायलाग्स II पृ 78, योगेन्द्र मिश्र वैशाली, पृ 256
55 उवासगदसाव, II परिशिष्ट, पृ 7 कथाकोश (टाम्नी), पृ 176 और आगे, दिवाकर, विहार थ्रू द एंज, पृ 102.
56 सुमगल विलासिनी पा रे सो भाग 2 पृ 516 त्रिवेद पृ 38 वैशाली, पृ 257
57 वही बुद्धिस्ट स्टडीज (वि च ला द्वारा सपा कलकत्ता, 1931, पृ 199, झा लिच्छवि, प 94 पो हि पृ 38 वैशाली पृ 257
58 श्रमण भगवान महावीर (कलकत्ता) पृ 130
59 *वही जैसे ही कोशला देवी को पता चला कि अजातशत्रु ने अपने पिता (राजा श्रणिक)* की हत्या कर दी है वह गहरे विषाद में डूब गई यह सुनने पर पर्मदि (कोशल राज व कोशल देवी का भाई) ने तुरत काशी गांव को आत्मसात कर लिया जिसे कोशलराज ने कोशल देवी के विवाहोपलक्ष्य में मगधराज को दहेज में दिया था परिणामस्वरूप दोनों में युद्ध हुआ' (वही)
60 ला (सपा)—बुद्धिस्ट स्टडीज (कलकत्ता 1931) पृ 199 झा, लिच्छवि, पृ 94 पर जैन ग्रथ में जो कथा है उसके अनुसार अम्बपाली को बिम्बिसार से जो पुत्र उत्पन्न हुआ था उसका नाम विमल कोण्डज था जो बाद में भिक्षु हो गया था
61 ला वही पृ 199 झा लिच्छवि पृ 94
62 हितनारायण झा, लिच्छवि पृ 94 ला (सपा) बुद्धिस्ट स्टडीज (कलकत्ता 1931) पृ 199
63 इ हि क्वा 1947 भाग 23 1 पृ 58 61
64 वही
65 ला सम जैन कानिक्ल्स सूत्र (निरयावलि सूत्र) पृ 86-87 श्रमण महावीर भगवान, पृ 463 64 त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र (हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित) पव 10, सग 6 श्लोक 184 वैं अभि ग्र प 92 93 उवासगदसाव भाग 2 परिशिष्ट, पृ 7 मुशी (सपा) द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी पृ 23
66 ला वही श्रमण भगवान महावीर वही वैं अभि ग्र वही मुशी वही उवासगदसाव, वही
67 रिस एण्ड ओल्डनबग (सपा) विनय मूल (1882), भाग 2 पृ 101 फणिकर, ए सर्वे आफ इडियन हि पृ 30 व अभि ग्र पृ 36 सै बु ई, भाग II पृ 18
68 परमत्थजोतिका आन द खुद्दक पाद (स्मिथ द्वारा सपा) पा टे सो पृ 158 160 द बुद्धिस्ट रिकार्ड्स आफ द वेस्टन वल्ड (बील द्वारा अनु) भाग 2 पृ 66 ह्वेन त्सांग का विवरण भी इसकी पुष्टि करता है कि वैशाली नगर 60 या 70 ली के क्षत्रफल में फैला था योगन्द्र मिश्र (वैशाली पृ 131) में इन दीवारों के मध्य की दूरी तीन मील के लगभग स्वीकार करते हैं
69 भगवती सूत्र (3 भाग में बबई 1918 1920) सूत्र 299 और आगे ये दो नए हथियार थे—महाशिलाकटक तथा रथमूसल जिसके उपयोग से लिच्छवियों की पराजय हुई
70 वैं अभि ग्र पृ 36 हितनारायण झा लिच्छवि पृ 95
71 वही

72 ज व रि सो बुद्ध जयंती स्पेशल इश्यू, भाग 2, 'द पोजिशन आफ द बुद्ध इन द कन्फ्लिक्ट बिटवीन मगध एण्ड वज्जि', पृ 363 371, डाय, II, पृ 78 81
73 ज बि रि सो, वही, डाय, वही,
74 डायलाग्स, वही
75 दै अभि ग्र, वि भ सा का भाषण, पृ 37 दिवाकर, बिहार थ्रू द एजेज, पृ 102.
76 हितनारायण झा, लिच्छवि पृ. 96 डायलाग्स, भाग 2, पृ 79-80
77 मुंशी (सपा), द ऐज आफ द इंपीरियल यूनिटी, पृ 23, श्रमण भगवान महावीर पृ 465, योगेन्द्र मिश्र (वैशाली, पृ 260), कोशल युद्ध और वज्जि युद्ध को इसलिए एक ही घटना होने की सभावना पर बल देते हैं बाशम, 'अजातशत्रु वार विद लिच्छवि', प्रोसेडिंग आफ द इडियन हि कांग्रेस फार जयपुर, 1951 कलकत्ता, 1953, पृ 40 सभवत विड्डभ की हत्या के पश्चात् काशी कोशल के अठारह गणराज्य इस संधि में सम्मिलित हुए बाशम के मतानुसार ये गणराज्य विड्डभ की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे जब विड्डभ ने शाक्यो पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर दिया तो अन्य गण क्रोधित हो उठे, और अवसर देखकर किसी ने उसकी हत्या कर दी सभवत उसकी मृत्यु का फायदा उठाकर अन्य गणराज्यों ने स्वय को स्वतत्र घोषित कर लिया तथा अपने गणतत्र की सुरक्षा के लिए वैशाली के लिच्छवियो से सधि कर ली (वही) योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 260 टिप्पणी 4, रायचौधुरी (पो हि पृ 212 13) जैन परपरा की सत्यता पर विश्वास करते हुए लिखते हैं कि सभवत काशी कोशल के अठारह गणराज्य एक तरफ कोशल के राजा तथा दूसरी ओर लिच्छवि से सधि किए हुए थे.
78 श्रमण भगवान महावीर, पृ 466
79 भगवती सूत्र (3 भाग, बबई 1918 21), सूत्र 299 और आगे
80 भगवती सूत्र, वही ग्यारहवें दिन अजातशत्रु ने तीन दिन का उपवास रखकर इद्र से सहायता करने की प्रार्थना की जिससे भगवान इद्र प्रसन्न होकर दो विनाशकारी शस्त्र 'महाशिलाकण्टक' (जो बडे-बडे पत्थरो को शत्रु सेना पर फेंकता था) तथा रथ मूसल (जो शत्रु सेना को रौंदते हुए दौडता था) उपहार म दिया इन दोनो महाविनाशकारी शस्त्रो से लिच्छवि सेना को तहस-नहस कर दिया इस तरह इद्र की कृपा से अजातशत्रु का भाग्य बदल गया
81 आवश्यक सूत्र विद चूर्णि आफ जिनदास गणी, भाग 2 पृ 172 और आगे, योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 262 योगेन्द्र मिश्र का मत है कि अजातशत्रु से पराजित होने पर चेटक ने आत्महत्या कर ली अवशिष्ट लिच्छवि नेपाल भाग गए, लेकिन हितनारायण (लिच्छवि, पृ 98 टिप्पणी 3) योगेन्द्र मिश्र के निष्कर्ष को कि अवशिष्ट लिच्छवि नेपाल भाग गए, नहीं स्वीकार करते हैं उनकी राय मे अभिधान रोजेन्द्र (भाग 3, पृ 639) मे नेपाल गोट चूर्णि' को लिच्छवियो के नेपाल चले जाने से नहीं जोडा जा सकता है इस प्रकार आवश्यक सूत्र में नेपाल देश का उल्लेख नही मिलता अतिम स्रोत श्रमण भगवान महावीर (भाग 2, पार्ट 2, पृ 463 473) म केवल इतना लिखा है कि पराजित होने पर चेटक ने कुए या गहरे जल में कूद कर आत्महत्या कर ली और उसके सबधी विभिन्न दिशा में भाग गए अत इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अजातशत्रु से पराजित होने पर लिच्छवियो ने नेपाल मे आकर शरण ली लेकिन हितनारायण झा महोदय का मत किसी खास निष्कर्ष तक नहीं पहुचता आवश्यक सूत्र में जो कहानी दी गई है उसी से विदित

होता है कि अजातशत्रु के विरुद्ध नौ लिच्छवि, नौ मल्ल तथा अठारह काशी कोशल के गण-राजाओं का जो संयुक्त मोर्चा चेटक के नेतृत्व में लड रहा था, मगध सेना की भयंकर मार के कारण बिखर गया, और चेटक को छोड़कर अन्य सभी गणराजा अपने घर (राज्य) लौट आए. चेटक अंत तक अजातशत्रु का सामना करता रहा, लेकिन अन्तत उसे भी युद्ध के मैदान से भागना पड़ा, वह एक स्वाभिमानी सेनानी था अत वैशाली वापस जाने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना उचित समझा चेटक द्वारा आत्महत्या कर लेने पर उसके अनुयायी नेपाल की ओर या विभिन्न दिशाओं में (श्रमण भगवान महावीर, पृ 469 71) भाग गए संभवत जंगल-जंगल भागते हुए अंत में काठमाण्डो को उन लोगों ने अपना शरण स्थल बनाया जहां वे लंबे समय तक अपने को छुपाए रख सकते थे आगे चलकर यही लिच्छवि परिवार नेपाल की राजनीति में अपना स्थान बनाने में सफल हुआ।

आवश्यक सूत्र या श्रमण भगवान महावीर में दी गई कहानी से कहीं भी आभास नहीं मिलता है कि युद्ध क्षेत्र में पराजित होने पर अन्य लिच्छवि राजा के साथ चेटक भी वापस वैशाली आ गया था अत यही समीचीन लगता है कि चेटक के अनुयायी नेपाल में जाकर शरण लेना तथा अवशिष्ट वैशाली के लिच्छवि राजा लोग वैशाली की सुरक्षा में लगे रहे और काफी समय तक अजातशत्रु को वैशाली में घुसने नहीं दिया, लेकिन अतत अजातशत्रु को सफलता मिली

82 मिथिला, पृ 156

83 भगवती सूत्र में इस युद्ध की अवधि केवल एक वर्ष की बताई गई है (उपेन्द्र ठाकुर द्वारा, मिथिला, पृ 156, पर उद्धृत)

84 श्रमण भगवान महावीर, पृ 130

85 श्रमण भगवान महावीर, पृ 469 71 वैशाली को जीतने के लिए अजातशत्रु ने कई आक्रमण किए लेकिन जब उसे सफलता नहीं मिली तो इसका भेद जानने के लिए चंपा नगरी की एक अति सुन्दरी गणिका मागधिका को कूलवालुक तपस्वी के पास लिच्छवियों को पराजित करने की युक्ति जानने के लिए भेजा गणिका ने अपने आकर्षण एवं सेवा द्वारा तपस्वी को राजी कर लिया कि वह लिच्छवियों को पराजित करने की कोई युक्ति बताएगा तपस्वी वैशाली गया वहां एक दिन वह एक संगमरमर के स्तूप के समीप से गुजर रहा था कि उसे एक अभिलेख मिला जिससे वह नगर की अजेयता का रहस्य जान गया उसने अनुभव किया कि इस स्तूप का अस्तित्व ही वैशाली के अजेयता का कारण है उसने लिच्छवियों को गुमराह करने के लिए उन्हें बताया कि इस स्तूप के कारण ही यहां के लोग कठिनाई में फंसे हैं अगर वे इससे मुक्ति पाना चाहते हैं तो इस स्तूप को तोड दें लिच्छवियों ने उसकी बात में विश्वास कर उस स्तूप को दुर्भाग्य सूचक मानते हुए उसे तोड दिया. इसके तुरत बाद उसने अजातशत्रु के पास संदेश भिजवा दिया कि वह शीघ्रता से वैशाली पर आक्रमण कर दे इस प्रकार वैशाली की सुरक्षा पतित तपस्वी की विश्वासघाती धूर्तता के कारण टूट गई लिच्छवि अजातशत्रु की आक्रमणकारी सेना को नहीं रोक सके और वैशाली अजातशत्रु के अधिकार में आ गया (वही)

87 बाशम, वही, पृ 39, योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 262 मिथिला, पृ 156

88 उवासगदसाव 11, परिशिष्ट, पृ 59-60, कथा कोश, पृ 179

89. बाशम, वही, पृ 41

90 मैं. अभि ग्र पृ 37 वस्सकार की भेद नीति राजनीतिक न होकर सामाजिक थी. राजनीति

पर तो वह किसी से बात भी नहीं करता था, जैसे वह किसी से कहता, 'सुना है आजकल आप बड़े कष्ट में हैं, और भिक्षा मांगकर गुजारा कर रहे हैं' 'आप से किसने कहा,' युवक पूछता तो वस्सकार कहता, 'छोड़ो बताने से क्या लाभ' फिर बहुत कहने पर किसी का नाम बता देता, इसी तरह वह किसी से कहता,' 'वह जमीन जो आपके अधिकार में है वह क्या दूसरे की है? आपने उससे छीना है? वह पूछता कि किसने कहा तो वह घुमा फिरा कर किसी लिच्छवि का नाम ले लेता इस तरह लिच्छवि लोग आपस में विश्वास खोने और लड़ने लगे? उनमें एक साथ बैठना उठना बंद हो गया अपशब्द बोलना आम बात हो गई, जब यह स्थिति पराकाष्ठा पर पहुंच गई तब वस्सकार ने अजातशत्रु के पास संवाद भिजवाया कि अब आक्रमण करने का उचित अवसर आ गया है (वही)

91 संयुक्त निकाय, पृ 268, धम्मपद अट्ठकथा (टीका) III, पृ 280
92 महाभारत 12/107(हि,पालिटी) पृ 103 108 पर उद्धृत
93 त्रिवेद, वही, पृ 40, लिच्छवि, पृ 98, मिथिला, पृ 156, कौटिल्य अर्थशास्त्र, XI, *1 5 6, लिच्छविक, व्रजिक, मल्लक राजशब्दोपजीविन्*
94 दीघ निकाय 2, पृ, 522
95 वैं अभि ग्र पृ 22

4

ह्रासोन्मुख लिच्छवि गणराज्य

अजातशत्रु के दुर्बल उत्तराधिकारियो के पतन के पश्चात् शिशुनाग मगध के सिंहासन पर बैठा[1] जो महावश के अनुसार अमात्य[2] था। रायचौधुरी के अनुसार वह पहले वाराणसी का गवर्नर रह चुका था। सभवत उसकी योग्यता तथा कुलीनता से प्रभावित होकर ही जनता और मन्त्रियो ने नाग दासक को सिंहासन से उतार कर उसे अपना राजा निर्वाचित किया।[3] मालालकार वत्थु[4] नामक ग्रथ से ज्ञात होता है कि शिशुनाग एक लिच्छवि राजा से उत्पन्न वैशाली की एक 'नगर शोभिनी' का पुत्र था। जिसका पालन पोषण एक राजकीय अधिकारी ने किया था। योगेन्द्र मिश्र के अनुसार वज्जिसघ मे सम्मिलित भोगि या भोग कुल के लोग सभवत सर्पफण को प्रतीक चिह्न के रूप मे अपने मुकुट मे लगाते थे और महाभारत म 'वैशालेया भोगिन' का उल्लेख इसी कुल के सदर्भ मे हुआ है।[5] यदि योगेन्द्र मिश्र का समीकरण स्वीकार कर लिया जाए तो यह सभावना बन सकती है कि इसी भोग कुल के वशज बाद मे अपने नाम के साथ नाग' लगाने लगे होंगे। इस तरह शिशुनाग को भोग कुल से सबधित किया जा सकता है। रायचौधुरी शिशुनाग को हयङ्क नाग वश से सबधित बताते है।[6]

मालालकार वत्थु मे दी गई कथानुसार शिशुनाग को अपने जन्म की कथा ज्ञात होने पर पुन वैशाली को अपनी राजधानी बनाया, और उसी समय से राजगृह राजधानी होने से वचित हो गई, बाद मे उसे यह सम्मान कभी नही प्राप्त हुआ।[7] शिशुनाग ने अठारह वर्षों तक राज्य किया। उसके पश्चात कालाशोक या काकवर्ण[8] सिंहासन पर बैठा। उसने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया, लेकिन उसने वैशाली का महत्त्व कम नही किया।[9] महावश के अनुसार भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के 100 वर्ष पश्चात् (383 ई पू के आसपास वैशाली मे द्वितीया बौद्ध सगीति का आयोजन हुआ था।[10] यह सभवत कालाशोक के शासन काल (लगभग 393 365)[11] मे हुआ था। इस प्रकार वैशाली का महत्त्व बौद्ध

धर्म का केंद्र होने के कारण बना रहा।[12]

कालाशोक के पश्चात् संभवतः महापद्मनन्द सन 363 ई. पू के लगभग मगध के सिंहासन पर बैठा।[13] पुराणों में महापद्मनन्द को परशुराम के समान 'सर्वक्षत्रान्तक' कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि उसने अपने समय के बहुत से क्षत्रिय राजाओं को परास्त किया था।[14] पुराणों के अनुसार भारत युद्ध से महापद्मनन्द तक चौबीस इक्ष्वाकु, छब्बीस पांचाल, चौबीस काशी, छब्बीस हैहय (नर्मदा घाटी), बत्तीस कलिंग (उड़ीसा), पच्चीस अश्मक (गोदावरी घाटी), सैंतीस कुरू (दिल्ली प्रदेश), अट्ठाईस मैथिली, बत्तीस शूरसेन तथा बीस वीतिहोत्र नरेशों ने राज्य किया था।[15] जिन्हें महापद्मनन्द ने संभवतः समूल नष्ट कर एक छत्र साम्राज्य स्थापित किया।[16] लेकिन पुराणों में स्पष्ट नहीं कहा गया है कि उसने किन क्षत्रिय राजाओं को परास्त किया था। अतः इसके आधार पर कोई स्पष्ट निर्णय नहीं लिया जा सकता है।

महापद्मनन्द तथा उसके उत्तराधिकारियों के काल में वैशाली की क्या स्थिति रही, इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं उपलब्ध है लेकिन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पहले की तरह नन्दों के समय में भी लिच्छवि पाटलिपुत्र के राजाओं की प्रभुसत्ता स्वीकार करते हुए, अपनी गणतांत्रिक व्यवस्था को सुरक्षित रखे रहे। इसलिए कौटिल्य[17] अर्थशास्त्र में लिच्छवियों का गणराज्यों की सूची में उल्लेख मिलता है।

नन्दवंश के पतन के पश्चात् मगध के सिंहासन पर चन्द्रगुप्त मौर्य (लगभग 323 ई पू) सिंहासन पर बैठा। वैशाली क्षेत्र सौराष्ट्र की तरह परोक्ष रूप में मौर्य सम्राटों के साम्राज्य में था। यह वैशाली के उत्खनन से प्राप्त तीसरी शताब्दी ई पू की मौर्य कालीन मुहर से सिद्ध हो चुका है।[18] लेकिन यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वैशाली क्षेत्र में चन्द्रगुप्त प्रथम ने किस प्रकार की व्यवस्था की थी परंतु कौटिल्य अर्थशास्त्र यह संदर्भ अवश्य देता है कि लिच्छवि गणतांत्रिक स्वशासन का उपभोग कर रहे थे। इससे यह कहा जा सकता है कि संभवतः लिच्छवि मौर्यों के करद गणराज्य के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रहे।[19]

चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात् बिन्दुसार (लगभग 300 ई पू) सत्ता में आया। उसके पश्चात् अशोक (लगभग 269 ई पू) सिंहासन पर बैठा। उसके साम्राज्य के अंतर्गत कुछ तमिल राज्यों को छोड़कर संपूर्ण भारतवर्ष था।[20] ललित पाटन और रामपुरवा के अवशेष से स्पष्ट है कि नेपाल की तराई तथा चंपारण जिला तक का क्षेत्र उसके साम्राज्य के अंतर्गत था।[21]

अशोक लगभग 250 ई पू में पाटलिपुत्र से नेपाल जाते हुए वैशाली आया था, जहां उसने एक सिंह स्तंभ बनवाया। इस सिंह स्तंभ को वैशाली में उस स्थान

पर उसने स्थापित करवाया जहा से उसने नेपाल के लिए पद-यात्रा प्रारभ की थी। पाटलिपुत्र से वैशाली होता हुआ अशोक लौरिया अरराज, लौरिया नदनगढ राम पुरवा के भिखनाथोरी पहाडी पार कर नेपाल गया था। अपने मार्ग को चिह्नित करते हुए उसने एक सिंह स्तभ वैशाली तथा केसरिया (वैशाली से 30 मील दूर) एक स्तूप स्थापित कराया। इसी तरह आगे की यात्रा मे पडने वाले महत्त्वपूर्ण स्थल लौरिया अरराज म (गोबिंद गज के समीप) एक स्तूप तथा लौरिया नदनगढ तथा रामपुरवा (चपारण जिले के शिकारपुर से थोडी दूर पिपरिया के समीप) मे क्रमश एक एक स्तभ स्थापित कराया था।[22]

वैशाली मे प्राप्त एक मुहर (क्रम सख्या 800, प्लेट 50)[23] पर 'वैशाली अनुसण्यानक टकार' अकित है जिसे फ्लीट मौर्य कालीन मानते हैं। उनके अनुसार 'अनुसण्यानक' का अर्थ 'एक यात्रा' और पूरी पक्ति का अभिप्राय 'वैशाली पर्यटन विभाग या अधिकारी' है।[24] स्पूनर के मतानुसार इस पक्ति का अभिप्राय 'वैशाली का सब पुलिस स्टेशन टकार जहा से 'विषय' मुख्यालय वैशाली को कुछ महत्व-पूर्ण कागजात भेजे गये है।[25] इससे प्रतीत होता है कि अशोक के समय मे वैशाली एक महत्वपूर्ण 'विषय' मुख्यालय था। इतिहासकारो का मत है कि अशोक कलिंग विजय के उपरात अहिंसा का अनुयायी हो गया था और उसने रण विजय के स्थान पर धर्म विजय करने का अभियान चलाया। इस अभियान मे उसने बडी सख्या मे बौद्ध भिक्षुओ को तिब्बत तथा अन्य पडोसी देशो मे भेजा।[26] लिच्छवियो मे अधिकाश बौद्ध मत के अनुयायी तथा एक बडी सख्या मे बौद्ध भिक्षु थे जिसका अनुमान वैशाली मे हुई द्वितीय बौद्ध सगीति से लगाया जा सकता है। इसम वैशाली क्षेत्र के भिक्षुओ ने प्रमुख रूप से भाग लिया तथा नेतृत्व भी किया।[27] इस प्रकार वैशाली अशोक के समय मे भी महत्त्वपूर्ण धर्म स्थान रहा होगा। अशोक स्वय बौद्ध धर्म का अनुयायी था। अत यह अनुमान लगाना असगत नही होगा कि उससे बौद्ध धर्म के अनुयायी तथा प्रचारक लिच्छवियो को विशेष महत्त्व दिया हो, और वैशाली को सीधे अपने प्रशासन मे न लेकर 'गणराज्य' के रूप मे रहने दिया हो। सभवत इसका सपूर्ण प्रशासन बौद्ध लिच्छवियो के हाथ मे ही रहा तथा वैशाली को केवल नाम मात्र की प्रभुसत्ता के अतर्गत रखा हो। उसने बौद्ध जनता को प्रसन्न करने के लिए वैशाली मे भगवान बुद्ध से सबधित स्थलो को आकर्षक तथा तीर्थयात्रियो की सुख-सुविधा युक्त बनाने मे भी योगदान दिया हो, जैसा कि वैशाली क्षेत्र मे उसके द्वारा स्थापित स्तभो तथा स्तूपो से स्पष्ट आभास मिलता है।

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् पुष्यमित्र शुग ने उत्तरी भारत के शासन की बागडोर अपने हाथ मे ले ली।[28] उसी समय पश्चिमी भारत पर यवनो ने आक्रमण किया। कुछ विद्वानो के अनुसार मिलिन्द (मिनेण्डर) ने पाटलिपुत्र पर

भी चढ़ाई करके उसे पराजित कर अल्पकालीन विजय प्राप्त की थी।[29] किंतु पाटलिपुत्र मे इस उथल-पुथल से लिच्छवियो ने स्वतत्र होने का प्रयत्न किया हो, सदिग्ध है। सभवत पाटलिपुत्र से लगा हुआ क्षेत्र होने के कारण लिच्छवि अपने को स्वतत्र घोषित करने का अवसर नही प्राप्त कर सके होगे।[30]

वैशाली के उत्खनन मे प्राप्त तीन मृण्मय मूर्तिया मौर्य या शुग कालीन हैं तथा अन्य तीन खण्डित मृण्मय मूर्तिया मार्शल[31] के अनुसार निश्चित रूप से शुग कालीन हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैशाली पर पुष्यमित्र का प्रभुत्व रहा, था, यद्यपि यहा के प्रशासनिक स्वरूप के विषय मे कोई जानकारी नही मिलती है। लेकिन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ब्राह्मण व्यवस्था की पुनर्स्थापना करने वाले पुष्यमित्र शुग ने इस क्षेत्र के प्रशासन मे बौद्ध लिच्छवियो को उपेक्षित कर मैथिल ब्राह्मणो को नियुक्त किया होगा। इस अनुमान का आधार यह है कि पुष्यमित्र शुग ने अन्य प्रातों के प्रमुख पदो पर अपने परिवार के सदस्यों या सबधियो को ही नियुक्त किया था। पुष्यमित्र शुग द्वारा उपेक्षित किये जाने पर लिच्छवियो के मन मे स्वभावत केंद्र के प्रति अनास्था उपजी होगी, लेकिन शक्तिशाली पुष्यमित्र शुग के शासन काल मे प्रतिरोध करना उनके लिए सभव नही था। परतु जब पुष्यमित्र के दुर्बल उत्तराधिकारियो के काल मे केंद्र अशक्त हो हो गया तो लिच्छवियो ने अवश्य अनुकूल अवसर का लाभ उठाया होगा। परवर्ती शुग वशीय राजाओ के काल में ही मगध का साम्राज्य टूटने लगा था, इसके प्रमाण मिलते हैं। सभवत मागधी साम्राज्य की दुर्बलता का लाभ उठाकर लिच्छवियो ने भी अपने को स्वतत्र कर लिया हो।

विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति

वसुमित्र की मृत्यु (लगभग 126 ई. पू) के पश्चात् मगध साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था। पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठने वाले परवर्ती शुग नरेशो मे इतनी शक्ति नही थी कि देश मे फैली अराजकता को समाप्त कर शाति स्थापित कर पाते। दरबार स्वय षड्यत्र का अड्डा बन गया था।[32] इन्ही षड्यत्रों के द्वारा जल्दी-जल्दी राजा सिंहासन पर आसीन और अपदस्थ हुए। इसी क्रम मे अतिम शुगराजा देवभूति की हत्या (लगभग 75 ई पू) कण्व के द्वारा हुई थी।[33] यह अराजकता का युग था। कलिंग नरेश खारवेल द्वारा उत्तर भारत पर दो बार सफल आक्रमण करना भी इसी बात का द्योतक है।[34] इसी अशाति काल मे शुगो तथा यूनानियों की निर्बलता का लाभ उठाकर पश्चिम भारत मे गणराज्यो का पुनरुत्थान हुआ जिसमे यौधेय, मालव, क्षुद्रक, आर्जुनायन, कुकुर तथा वृष्णि आदि उल्लेखनीय हैं।[35] इसी तरह मध्यदेश के बहुत सारे सामत स्वतत्र शासक बन बैठे। इन स्वतत्र सामत राजाओ के 'मित्रान्त सिक्के' उत्खनन मे मिले हैं।

पुरातत्व विभाग कार्यालय[36] ने इन राजाओ की एक सूची तैयार की है जो उत्खनन म प्राप्त मुद्राओ पर अवलबित है। इसी सूची मे निम्नलिखित नाम हैं पुष्य मित्र, भद्रघोष, सूर्यमित्र अनुमित्र, भानुमित्र, अग्निमित्र, फाल्गुनीमित्र, भूमिमित्र, इद्रमित्र, विजयमित्र, सत्यमित्र, सभामित्र, आयुमित्र, ध्रुवमित्र। ये राजा शुग वश के थे, इस पर कुछ नही कहा जा सकता है। इतिहासकारो के लिए यह बहुत कठिन समस्या है कि वे इन राजाओ को कहा स्थान दें? लेकिन सिक्को के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि परवर्ती शुग राजाओ के काल म ये 'मित्रान्त' धारी राजा स्वतत्र राजा थे। असभव नही कि इसी अवधि म लिच्छवि गणराज्य भी कभी पुन स्वतत्र गणराज्य हो गया हो[37] यद्यपि इसका कोई साहित्यिक या पुरातात्विक साक्ष्य अभी तक नही मिला है। लेकिन उत्तर भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति तथा गुप्तो क उत्थान म लिच्छवियो के सहयोग करने योग्य शक्ति को देखते हुए इस सभावना को अस्वीकार नही किया जा सकता है कि लिच्छवि स्वतत्र हो गए हो।

परवर्ती शुग राजाओ तथा कण्वो के शासन काल म लिच्छवियो की क्या स्थिति थी, कही स्पष्ट उल्लेख नही मिलता है। लेकिन इन दुर्बल राजाओ के प्रभुत्व म लिच्छवि रहे हो अस्वाभाविक लगता है। सभव है कि लिच्छवियो ने स्वतत्र गणराज्य स्थापित कर लिये हो तथा उन्होने स्वतत्र सिक्के भी प्रसारित किए हो जिसका स्वरूप चन्द्रगुप्त कुमारदवी अकित सिक्के की भाति रहा हो। अल्तेकर महोदय[38] ने भी इस सभावना पर बल दिया है कि मालवा, यौधेयो तथा आर्जुनायनो की भाति लिच्छवियो ने भी 150 ई पू म 320 ई पू तक स्वतत्र सिक्के प्रसारित किए होगे। सभव है भविष्य म एसा कोई सिक्का वैशाली तथा आसपास के ऐतिहासिक स्थलो क उत्खनन म मिल भी जाए जिस पर चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्को का लेख 'लिच्छविय' अकित हो जिस बाद म चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपनाया था।

इस प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है कि लिच्छवि वसुमित्र की मृत्यु (लगभग 120 ई पू) के पश्चात कभी अपने को स्वतत्र कर लिया। इस मत की पुष्टि क लिए उस समय उठ रहे अन्य राजवशो के इतिहास पर दृष्टिपात करना अपेक्षित होगा। पुराणो[39] का कथन है कि सातवाहनो म प्रथम सिमुक अथवा शिशुक सुशमन कण्वायन तथा शेष शुग शक्ति को समूल नष्ट कर पृथ्वी पर शासन करगा। डा भण्डारकर[40] का मत है कि सिमुक न प्रथम शताब्दी ई पू मगध पर शासन किया था। इसी तरह जायसवाल[41] का मत है कि कण्वों के पश्चात् आध्रो न मगध पर 50 वर्षों तक शासन किया होगा। बाद म सातवाहनो को अपना ध्यान पश्चिम भारत म कुषाणो की ओर लगाना पड़ा। एसी स्थिति म सभव है कि लिच्छवियो न सातवाहनो से आज्ञा प्राप्त कर पाटलिपुत्र

हैं, मिले हैं जिससे कहा जा सकता है कि कनिष्क का साम्राज्य सभवत तिरहुत तथा समवर्ती क्षेत्र तक अवश्य विस्तृत था।[46] इस प्रकार जुविष्क टाइप की एक स्वर्ण मुद्रा 1914 ई मे वेल्वडग थाना तथा कनिष्क का एक ताम्र सिक्का कर्रा में मिला है।[47] ये दोना स्थान राची जिले म हैं। कनिष्क के 'वायु टाइप' के दो सिक्के पटना (साइट-1) के उत्खनन मे मिले।[48] इसी तरह कुम्रहार के उत्खनन मे विम कैडफिसेस के तीन सिक्के, कनिष्क के बारह सिक्के, हुविष्क के तीस सिक्के मिले हैं।[49] इसके अतिरिक्त बक्सर म कुषाण सिक्को का ढेर मिला है। इन सिक्को को देखते हुए अल्तेकर ने सुझाव दिया कि ये ताम्र सिक्के व्यापार के माध्यम से कभी मध्य देश या पश्चिम भारत से यहा आए, यह कहा नही जा सकता है। सिक्को के ढेर मे इस तरह के सिक्को का मिलना हमे इसी निष्कर्ष पर ले जाता है कि कुषाणो ने मगध पर आक्रमण कर उस पर विजय प्राप्त किया था।[50]

नेपाल के प्रख्यात इतिहासकार रेग्मी का मत है कि संभवत इन्ही आरभिक कुषाणो के आक्रमण के भय से लिच्छवियो ने नेपाल आकर शरण ली तथा बाद मे स्वय को स्थापित करने मे सफल हुए।[51] लेकिन किसी भी साक्ष्य से इस बात की पुष्टि नही होती कि लिच्छविया ने कुषाण काल मे वैशाली छोडकर नेपाल मे शरण ली थी। जैसा कि विदित है कि कनिष्क अपने को बौद्ध धर्म का अनुयायी तथा 'त्राता' कहते हुए सुदूरपूर्व मे बौद्ध की मूर्तिया तथा सिक्के बहुत अधिक मात्रा मे भिजवाए, जिससे वहा की बौद्ध जनता उसे अपना रक्षक समझकर आक्रमण के समय सहयोग दे। यह उसका एकमात्र राजनीतिक उद्देश्य था। इस क्षेत्र के शक्तिशाली लिच्छवियो म भी एक बडी सख्या बौद्ध धर्म के अनुयायियो की थी। अत सभव है कि लिच्छवियो ने कनिष्क का विरोध किया हो, परन्तु पराजित होने पर भगवान बुद्ध का भिक्षा पात्र[52], जिसके विषय म जनुश्रुति है कि भगवान बुद्ध अतिम बार वैशाली छोडते हुए यादगार स्वरूप लिच्छवियो को भेंट कर गए थे, कनिष्क को समर्पित कर दिया हो। इस प्रकार लिच्छवियो ने कुषाणो की नाम मात्र की मैत्रीपूर्ण अधीनता स्वीकार कर अपनी यथास्थिति बनाए रखी हो। सभवत कनिष्क ने इस क्षेत्र को सीधे प्रशासन में नही लिया क्योकि यह क्षेत्र केंद्र से काफी दूर पडता था अत वह पजाब लौट आया होगा। उसने अपने विशाल साम्राज्य को दो प्रमुख केंद्रो मे विभाजित किया जिसमे एक की राजधानी पेशावर (पुरुषपुर) तथा दूसरे की मथुरा थी। कुषाण साम्राज्य के प्रशासनिक ढाचे के विषय मे अधिक जानकारी नही मिलती है। लेकिन इतना ज्ञात है कि उसने अपने विशाल साम्राज्य को कई उप केंद्रो म बाट कर वहा महाक्षत्रप तथा क्षत्रप की नियुक्तिया की थीं। इस प्रकार कनिष्क के शासन के तीसरे वर्ष के दो शिलालेख[53] सारनाथ म मिले हैं जिसमे महाक्षत्रप खरपल्लान और क्षत्रप बनसर

का उल्लेख है। खरपल्लान मथुरा का महाक्षत्रप तथा बनस्पर बनारस का क्षत्रप था। इसी तरह कोई क्षत्रप मगध तथा वैशाली पर नियत्रण तथा प्रशासन के लिए नियुक्त किया गया था, या यह सपूर्ण क्षेत्र बनारस के क्षत्रप के नियत्रण मे था, इस सबध मे कोई जानकारी नही मिलती है।

जनश्रुतियो से भी ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र मे शक वश का कुछ समय तक अवश्य राज्य रहा था जिनके प्रधान शासको की पदवी मुरुड थी। एक मुरुड राजा की विधवा बहन जैन भिक्षुणी हो गई थी। इसी प्रकार एक मुरुड राजा जैन धर्मी बन गया था।[54]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पाटलिपुत्र तथा वैशाली क्षेत्र पर कुछ समय तक अवश्य नाममात्र का प्रभुत्व रहा हो। लेकिन हुविष्क के शासन काल (138 ई तक) के पश्चात जब कुषाण साम्राज्य ह्रासोन्मुख हुआ और विशाल साम्राज्य कई केंद्रों मे विभाजित होने की ओर अग्रसर हुआ, उस समय वैशाली के लिच्छवियो ने भी सभवत अवसर का लाभ उठाया और पुन अपने को स्थापित कर लिया। केंद्र से कुषाणो के काफी दूर होने के कारण ऐसा सभव हुआ होगा।

उपेंद्र ठाकुर[55] ने वैशाली को कुछ समय के लिए उज्जैन के शको के भी अधीन होने का अनुमान लगाया है। उन्होने यह मत वैशाली के उत्खनन (1913-14 ई) में प्राप्त उज्जैन क शको की कुछ मुहरो के आधार पर प्रकट किया है। एक मुहर[56] (मुहर सख्या 248) पर 'राजनो महाक्षत्रप स्वामीरुद्रसिहस्य दुहित राजनो महाक्षत्रपस्य स्वामी रुद्रसेनस्यभगिन्या प्रभुदामाय महादेवया (ह्) अकित है, अर्थात 'महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसिह राजा की बहन महादेवी प्रभुदामा की मुहर। इस मुहर के आधार पर उपेंद्र ठाकुर ने अनुमान लगाया कि वैशाली क्षेत्र कुछ समय के लिए अवश्य रुद्रसेन प्रथम के अधिकार मे रहा था। लेकिन यह तर्कसगत नही लगता है, इस तरह की मुहरो के प्राप्त होने से यह अनुमान तो लगाया जा सकता है कि उज्जैन के शको का सबध वैशाली तथा आसपास के क्षेत्रो मे कनिष्क के समय मे रहते रहे कुषाण परिवारो से रहा हो। वैशाली म इन शक राजाओ की मुहरें व्यापार के माध्यम से भी पहुच सकती हैं जिनका उपयोग व्यापारिक अनुबधों आदि मे होता रहा होगा। वैशाली इस समय भारतवर्ष में एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र था, जहां न केवल देश के विभिन्न भागो से व्यापारी आया-जाया करते थे, अपितु इन व्यापारियो का सबध मध्य एशिया रोम, और चीन से भी था।[57] अत सभव है कि वैशाली मे सभी प्रमुख राज्यो का एक व्यापार गृह रहा हो जहा उन राज्यो की तरफ से व्यापारिक अनुबध होते रहे हो जिस तरह आज प्रमुख व्यापारिक नगरो तथा राजधानी नई दिल्ली में व्यापारिक ऐजेसिया तथा दूतावास स्थित हैं। अत केवल इन मुहरो के आधार पर वैशाली पर रुद्रसेन प्रथम का अधिपत्य नहीं सिद्ध किया जा सकता है। सभवत उज्जैन के शकों का

क्षेत्र पश्चिम भारत ही रहा था जहा वे सातवाहनो तथा मालवो से उलझते रहे और उन्ही के द्वारा अंत मे उन्मूलित भी हुए। इसीलिए गौतमी पुत्र शातकर्णी को नासिक अभिलेख मे खखरात वसनिर्द्धेसेसकरस (क्षहरात वश का समूल नाश करने वाला) तथा 'शक यवन पल्हवनिसूस' (शको, यवनो और पल्हवो का नाश करने वाला) कहा गया है। इस तरह ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिम भारत के इस अशांति काल मे वैशाली के लिच्छवि स्वशासन का उपयोग करते हुए अपनी शक्ति मे वृद्धि करते रहे तथा अपने समीपवर्ती क्षेत्रो (पाटलिपुत्र सहित) पर भी प्रभाव बनाए रखने मे सफल रहे।

सदर्भ तथा टिप्पणिया

1 उपेन्द्र ठाकुर, मिथिला, पृ 163

2. वही, पृ 164

3 रायचौधुरी (पो हिस्ट्री छठा सस्करण, पृ 219) के अनुसार वह वाराणसी का गवनर रह चुका था, समवत उसकी योग्यता तथा कुलीनता से प्रभावित होकर ही जनता और मन्त्रियो ने उसे अपना राजा चुना था

4 जार्ज टनर, महावश, सीलोन (1837), भूमिका पृ 37-38

5 वैशाली, पृ 90

6 पो हिस्ट्री (छठा सस्करण) पृ 119, अ भा ओ रि इ (1920 21), पृ 3, सं बु ई 11, पृ 16

शिशुनाग के नाम के साथ 'नाग शब्द लगा होने के कारण रायचौधुरी को भी हर्यङ्क नागवश से सबधित बताते हैं (वही पृ 119)

7 मिथिला, पृ 165, पो हिस्ट्री, (छठा सस्करण) पृ 119 20, अ भा ओ रि. ई 1920-21 पृ 3, सं बु ई भाग 11 पृ 16

8 ब्रह्माण्ड पु (26 20-28) और दिव्यावदान मे उसका नाम 'काकवर्ण बताया गया है सभवत ये दोनों नाम एक ही राजा के हो सकते हैं

9 मिथिला, पृ 165, पो हिस्ट्री (छठा सस्करण) 4, पृ 222 और आगे

10 महावश (4-7) के अनुसार यह द्वितीय परिषद भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के 100 वर्ष पश्चात् (483-100=383 ई पू में वैशाली में हुई थी, पो हिस्ट्री (छठा सस्करण पृ 222 और आगे, मिथिला, पृ 166

11 द्रष्टव्य, अध्याय प्रारभिक इतिहास

12. मिथिला, पृ 164

13. द्रष्टव्य, प्रारभिक इतिहास

14 विष्णुपुराण विल्सन द्वारा सपा), भाग 9, पृ 184, टिप्पणी, मिथिला, पृ 165

15 मिथिला, पृ 166, डायनस्टीज आफ कलि एज (पार्जिटर) पृ 23-24 (संस्कृत मूल) तथा पृ 69 (अंग्रेजी अनुवाद).

16. वही, पृ 166
17 कौटिल्य अर्थशास्त्र, 11 1 5 6
18 मिथिला, पृ 168
19 मिथिला, वही, अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ 285 संभव है कि कुछ गणराज्य अधीनता स्वीकार कर करद गणराज्य के रूप में बचे होंगे, मौर्य साम्राज्य के प्रांतीय शासक या राज्यपाल उन पर नियंत्रण रखते होंगे (वही)
20 मिथिला, पृ 169
21. वही, पृ 169
22. स न सिंह, 26, पो हिस्ट्री (छठा संस्करण) पृ 309, मिथिला, पृ 170
23 अ स इ रि (1913 14) पृ 111 12, मिथिला, पृ 171
24 वही, पृ 111 12, ज रा ए सो (1908) पृ 821, मिथिला, वही
25 वही, पृ 112, मिथिला, वही
26 ज दि रि सो 38, पृ 351 52
27 द्रष्टव्य धार्मिक दशा का अध्याय
28 पो हिस्ट्री (छठा संस्क), पृ 364 और टिप्पणी 12, हर्षचरित (ए ए फुहरेर द्वारा संपा, बंबई, 1909) 'प्रतिज्ञादुर्बलं च बल दर्शनव्यपदेशा दर्शिताशेष सैन्य सेनानी अनार्यो मौर्य बृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्र'
(छठा संस्क), पृ 369 7, मिथिला, 173
आश्वलायन श्रौत सूत्र, 12. 13 5, ज ए सो ब 191?) पृ 287
29 टार्न, दि ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया एण्ड इंडिया, पृ 141, इन आक्रमणों में विफल करने पर उसने अश्वमेध यज्ञ किया (द्विरश्वमेधयाजि. सेनापते पुष्यमित्रस्य (धनदेव का अयोध्या अभिलेख), चन्द्रमान पाण्डेय, इंडियन न्युमेटिक क्रानोनिकल (1969, पार्ट 1 11), पृ 45 55
30 मिथिला, पृ. 174
31 आ स इ ए रि 1913 14, कमराल्या, 532, 55 तथा 569, प्लेट—xliii—liv (मिथिला, पृ 174, टिप्पणी)
32. हर्षचरित (कावेल और टामस द्वारा अनुदित, पृ 19) में इसका आभास मिलता है कि नाटक के पात्र मित्रदेव ने नाटक के पात्रों के मध्य हो अग्निमित्र के पुत्र सुमित्र का सिर कमलदण्ड की भांति काट लिया जो नाटक देखने गया। यह मित्रदेव कौन था, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है
33 मिथिला, पृ 175, पो हिस्ट्री (छठा संस्क) पृ 395 96
34 वही, पृ 177, हाथी गुम्फा अभिलेख (एपि ग्रा इंडिका, भाग 2 पृ 79 व 83)
35. श न त्रिपाठी, वही, पृ 42, अल्तेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एंशियेन्ट इंडिया, पृ. 338: सिक्कों का साक्ष्य दर्शाता है कि यौधेय, अर्जुनायन, मालव लगभग 150 ई पू में पुन स्वतंत्र हो गए, नन्दा यूप अभिलेख (226 ई का) दर्शाता है कि श्री सोम का परिवार विदेशी शासकों को उखाड़ कर फेंके मालवा में पुन स्वतंत्रता प्राप्त करने में सक्षम हुए
36. ज ए सो बं, भाग 48 1910
37 अल्तेकर (जे बिहा. ज पृ 70) सोचते हैं कि शुंग व कण्वों के पतन के पश्चात् लिच्छवि पुन अपने गौरव को स्थापित करने में सक्षम हो गए होंगे, अल्तेकर (स्टेट एण्ड गवर्नमेंट

इन एंशिएंट इंडिया, पृ 338) कहते हैं कि बहुत सम्भव है कि लिच्छवि मौर्यों के पतन के पुन गणराज्य स्थापित कर लिये हों

38 अल्तेकर, वैशाली इतिहास के अधकार युग की समस्याएं (भाषण, 1950), पृ. 3 'उत्खनन से पता चलेगा कि 150 ई तक लिच्छवि प्रजातंत्र उन्नति करता रहा, दूसरे समकालीन गणों के सदृश लिच्छवि भी सिक्के प्रचलित करते रहे सम्भव है कि खुदाई से ऐसे सिक्कों का पता लगे जिसके आधार पर यह सिद्ध हो जाए कि चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्कों पर लेख 'लिच्छवय' पूर्वकालीन लिच्छवि सिक्कों से उद्धृत किया गया हो जिसे चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपनाया

39 दी हिस्ट्री (छठा सस्क), पृ 403

40 वही, पृ 403, मिथिला पृ 176

41 जायसवाल (भारत का अधकार युगीन इतिहास, पृ 207), के मत में कण्वों के पश्चात आन्ध्रों का मगध पर 50 वर्षों से अधिक अधिकार रहा होगा तत्पश्चात् लिच्छवियों ने सातवाहनों से आज्ञा प्राप्त कर पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया हो, सातवाहनों को कुषाणों से निपटने के लिए ऐसा करना पड़ा था

42 एपि इडिका, भाग 20, पृ 79 और आगे

43 का इ, इ, भाग 2 पृ 1 xxv टिप्पणी 4

44 इ ए भाग 8, पृ 475 और आगे, भाग 32 पृ 387, का इ भाग 2, पृ lxxiv, ज रा ए सो (1942) पार्ट 1 (कनिष्क और अश्वघोष के अनुश्रुति के लिए),

45 एलन, कला स आफ एशिएट इंडिया, भूमिका xxiii और आगे मिथिला पृ. 179

46 स्मिथ कैटलाग आफ द क्वाइन्स इन द इडियन म्यूजियम, कलकत्ता, प्लेट xi का चित्र 7, मिथिला, पृ 180

47 ज वि उ दि सो भाग 1, पृ 231 32, भाग 5 पृ 78 व टिप्पणी 2, भाग 3, पृ 174

48 आ स इ ए रि 1912 13 पृ 79 84 85

49. ज न्यू सो इ भाग 12 प 122

50 वही, पृ 122

51 रेग्मी, एशिएट नेपाल, पृ 49 लिच्छवियों ने सभवत कुषाणों के आरंभिक वर्षों में आक्रमण के भय से नेपाल में आकर शरण ली आगे वे लिखते हैं नेपाल की घाटी के कैडफिसेस प्रथम व द्वितीय के सिक्के मिलना सभवत यह सिद्ध करता है कि कम से कम दो कुषाण राजाओं के नियत्रण में नेपाल अवश्य रहा' (वही)

52 द्रष्टव्य, पीछे देखिए—
आ स इ ए रि, भाग 16, पृ 8 11 ज रा ए सो 1913 पृ 627-50, 1918, पृ 79 88, 369-82, 748 51

53 एपि इडि भाग 2, पृ 173

54 अभिधान राजन्द्र, भाग 8 पृ 726 तथा भाग 9 पृ 1739 (अल्तेकर द्वारा वैशाली इतिहास अधकार युग की समस्याएं (भाषण, वैशाली महोत्सव, 1950) पृ 3 पर उद्धृत)

55 मिथिला, पृ 182

56. मिथिला, पृ 181, इसी प्रकार की राय 'वैशाली इक्वेशन' (पी पी सिन्हा तथा सीताराम राय द्वारा सम्पादित) में दी गई है, 1913-14 के उत्खनन से प्राप्त दो मुहरो, जो महादेवी प्रभुदाना से संबंधित है, वे 200 ई में वैशाली पर शक शासन के आधिपत्य का सुझाव देता है यद्यपि मुहर पर अंकित अनुश्रुति में महादेवी प्रभुदाना के पति का नाम नहीं दिया लेकिन यह विवरण देता है कि वह महाक्षत्रप स्वामिह की पुत्री तथा महाक्षत्रप रुद्रसेन की बहन थी इसके बाद लिच्छवि शीघ्र ही शक्ति में आ गए और सम्भवत 250 ई में एक राज्य स्थापित किया जिन्होंने गुप्तों के उत्थान में सहायता की

57 द्रष्टव्य, व्यापार वाणिज्य का अध्याय,

5

गुप्त साम्राज्य के अभ्युदय के पूर्व

गुप्त साम्राज्य के अभ्युदय से पूर्व लगभग 200 ई 321 ई (चद्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण की तिथि) तक भारत, विशेषकर पूर्वी भारत के इतिहास को लिपिबद्ध करना कठिन है क्योंकि इस अवधि मे भारत मे किसी सार्वभौमसत्ता का अस्तित्व नहीं रह गया था। सपूर्ण उत्तरी भारत छोटे-छोटे राजतत्रीय तथा गणतत्रीय राज्यो मे विभक्त था। मौर्यों तथा शुगो के पतन के पश्चात उत्तरी भारत की अधिकाश भूमि पर विदेशी शक, पह्लव, कुषाण, सासानी आदि जातियो का अधिकार हो गया था। बाद मे यहा के निवासियो ने जिनसे जमकर लोहा लिया और उन्हे निर्मूल कर दिया फलस्वरूप देश मे बहुत-सी नई शक्तियो का उदय हुआ। मालवा, राजपूताना तथा पजाब के गणतत्र परपरा के निवासियो ने विदेशियो स आर्यभूमि को मुक्त कराकर गणराज्य की स्थापना की।[1] उत्तर प्रदेश तथा मध्यदेश ने 'नागो' तथा 'मघो' ने शको से अपनी धरती को मुक्त कराकर राजतत्रीय राज्य स्थापित किया।[2] बगाल (दक्षिण पश्चिमी) मे 'बर्मा' उठ खडे हुए।[3] राखलदास बनर्जी[4] के अनुसार उडीसा मे 'मानवशी' नृपति स्वतत्र हो गए।

मगध क्षेत्र मे राजनीतिक अस्थिरता के कारण तथा सार्वभौम सत्ता के अभाव मे लिच्छवियो को पुन अपना वैभव स्थापित करने का अनुकूल अवसर मिला होगा। रमेशचद्र मजूमदार[5], बासम[6], गोखले[7] तथा अन्य बहुत से विद्वान 'लिच्छवियो' का इस क्षेत्र मे काफी प्रभावशाली हो जाना स्वीकार करते है।[8] विसेंट आर्थर स्मिथ[9], रायचौधुरी[10], काशीप्रसाद जायसवाल[11], उपेंद्र ठाकुर[12] आदि विद्वानो ने भी स्वीकार किया है कि उत्तर भारत मे सार्वभौम सत्ता के अभाव मे वैशाली तथा मगध की सीमा पर लिच्छवि पुन सक्रिय हो गए थे। लिच्छवियो का मगध म पाटलिपुत्र पर प्रभाव मानने वाले विद्वानो का मुख्य आधार-स्रोत कौमुदी महोत्सव'[13] नाटक तथा नेपाल के लिच्छवि राजा जयदेव द्वितीय का पशुपतिनाथ अभिलेख[14] है जिसमे कहा गया है कि जयदेव प्रथम के

23 पीढ़ी पूर्व पुष्पपुर (पाटलिपुत्र 1) मे उसके पूर्वज 'सुपुष्प' का जन्म हुआ था।[15]

यहा कौमुदी महोत्सव की ऐतिहासिकता पर भी विचार करना उपेक्षित होगा जिससे गुप्त अभ्युदय के पूर्व लिच्छवियो के विषय मे जानकारी मिलती है। इसकी ऐतिहासिकता तथा रचना तिथि के विषय मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है[16], फिर भी सावधानी से इसके विश्लेषण से इस नाटक के माध्यम से पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हो सकती है और इतिहास के ऐसे विवादास्पद विषय 'गुप्त अभ्युदय के पूर्व पाटलिपुत्र पर लिच्छवियो का अधिकार था' का निर्णय किसी अश तक किया जा सकता है।

कौमुदी महोत्सव[17] नाटक की ऐतिहासिक सामग्री प्रकाश मे लाने का सर्वप्रथम प्रयास प्रख्यात इतिहासकार काशीप्रसाद जायसवाल ने किया।[18] यद्यपि उनके द्वारा प्रतिपादित मत के कई पहलुओ को विद्वानो ने बहुत तार्किक ढग से अतर्कसगत सिद्ध कर दिया है, तथापि उनके प्रयास की पूर्ण रूप से उपेक्षा नही की जा सकती। इस काल के अज्ञात इतिहास को प्रकाश मे लाने के लिए उनका प्रयास सराहनीय है।

'कौमुदी महोत्सव' नाटक के अनुसार पाटलिपुत्र का सामत[19] सुदरवर्मन[20] को जब लबी अवधि तक कोई पुत्र लाभ नही हुआ तो उसने 'चण्ड'[21] नामक एक बालक को गोद ले लिया। वृद्धावस्था मे सुदरवर्मन को अपनी एक अन्य रानी से एक पुत्र हुआ जिसके नाम का नाटक मे 'कल्याण वर्मन' के रूप मे उल्लेख है। 'चण्ड' कल्याण वर्मन से वय मे बडा था। वय मे बडा होने के कारण 'चण्डसेन' अपने को राज्य का उत्तराधिकारी मानता था, लेकिन सुदर वर्मन, विशेषकर कल्याण वर्मन की मा की इच्छा थी कि उसके पुत्र कल्याण वर्मन को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाए। अत दोनो मे उत्तराधिकारी बनने के लिए कलह होना स्वाभाविक था। कल्याण वर्मन अभी छोटा बालक था, और चण्डसेन युवा हो चुका था। उसने अपना विवाह सवध उन लिच्छवियो से किया जिसे नाटक मे मगध कुल का स्वाभाविक शत्रु कहा गया है।[22] जब चण्ड ने उत्तराधिकारी बनने मे विघ्न देखा तो उसने लिच्छवि सबधियो की सहायता से कुसुमपुर(पाटलिपुत्र) पर आक्रमण कर दिया। युद्ध क्षेत्र मे सुदर वर्मन मारा गया और चण्डसेन की विजय हुई। रानी ने आत्महत्या कर ली। शिशु कल्याण वर्मन को सुदर वर्मन के कुछ स्वामिनिष्ठ मत्रियो ने (नाटक के अनुसार विनधर नामक दाया शिशु को उठाकर जगल भाग गई थी) किसी प्रकार शिशु कल्याण वर्मन को महल से किष्किन्धा की पहाड़ियो मे ले जाकर छिपा दिया। इस प्रकार चण्डसेन अपने लिच्छवि सबधियो की सहायता से पाटलिपुत्र का राजा बना।[23] उसे इस प्रकार पितृहत्या कर राजसिहासन पर बैठने से सभवत जनमत उनके विरुद्ध हो उठा,

जिस कारण उसने कुछ प्रमुख नागरिको को बदी गृह मे बद करवा दिया।[24] इससे विरोध कम होने की अपेक्षा और तेज हो गया। फलत (अक 5) उसके कुछ मत्रियो ने षड्यत्र करके सीमात क्षेत्र के 'शबर' और 'पुलिंद' नामक गणो या कबीलो (जायसवाल इन गणो की स्थिति रोहतास और अमरकटक के मध्य रखते हैं) में विद्रोह करवा दिया जिसे दबाने के लिए मत्रियो ने स्वय चण्डसेन को जाने की राय दी।[25] चण्डसेन विद्रोही गणो से लडते हुए सीमात राज्यपाल या कल्याण वर्मन के आदमियो द्वारा मारा गया, यद्यपि नाटक (अक 5) मे यह स्पष्ट नही कहा गया है।[26] जायसवाल चण्डसेन का मारा जाना स्वीकार नही करते।[27] उनके अनुसार चण्डसेन 340 ई से 344 ई तक बिहार से बाहर रहा। बाद मे पाटलिपुत्र समुद्रगुप्त द्वारा विजित हुआ। जायसवाल प्रयाग प्रशस्ति के 'बल वर्मन' की पहचान कल्याण वर्मन से करते हैं।[28]

कौमुदी महोत्सव के अनुसार जब चण्डसन सेना सहित राजधानी से बाहर चला गया तब उसकी अनुपस्थिति स लाभ उठाकर असतुष्ट मत्रियो ने 'पौर जनपद' से गुप्त मत्रणा कर कल्याण वर्मन को पुन सिंहासन पर बैठा दिया।[29] सुरक्षा हेतु कल्याण वर्मन का विवाह सूरसेन जनपद के यादव नरेश कीर्तिषेण की पुत्री 'कीर्तिमती' से कर दिया। इस तरह नाटक मे पाटलिपुत्र के 'सुगाग' महल म कल्याण वर्मन का महाभिषेक महोत्सव हुआ।[30] इसके बाद कल्याण वमन का क्या हुआ नाटक कोई सूचना नही देता। विद्वानो का मत है कि इसके आगे के भी अक होने चाहिए, क्योकि यह नाटक बहुत लघुरूप मे है जिसे अधिक से अधिक आधे घटे मे खेला जा सकता है जबकि प्राचीन समय मे नाटक का आकार काफी बडा होता था।[31]

सपूर्ण नाटक पढने से प्रतीत होता है कि नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इससे कुछ अलग हटकर रही होगी जिसे नाटककार ने सभवत रोचक बनाने के लिए परिवर्तन कर दिया। वस्तुत ऐतिहासिक पृष्ठ सभवत इस प्रकार रही होगी।

सुदर वर्मन को जो सभवत पाटलिपुत्र मे लिच्छवि सामत था, के काफी समय तक कोई पुत्र नही हुआ। उसने अपने वश को चलाने के लिए 'चण्ड' नामक एक शिशु को गोद लिया, जो कारस्कर जाति का था। सभवत सुदर वर्मन की एक पुत्री 'कुमारदेवी' थी जिसका विवाह उसने एक अन्य सामत[32] के पुत्र चद्रगुप्त से कर दिया, यद्यपि नाटक में इसका उल्लेख नही है। सभव है नाटक के और अक लिखे जाते तो नाटक की रचयित्री इसका उल्लेख अवश्य करती। नाटक के अनुसार सुदर वर्मन को एक अन्य कम उम्र की रानी से प्रौढ अवस्था मे पुत्र हुआ (नाटक मे 'माताए' शब्द प्रयोग करने से आभास मिलता है कि सुदर वर्मन की एक नही, कई रानिया थी) जिसे सुदर वर्मन राज्य का उत्तराधिकारी बनाना

चाहता था। लेकिन चण्ड उम्र मे वडा होने के कारण स्वय को वास्तविक उत्तराधिकारी समझता था। अत सुदर वर्मन तथा कल्याण वर्मन भी मा की इच्छा का आभास होने पर उसने एक षड्यत्र रचा और शक्तिशाली लिच्छवियो के किसी सामत राजा की कन्या से विवाह करके अपनी स्थिति दृढ कर ली। इस तरह अनुकूल अवसर देखकर चण्ड ने अपने लिच्छवि सबधी की सहायता से पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दिया। युद्ध मे सुदर वर्मन की पराजय हुई। इस प्रकार चण्डसेन पाटलिपुत्र के सिहासन पर बैठ गया।

लेकिन उसका इस तरह पिता की हत्या करके सिहासन पर बैठना, मगध की जनता तथा कुछ मत्रियो को अच्छा नही लगा। अत ठीक अवसर पाकर उसी समय अधीनस्थ जनपदो ने विद्रोह कर दिया। उस विद्रोह को दबाने के प्रयत्न मे चण्डसेन सभवत मारा गया।[33] इस स्थिति का लाभ सुदर वर्मन के दामाद चद्रगुप्त ने उठाया और पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर कल्याण वर्मन को सिहासन से हटा दिया। सभवत इस आक्रमण मे कल्याण वर्मन भी सुदर वर्मन की भाति युद्ध मे मारा गया हो। और पाटलिपुत्र राजाविहीन हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि लिच्छवि नेता (राजा), जो सभवत अब सामत के रूप मे अलग-अलग क्षेत्रो मे स्वतत्र सामत राजा होने लगे थे, आपस मे लडने लगे थे।[34] पाटलिपुत्र पर कोई लिच्छवि सामत न उपलब्ध होने पर राजसिहासन पर अन्य सामत को पदासीन करने का प्रश्न उपस्थित हुआ। हिंदू उत्तराधिकार विधान के अनुसार ऐसी स्थिति मे सुदर वर्मन की पुत्री ही राज्य की उत्तराधिकारिणी बन सकती थी।[35] अत कुमारदेवी पाटलिपुत्र की महारानी हुई ? इस प्रकार सुदर वर्मन के दामाद चद्रगुप्त को कुमार देवी की तरफ से पाटलिपुत्र पर शासन करने का अधिकार मिल गया। अधिकाश विद्वानो का मत है कि आदि गुप्त मगध मे सभवत सारनाथ मे लिच्छवियो के सामत थे।[36] इस प्रकार चद्रगुप्त अपने पैतृक राज्य के साथ पाटलिपुत्र का भी राजा बन गया। पाटलिपुत्र के सिहासन पर कुमारदेवी के साथ बैठने के उपलक्ष्य मे उसने एक नया सवत तथा एक नए ढग का सिक्का ढलवाया जिसके पुरो भाग पर चद्रगुप्त तथा कुमार देवी का चित्र अकित करवाया। चित्र के नीचे 'चद्रगुप्त श्री कुमार देवी' अकित है। इस प्रकार के सिक्के पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि चद्रगुप्त का नाम ऐसे उत्कीर्ण है जैसे वह एक साधारण पति हो, जबकि कुमारदेवी के नाम के पूर्व सम्मान सूचक 'श्री' लिखा हुआ है। सिक्के के पृष्ठ भाग पर 'सिहवाहिनी अबिका देवी' का चित्र है जो सभवत लिच्छवियो की इष्टदेवी या उनका वश चिह्न है।[37] चित्र के नीचे 'लिच्छविय' अर्थात लिच्छवि समुदाय अकित है। इस तरह सिक्के के देखने से प्रतीत होता है कि उस समय मगध के राज्य सचालन मे लिच्छवि ही अधिक महत्त्वपूर्ण रहे थे।

इस वैवाहिक सबध के पश्चात् चद्रगुप्त कुमार देवी के द्वैध शासन[38] मे सभवत मगध, दक्षिण पूर्व बिहार से वाराणसी तक का राज्य आ गया। पाटलिपुत्र इस द्वैध राज्य की राजधानी बनी। चद्रगुप्त प्रथम महात्वाकाक्षी राजा था। वह इस सीमित क्षेत्र मे सतुष्ट नही रह सकता था। उसने लिच्छवियों की शक्ति का सदुपयोग किया। उसके पुत्र चद्रगुप्त ने अपने पिता की इच्छापूर्ति के लिए राज्य का विस्तार करना प्रारभ किया। चद्रगुप्त प्रथम के शासन काल मे ही उसने अपने राज्य की सीमा बढाकर साकेत तक कर ली। पुराणो मे भी इसका उल्लेख मिलता है।[39] सभवत इसीलिए चद्रगुप्त प्रथम अपने सिक्को पर तो 'महाराजाधिराज' की उपाधि नही ग्रहण करता। लेकिन 'प्रयाग प्रशस्ति' तथा उसके परवर्ती गुप्त अभिलेख म उस 'महाराजाधिराज' की उपाधि दी गई। प्रयाग प्रशस्ति मे समुद्रगुप्त के राज्यारोहण का मार्मिक वर्णन मिलता है कि उसके पिता ने उच्छवसित होकर उसे राज्यभार सभालने के लिए कहा जिसके कारण अन्य उपस्थित बधुओ (तुल्यकुलज) के मुख म्लान हो गए। यद्यपि 'तुल्यकुलज' के सबध म विद्वानो मे गहरा मतभेद है किंतु उपर्युक्त राजनीतिक पीठिका के परिप्रेक्ष्य म प्रतीत होता है कि ये 'तुल्यकुलज' लिच्छवि कुमार ही रहे होगे जिन्हें चद्रगुप्त कुमार देवी के 'द्वैध' शासन के बावजूद भी आशा थी कि उनमे से किसी एक को उत्तराधिकार प्राप्त होगा। सभवत यही कारण था कि जनमत को शात करने ने लिए समुद्रगुप्त ने अपने अभिलेख प्रयाग प्रशस्ति मे अपने को 'लिच्छविदौहित्र' कहा है।

समुद्रगुप्त के समय लिच्छवि

चद्रगुप्त प्रथम के काल मे ही गुप्त राजाओ का प्रभाव मगध तथा साकेत तक था। दक्षिण पूर्व बिहार म लिच्छवियो का शासन था जिसका सचालन द्वैध शासन मे चद्रगुप्त कुमारदेवी के हाथ मे रहा था। सभवत चद्रगुप्त प्रथम के काल मे वैशाली की आतरिक व्यवस्था गणतात्रिक ही रही। लेकिन हम आगे के इतिहास मे देखते हैं कि किस प्रकार गुप्त राजाओ ने वैशाली मे 'कुमारामात्य' की व्यवस्था करके उन्हें आत्मसात[10] कर लिया।

समुद्रगुप्त के काल म ही वैशाली के लिच्छवियो की एक शाखा नेपाल मे शासन कर रही थी, जो सभवत अजातशत्रु के समय[11] वैशाली से नेपाल आकर बस गए थे, और अपने शौर्य से एक लबे अतराल के पश्चात् शासन मे आए। इस प्रकार लिच्छवियो की एक शाखा वैशाली मे गुप्त राजाओ से सबध स्थापित कर सहयोगी बनी रही तथा दूसरी शाखा नेपाल म दीर्घकाल तक शासन करती रही।

लिच्छवियो के सबध का समुद्रगुप्त ने भरपूर लाभ उठाया। समुद्रगुप्त के दिग्विजयो मे सभवत लिच्छवियो ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। हो

सकता है, इस कारण भी लिच्छवियों की कृतज्ञता प्रकट करने के लिए समुद्रगुप्त प्रयाग प्रशस्ति में अपने को 'लिच्छवि दौहित्र' कह कर गर्व अनुभव[42] करता था। यद्यपि यह कहने के पीछे समुद्रगुप्त की राजनीति भी सकती है, क्योंकि लिच्छवि दौहित्र कहकर वह अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा भी पूर्ण कर रहा था। कुछ विद्वानों[43] का मत है कि समुद्रगुप्त ने लिच्छवियों को वैसा महत्त्व नहीं दिया जैसा उसके पिता चन्द्रगुप्त प्रथम ने दिया था। इस कारण लिच्छवि अपमानित अनुभव करने लगे थे तथा विद्रोही हो गए थे जिससे क्रुद्ध होकर समुद्रगुप्त ने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए लिच्छवियों का मगध तथा वैशाली क्षेत्र से उन्मूलन कर दिया, और विद्रोही लिच्छवियों का पीछा करता हुआ नेपाल तक गया। अतः उन्हें अपना 'करदराज्य' बनाकर छोड़ा। किंतु उपर्युक्त मत उचित नहीं प्रतीत होता है। हम किसी साक्ष्य से यह नहीं जानते कि कभी भी लिच्छवियों तथा गुप्तों का संबंध बिगड़ा हो, और फिर नेपाल के लिच्छवि समुद्रगुप्त के उदय होने से बहुत पहले ही से वहाँ शासन कर रहे थे। समुद्रगुप्त ने यदि लिच्छवियों का दमन किया होता तो गुप्त अभिलेखों में भी 'लिच्छवि दौहित्र' का प्रयोग अब तक (परवर्ती गुप्त राजाओं के अभिलेखों में भी) न हुआ होता। अतः यही समीचीन लगता है कि वैशाली के लिच्छवियों से गुप्तों के संबंध हमेशा सौहार्दपूर्ण रहे होंगे। इसी कारण आगे के इतिहास में कभी भी वैशाली के लिच्छवियों का मगध शासकों से विरोध नहीं देखते। संभवतः गुप्तों की नीति के कारण ही लिच्छवि धीरे-धीरे उनमें आत्मसात हो गए। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन में वैशाली 'कुमारामात्य' के अंतर्गत आ गया जिससे लिच्छवियों के स्वशासन में हस्तक्षेप हुआ, लेकिन वैशाली के लिच्छवियों ने इसका कोई विरोध नहीं किया। संभवतः उन्होंने इसे व्यावहारिक मान लिया। वैशाली के 1903-04 ई. तथा 1913-14 ई. में हुए उत्खनन से प्राप्त गुप्तकालीन मुहरें इस नई व्यवस्था की पुष्टि करते हैं।[44] इन मुहरों से स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र कुमारामात्य[45] के अंतर्गत था। अल्तेकर[46], घोषाल[47] तथा परमेश्वरी लाल गुप्त[48] के मतानुसार 'कुमारामात्य' संभवतः उच्चकोटि के राज्यकर्मचारियों का एक वर्ग था जिनका संबंध सीधे सम्राट से होता था जिसका संबंध राजकुल से होता था। वैशाली से ही प्राप्त 'श्रेष्ठि-निगम'[49], 'श्रेष्ठि कुलिक निगम' तथा 'श्रेष्ठि सार्थवाह कुलिक निगम' की मुहरें इसकी पुष्टि करती हैं।[50] वैशाली से 'श्रेष्ठि सार्थवाह कुलिक निगम' की अब तक 274 मुहरें उत्खनन में मिल चुकी हैं।[51] इन मुहरों का उपयोग संभवतः प्रशासनिक आदेशों को सुरक्षित रूप से भेजने के लिए किया जाता था।[52] अल्तेकर का मत है कि इनकी शाखाएं उत्तर भारत के अनेक प्रमुख नगरों में फैली हुई थीं जिनके द्वारा इन मुहरों का प्रयोग माल को सुरक्षित और प्रामाणिक रूप से भेजे जाने के निमित्त किया जाता होगा।[53] इन साक्ष्यों से यह निश्चित हो जाता है कि वैशाली

उन दिनों एक प्रमुख व्यापारिक नगर था जो गुप्त सम्राटो के पूर्ण शासन के अतर्गत आ गया था। लिच्छवि सभवत अब राजनीति की अपेक्षा व्यापार मे रुचि लेने लगे थे, यही कारण है कि आगे उन्होंने कभी भी पुन राजनीति म आने का प्रयास नही किया। यह भी सभव है कि कुछ लिच्छवि परिवार, जो व्यापार की अपेक्षा नौकरी आदि करने म रुचि रखते थे, गुप्त काल म नेपाल चले गए, जहा उनके वश के लोग पहले से ही शासन कर रहे थे। इन सब कारणो से वैशाली मे सभवत भविष्य मे लिच्छवियो की सख्या न्यून होती गई। लेकिन कुछ विद्वानो का यह अर्थ लेना समीचीन नही प्रतीत होता कि समूचा लिच्छवि समुदाय गुप्त काल म वैशाली से पलायन कर गया।[54] वैशाली के लिच्छवियो का गुप्त परिवार से सबध होने के कारण कभी वे विरोध करने और स्वतत्र सत्ता स्थापित करने की बात सोच नही सके। बाद म जब गुप्तों का पतन हुआ तो उसके साथ ही अमर गौरव तथा चरमोत्कर्षपूर्ण उपलब्धियो के दिखावाहक का भी पतन हो गया। सभवत परवर्ती काल म वैशाली को व्यापारिक नगरी के रूप मे भी उतना महत्त्व नही प्राप्त हो सका जो गुप्त काल म प्राप्त था। इसीलिए 635 ई. मे जब ह्वेन त्साग वैशाली देखने आया तो नगर का अधिकाश भाग खण्डहर म परिवर्तित हो चुका था।[55] वैशाली नगरी तथा आसपास के ग्रामो मे ही कुछ लिच्छवि परिवार शेष रह गये थे, उन्होने अत तक अपनी पैतृक भूमि को नही छोडा जिन्हें पहचानने का प्रयास राहुल साकृत्यायन[56] ने किया है, यद्यपि अनेक विद्वानो ने उनकी पहचान को उचित नही माना है।[57]

इस प्रकार हम देखते हैं कि लिच्छवियो के अतिरिक्त प्राचीनकाल म ससार का कोई भी गणराज्य हजार वर्ष तक अपना महत्त्व स्थायी नही रख सका था। एथेन्स, वेनिस तथा जेनेवा के गणराज्य भी इस प्रकार की महानता का दावा नही कर सकते हैं। भारतीय इतिहास के मच से लिच्छवियो के हटने के साथ ही भारत मे गैर राजतात्रिक परपरा एक भूतकाल की बात बनकर रह गई।[58] काशीप्रसाद जायसवाल ने 'हिन्दू राजतत्र' मे भारत भूमि म प्राचीन हिन्दू शासन व्यवस्था (राजतात्रिक व गैरराजतात्रिक) के पतन का मार्मिक शब्दावली मे उल्लेख किया है, पाचवी शताब्दी के समाप्त होने के साथ ही गणराज्य हिंदू भारत मे हमेशा के लिए अदृश्य हो गए। आगे वे पुन कभी नही प्रकाश मे आए। लिच्छवियो तथा गुप्तो को इतिहास मे रगमच से हटने के पश्चात् वे सब अच्छी बातें इस देश को अतिम अभिवादन करके लुप्त हो गईं, जिनका विकास प्रथम ऋक् की रचना के समय (ऋग्वैदिक काल) से अब तक हुआ था प्रजातत्र ने उस महान पतन को आरभ करने मे पहल किया और उसी ने सर्वप्रथम राजनीतिक महानिर्वाण का सुर अलापा। 550 ई के पश्चात् हिंदू इतिहास विगलित होकर उज्ज्वल तथा प्रकाशमान जीवनियो के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। इधर-उधर बिखरे हुए

फुटकल रत्न दिखाई पडते हैं, जिन्हें एक मे गूथने वाला राष्ट्रीय या सामाजिक जीवन का धागा नही रहा।'[59]

संदर्भ तथा टिप्पणिया

1 इन गणराज्यो का उल्लेख समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति की पक्ति 22 में हुआ है (नृपति-भिम्मलिवार्जुनायन यौधेय माद्रकामीर प्रार्जुन सनकानीक काक-खरपरिकादि भिश्य मर्ब्द कर-दानाज्ञाकरण प्रणामागमन—)
(इन गणराज्यों के विषय विस्तृत जानकारी के लिए देखिए, प्रशांत कुमार जायसवाल, गुप्तकालीन उत्तर भारत का राजनीतिक, (पृ 59 68)

2 पार्जिटर ने (डायनेस्टीज आफ द कलियुग, पृ 50, 51, 58) तीसरी शताब्दी ईसवी में बघेलखण्ड तथा कौशांबी क्षेत्र पर शासन करने वालो में 'मघों को बतलाया है समुद्र-गुप्त के दिग्विजय से पूर्व तक उत्तर भारत मे ग्वालियर, भिलसा, मथुरा, बरेली और आसपास के प्रदेश पर नागवशी शासको का आधिपत्य था, जिनको भवनाग के काल तक चुनौती देने वाला कोई नही था चद्रगुप्त प्रथम सभवत इसी कारण इनको जीत नही सका किंतु भवनाग की मृत्यु के पश्चात् ही गृह कलह के कारण नाग साम्राज्य छोटे छोटे प्रदेशों में विभक्त हो गया
(मघा तथा नागा के विषय मे विस्तृत जानकारी हेतु देखिए, प्र कु जायसवाल, वही, पृ 54 59), इसे अन्यत्र पीछे भी वर्णन किया जा चुका है

3 अभिलेखीय प्रमाण (एपि इडि, भाग 12 पृ 317 133) से विदित होता है कि इस प्रदेश में पुष्करण अथवा दामोदर नदी के किनारे बसे पोखरणा राज्य पर 'वर्मा नामक शासको का अधिकार था विद्वानो में इनके मूलभूमि के विषय मे पर्याप्त मतभेद है परतु अब विद्वान इन्हें बगाल के स्थानीय शासक मानते हैं, किसी अन्य जगह से यहा आकर बसे नहीं थे (विस्तृत विवेचना हेतु देखिए, प्र कु जायसवाल, वही, पृ 49 51)

4 आर डी बनर्जी, हिस्ट्री आफ उडीसा (कलकत्ता 1930), प्रथम खण्ड देखिए (प्र कु जायसवाल वही, पृ 49 पर उद्धृत)

5 वाकाटक गुप्त एज (वाराणसी, 1960), पृ 128

6 बासम, वण्डर दैट वाज इंडिया (लण्डन, 1953) पृ 53

7 गोखले, समुद्र गुप्त लाइफ एण्ड टाइम्स (बबई, 1962) पृ. 36

8. ज वि उ रि सो 30 I पृ 8 • पो हि (कलकत्ता, 1953), पृ 530

9 ज रा ए, सो, 1889, पृ 55, ज रा ए सो, 1893, पृ 81, अर्ली हिं, पृ 279-80

10 पो हिस्ट्री (कलकत्ता, 1953), पृ 351

11 जायसवाल, हि आफ इंडिया (लाहौर, 1934) पृ 112

12. मिथिला, पृ 156 57

13. शकुतलराव शास्त्री, कौमुदी महोत्सव (बबई, 1952) खण्ड 2 पृ 95

14 मोर्गा, अभिलेख स 81, 85

15. इ ए भाग 1 पृ 178 और आगे

16 इ हि क्वा, 1938, पृ 582-707- 'द डेट आफ द कौमुदी महोत्सव', भाग 14
17 के चट्टोपाध्याय, द्रष्टव्य, सदर्भ 13.
18 का प्र जायसवाल, ज भा ओ हि इ, 1930 भाग 12, पृ 50-51; ज बि. उ रि. सो; 1933, भाग 19, पृ 113-114
19 सुदर वर्मन को लिच्छवि सामत राजा मानना ही समीचीन लगता है। अगर वह स्वतंत्र राजा होता तो पुराणों में उसके वश का अवश्य उल्लेख होता, अन्य साक्ष्य (स्वतत्र सिक्के तथा अभिलेख) के अभाव में स्वतत्र राजा स्वीकार करने में कठिनाई होती है, नाटक में एक स्थानीय राजा की भांति उसका उल्लेख किया गया है जिससे विदित होता है कि वह एक सामत ही था, हम जानते हैं कि लिच्छवियो मे प्रत्येक सदस्य या सामत अपने को राजा कहता था सभवत सुदर वर्मन उसी प्रकार का लिच्छवि सामत रहा होगा।
20 जायसवाल (भारतवर्ष का अधकार युगीन इतिहास, पृ 209) के मतानुसार प्रयाग में उल्लिखित 'कोट कुलज' उसी के लिए प्रयुक्त हुआ था, प्रयाग प्रशस्ति में आर्यावर्त्त के राजाओं (रुद्रदेव, मतिल, नाग दत्त, चद्र वर्मन, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युतानदी, बल वर्मन) में बल वर्मन की पहचान कल्याण वर्मन से की है. उनके अनुसार बल वर्मन सभवत कल्याण वर्मन का दूसरा या अभिषेक नाम था जो समुद्र गुप्त द्वारा पराजित हुआ था हम बल वर्मन की पहचान विवादास्पद है. आर डी बनर्जी ने इसकी पहचान आसाम के बल वर्मन से की है (एज आफ इपीरियल गुप्ताज, बनारस, 1933, पृ 13); डा. चट्टोपाध्याय के मतानुसार यह नागवशी 'नृपति' था (अर्ली हिस्ट्री आफ नार्दन इडिया, कलकत्ता, 1958, पृ 156, टिप्पणी 83), डा मिराशी के अनुसार यह मघवशी था मघो का उन्मूलन करके समुद्र गुप्त ने किसी (गाण्डवर्मा, जयबल को बघेलखण्ड क्षेत्र की सुव्यवस्था के निमित्त नियुक्त किया (स्टडीज इन इण्डोलाजी, भाग 1 पृ 216); प्रशांत-कुमार जायसवाल (गुप्त कालीन उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ. 84-85) के अनुसार यह पोनवश से सबधित था जिनका राज्य देहरादून जिले के पास था तथा जिसकी राजधानी युग शैल थी 'प्रयाग प्रशस्ति के' कोट कुलज' की पहचान भी विवादास्पद है। चट्टोपाध्याय (वही, पृ 155) के अनुसार कोट कुलज (कोत वशियो) का राज्य पूर्वी पजाब और दिल्ली के आसपास था जिनके कुछ सिक्के इस क्षेत्र में मिले हैं जिस पर 'कोत' लिखा है, जायसवाल तथा कुछ अन्य विद्वानो ने प्रयाग प्रशस्ति मे 'कोत' लोगों के साथ प्रयुक्त 'पुष्पाहुए' की पहचान पाटलिपुत्र से है, मजूमदार (द वाकाटक गुप्ता ऐज, वाराणसी, 1960, पृ 140) ने इस पुष्पाहुए की पहचान कान्यकुब्ज से किया है जो समीचीन लगता है अब प्रश्न उठता है कि सुन्दर वर्मन का वश क्या था? कौमुदी महोत्सव (पृ 30) में इसे 'मगध कुल' कहा है इसके आधार पर क्या सुदर वर्मन को मगध के क्षत्रिय राजाओं के वश से जोड़ा जाए? लेकिन यदि वह मगध के इन राजाओं के वश से होता तो अवश्य ही उसके वश का उल्लेख किसी पुराण में होता जायसवाल का यह मत समीचीन नही लगता है कि पुराणों में सुदर वर्मन के वश का उल्लेख न होने का कारण सभवत उनके शासन काल का बहुत अल्पावधि का होना है। क्योंकि पुराणों में बहुत से ऐसे क्षत्रिय वश के राजाओं का उल्लेख हुआ है जिनका शासन बहुत अल्प था तथा उनका राज्य भी बहुत छोटा रहा है. ऐसा लगता है कि पुराणों में उल्लेख न होने का कारण सभवत सुदर वर्मन का लिच्छवि होना ही रहा है हम जानते हैं कि किसी भी पुराण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में लिच्छवियों का उल्लेख नहीं हुआ है, जिसका कारण

सम्भवत लिच्छवियों का अब्राह्मण मत का अनुयायी होना था। 'मगध कुल' कहने का यहां अभिप्राय केवल 'मगधवासी' है जो समवत मगध का राजा होना कहा गया है, ठीक उसी प्रकार जैसे चण्डसेन पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लेने के पश्चात अपने को मगध कुल व्यपदिशन्नापि' कहता है जबकि नाटक (अक 6, पृ 30) से ही हम जानते हैं कि वह कारस्कर—जाति का था

सुंदर वमन को लिच्छवि कहने के लिए निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं

1. नेपाल की वंशावलियों में 16 पीढ़ी तक के लिच्छवि राजाओं के नाम के साथ (वर्मन' विरुद जुड़ा है आगे के कुछ राजाओं के नाम के बाद 'देववर्मन' लगा है समवत नेपाल के लिच्छवि राजा, जो बौद्ध मत के अनुयायी थे 'वर्मन' विरुद धारण किया, जैसे अंशु वर्मन जो बौद्ध मतानुयायी था अभिलेखों में उल्लिखित अंशु वर्मन को छोड़कर बाद के अन्य सभी लिच्छवि राजा 'देव' 'विरुद' धारण किए हुए हैं प्राय सभी वैष्णव व शैव मत के अनुयायी थे समवत नेपाल के लिच्छवि राजा गुप्तों के प्रभाव म आने के पश्चात वैष्णव मत के अनुयायी हो गए और अपने को 'देवतातुल्य' दर्शाने के लिए देव' विरुद धारण किया.

2. स्मिथ, वासुदेव उपाध्याय, अल्तेकर, रैप्सन पलीट आदि विद्वानों ने गुप्त अभ्युदय के पूर्व मगध तथा वैशाली क्षेत्र पर लिच्छवियों का प्रभाव माना है समवत लिच्छवियो का समवर्ती क्षेत्र पर प्रभाव बढ़ना वसुमित्र (138 ई)के समय में ही हो गया शुगों के पतन के पश्चात् मगध वैशाली गणराज्य में लिच्छवियों के अधीन आ गया जहां लिच्छवि राजा (सामत) शासन करने लगे कनिष्क के काल में मगध कुछ वर्षों के लिए कुषाणों के अधीन रहा. पुन कुषाणो के पतन के पश्चात् कुछ समय क लिए सातवाहनो, तत्पश्चात् लिच्छवियों के अधीन हो गया सुदर वर्मन के समय तक आते आते समवत लिच्छवि भी राजतांत्रिक व्यवस्था में परिवर्तित होने लगे, यद्यपि वैशाली क्षेत्र में अभी भी गणतांत्रिक व्यवस्था थी परन्तु मगध तथा नेपाल में राज्य कर रहा लिच्छवि परिवार राजतांत्रिक व्यवस्था मे परिवर्तित हो चुका था.

21 जायसवाल (भा अ यु का इति पृ 210 टिप्पणी 2) चण्ड' की पहचान चद्रगुप्त प्रथम से करते हैं उनके अनुसार चद्र का प्राकृत में 'चण्ड हो जाता है विटर निट्ज ने 'ड्रामाज इन इंडियन लिटरेचर' में इसका विरोध किया है इसके अतिरिक्त मजूमदार, श रा शास्त्री दिनेशचद्र सरकार आदि ने भी मतभेद प्रकट किया है। (लूनिया, वही पृ 12 13) सुनीतिचद्र चटर्जी(पाध्याय) इ हि क्वा, 1838 भाग 14, पृ 582 606) के अनुसार यह नाटक 700 ई में लिखा गया अत इसे चद्रगुप्त के सम सामायिक नहीं माना जा सकता है अत चण्ड की पहच न चद्रगुप्त प्रथम से नहीं की जा सकती है इसी प्रकार परमेश्वरी लाल गुप्त (गुप्त साम्राज्य पृ 233) चण्ड को चद्रगुप्त' नहीं मानते हैं संस्कृत व्याकरण के अनुसार (धनपाल, पाइ लच्छिनाम माला, पृ 515) चद्र का प्राकृत रूप चद्द' होता है चण्ड नहीं इससे प्रतीत होता है कि कौमुदी महोत्सव का चण्डसेन अन्य व्यक्ति था

22 तत स्वय मगध कुल व्यपदिशन्नपि मगधकुल वैरिभिर्म्लेच्छैर्लिच्छविभि सह सबध कृत्वा (कौमुदी महोत्सव, पृ 30)

23 लब्धावसर कुसुमपुर मुपरुद्धवान (कौ महो पृ 30)

24 जायसवाल भारतवर्ष का अधकारयुगीन इतिहास पृ 217

25 कौ महो, अक 5 पृ 31, जायसवाल, भा अ इति, पृ 221, परमेश्वरी लाल गुप्त,

गुप्त साम्राज्य पृ 233

26. वही, अंक 5, पृ 31
27. जायसवाल, भा. अ इति पृ 219 चंद्रगुप्त ने लगभग 34 ई 341 ई तक मगध से निर्वासित जीवन व्यतीत किया
28. जायसवाल, भा अ इति पृ 209 जायसवाल मगध कोट कुल की स्थापना 200-250 ई के लगभग होना मानते हैं और इसी कुल में अंतिम राजा कल्याण वर्मन हुआ था जिसे कौमुदी महोत्सव नाटक में सुदर वर्मन का पुत्र कहा गया है जिसने 440-444 ई तक शासन किया
29. जायसवाल, भा अ इति पृ 218
30. को महो पृ 35, परमेश्वरी लाल गुप्त (गुप्त सा पृ 233) जायसवाल (भा अ इति पृ 247) इसे नाग—वाकाटक सघ में सम्मिलित माना है जिसका पुत्र सभवत नागसेन था जिसका उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति में आर्यावर्त के राजाओं में हुआ है
31. विंटर निट्ज 'ड्रामा इन इंडियन लिटरेचर (लूनिया द्वारा, वही पृ 12 पर उद्धृत)
32. विसेंट आर्थर (अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया चतुर्थ सस्क पृ 295 96) भी चंद्रगुप्त प्रथम को लिच्छवियों का सामत मानते हैं जिसने कुमारदेवी से विवाह करके अपनी पत्नी के राज्य पर अधिकार स्थापित किया डा परमेश्वरी लाल गुप्त (गुप्त सा पृ 233 34) का मत है कि लिच्छवि नरेश पुत्रहीन मरे होंगे। पुत्र के अभाव में उत्तराधिकार राजकुमारी कुमारदेवी के पुत्र को प्राप्त होने की स्थिति आई होगी यह भी हो सकता है कि उनके पिता की मृत्यु के समय तक उसके कोई पुत्र न हुआ हो अत शासन प्रबंध का कार्य चंद्र गुप्त प्रथम ने सभाला यह बात सिक्कों में भी स्पष्ट हो जाती है
    अल्तेकर (न्यू स, 47, पृ 107 केटलाग आफ द क्वायन्स आफ बयाना होर्ड, भूमिका, पृ 63) की भी धारणा है कि कुमारदेवी स्वाधिकार में रानी थी, रैप्सन महोदय (इ क्वा, पृ 24 25) की भी धारणा है कि लिच्छव्य' शब्द यह दर्शाता है कि कुमारदेवी एक राज परिवार से सबधित थी
33. को महो (अक 5) में स्पष्ट नहीं कहा गया है कि चण्डसेन को सीमात प्रतिनिधि ने या कल्याण वमन के आदमियों ने मारा वह विद्रोह दबाने में सफल हुआ या नहीं लेकिन यह स्पष्ट है कि वह पुन पाटलिपुत्र नही लौटा इससे आभास मिलता है कि वह विद्रोही जनता द्वारा या अन्य किसी षडयत्र में मारा गया होगा
34. अल्तेकर (स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन इंडिया पृ 338) स्वीकार करते हैं कि गुप्त अभ्युदय के पूर्व लिच्छवि सभवत गणतांत्रिक सविधान रखते थे लेकिन सभवत 300 ई के लगभग ये राजतत्र की ओर शीघ्रता से सरक गए इस समय नेपाल के लिच्छवि राजतांत्रिक व्यवस्था में शासन कर रहे थे
35. मनुस्मृति (9-22) के अनुसार पुत्र के अभाव में दौहित्र का दावा माना गया है
36. वासुदेव उपाध्याय, गुप्त अभिलेख भूमिका पृ 4260 ई में सभवत श्री गुप्त ने दक्षिण-पूर्व बिहार में गुप्त वश की नींव डाली (अल्तेकर कारपस आफ इंडियन क्वायन्स भाग 4, पृ 1) मग शिखा वन की स्थिति मे काफी मतभेद है पहला मत है कि यह मदिर मगध में स्थित था दूसरा मत अधिक समीचीन लगता है कि यह मदिर मृगदाव (सारनाथ) मे गुप्त ने तैयार किया था, का प्र जायसवाल भारत वर्ष का अधकार युगीन इतिहास, पृ 210, गुप्त लोग मगध में किसी स्थान पर लगभग 275 ई में प्रकट होते हैं

कुछ विद्वान (ज बि रि सो, भाग 57, पृ 11-12) गुप्त को कोशांबी के समीप और भारशिव का सामंत मानते है, बी पी. सिन्हा (ज बि उ रि सो, भाग 37, पृ 138) भी गुप्तों का आदि निवास अयोध्या के समीप मानते है
अल्तेकर (का आफ इ क्वा, भाग 4 अध्याय 3) सिक्के के मुख भाग पर कुमारदेवी के हाथ में जो पात्र है वह हो सकता है सिंदूरदानी हो या ताड़पत्र पर लिखा बेलननुमा लपेटा 'संधि-पत्र' हो तथा पृष्ठभाग पर सिंहवाहिनी दुर्गा की पहचान अभी तक लिच्छवियों की इष्ट देवी 'अम्बिका' से की गई है पर अल्तेकर का मत है कि शेर का प्रयोग वैसे ही हुआ है वैशाली में शेर बहु सख्या में थे, सिंह का प्रयोग अशोक ने भी काफी किया है जब कि बौद्ध था
अल्तेकर, बयाना होर्ड, भूमिका, पृ 15, प्र कु जायसवाल, वही, पृ 79, ई म्यू क्रो भाग 2, पार्ट 1, 1961, पृ 37
0 "अनुगगा प्रयागं च साकेत मगधांस्त था
एतान् जन पदान् सर्वान् भोगन्ते गुप्त वशज ." (वायु पुराण पृ 99 343)
0 सिन्हा, बी पी डिक्लाइन आफ द किंगडम आफ मगध (पटना, 1954), भूमिका, पृ 26 उपेंद्र ठाकुर (मिथिला, पृ 185)
1 योगेंद्र मिश्र, वही, पृ. 261 तथा पीछे प्रथम अध्याय देखिए
2. वै अभि ग्र पृ 37, कोशांबी, एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ इंडियन हिस्ट्री, पृ 144 डी आर भडारकर, कारमाइकेल लेक्चर, 1921, पृ 9, सुधाकर चट्टोपाध्याय, वही पृ 143 ठीक सोचते हैं कि समुद्रगुप्त लिच्छवियों का कृतज्ञ तथा ऋणी था
43 हितनारायण झा, लिच्छवि, पृ 106
44 आ स. इ ए रि, 1903-04, पृ 112 118, 1913-14 पृ 107 08
45 वही, 1903-04, पृ 107-09, 1913-14 के उत्खनन (आ. स इ ए रि 1913 14, पृ 104, मुहर, 300) में प्राप्त एक मुहर पर स्पष्ट रूप से वैशाली नाम कुण्डे कुमारामात्याधिकरणस्य' अंकित है
46 अल्तेकर स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन एंशियेंट इंडिया पृ 339
47 घोषाल, हिस्ट्री आफ बगाल, 1, पृ 284 घोषाल के अनुसार यह एक ऐसा वर्ग विशेष था जिसमें से गुप्त साम्राज्य के केंद्रीय तथा स्थानीय अधिकारी नियुक्त किए जाते थे (परमेश्वरी लाल गुप्त, गुप्त साम्राज्य, पृ 384) पर उद्धत)
48 गुप्त साम्राज्य, पृ 385 यह एक विशेष अधिकारी वर्ग था इसी वर्ग से केंद्रीय तथा स्थानीय शासन के लिए अधिकारियों का निर्वाचन होता था, सभवत गुप्त शासन की ब्यूरोक्रेसी (नौकरशाही) का ही नाम कुमारामात्य था सभवत यह पद अमात्य से ऊंचे वर्ग के लिए था
49 आ स इ ए रि, 1913-14, पृ 128, मुहर 8 ब
50 वही, 1903-04 पृ 101
51. परमेश्वरी लाल गुप्त, वही, पृ 393, आ स इ ए रि, 1903 04, पृ 112 118
52 प ला गुप्त, वही, पृ 463
53 ब.काटक गुप्त एज, पृ 255-56, प ला गुप्त, वही, पृ 463
54 हितनारायण झा, लिच्छवि, पृ 106 समुद्र गुप्त के समय में लिच्छवियों का पलायन मानते हैं, उपेंद्र ठाकुर मिथिला, पृ 162 सभवत गुप्त राजाओं के पतन के साथ ही

लिच्छवि वैशाली से पलायन कर गए

55 उपेंद्र ठाकुर, मिथिला, पृ 162

56 राहुल सांकृत्यायन (बुद्ध चर्या, पृ 104, टिप्पणी) सुझाव देते हैं कि वर्तमान जेथरिया ब्राह्मण (भूमिहार समुदाय का एक उपवर्ग), जो वैशाली क्षेत्र में बहुसंख्या में विद्यमान हैं जिनका गोत्र कश्यप है, वज्जि संघ में सम्मिलित ज्ञातृक कुल के वंशज थे, उनके अनुसार ज्ञातृक कालांतर में ज्ञातिक से (ज्ञातृ=ज्ञात=जतर=जथरिया) जेथरिया बन गया.

57 योगेंद्र मिश्र (वैशाली, पृ 113 योगेंद्र मिश्र) का मत है कि वर्तमान जेथरिया समुदाय मुजफ्फर पुर जिले से मुस्लिम काल में आए थे, उनका पैतृक गांव सारन जिले के जेथूर (जयस्थल) है और वे प्राचीन ब्राह्मण के उपवर्ग के रूप में जाने जाते हैं

58 उपेंद्र ठाकुर मिथिला, पृ 162

59 जायसवाल हिंदू राजतंत्र, पृ 226, हिंदू पालिटी, पृ 164

6

गुप्तकाल मे नेपाल के लिच्छवि

वैशाली के लिच्छवियो का इतिहास समाप्त करने के पश्चात यह आवश्यक हो जाता है कि नेपाल मे बहुचर्चित लिच्छवियो के विषय मे थोडा विचार कर लिया जाए, क्योंकि नेपाल के लिच्छवि वैशाली भूमि से ही सबध रखते थे, जो किसी समय वैशाली से नेपाल जाकर बस गए थे। कालान्तर मे वे नेपाल मे एक शक्तिशाली शक्ति बनकर नेपाल के राजनैतिक मच पर उभर कर आए थे। नेपाल के लिच्छवि राजा जयदेव द्वितीय का पशुपति नाथ अभिलेख इस तथ्य की ष्टि करता है।

सर्वप्रथम हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि समुद्रगुप्त के समय नेपाल मे कौन राजा राज्य कर रहा था जिसने सर्वकरदान आदि देकर गुप्तो का 'करद-राजा' बनना स्वीकार किया था।

दिल्ली रमण रेग्मी का मत है कि समुद्रगुप्त के काल मे नेपाल न केवल स्वतत्र था, और बना रहा, बल्कि नेपाल नरेश कम-से-कम साकेत लेकर पुण्ड्रवर्द्धन तक विस्तृत प्रदेश (वैशाली सहित) पर शासन कर रहे थे। उनके अनुसार नेपाल पर गुप्तो का अधिकार चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल म हुआ था।[1] रेग्मी महोदय की इस मान्यता का आधार उनका पूर्वाग्रह है कि गुप्तो के आविर्भाव के कुछ ही समय पूर्व वशावलियो मे उल्लिखित भास्कर वर्मन ने भारत के बहुत से प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। उनका यह भी मत है कि चन्द्रगुप्त की महादेवी नेपाल के लिच्छवि परिवार मे उत्पन्न हुई थी। पहला तर्क उनका इसलिए समीचीन नही है कि वशावलियों में भास्कर वर्मन को मानदेव (467 ई) से लगभग 22 पीढी पूर्व दर्शाया है।[2] रेग्मी के दूसरे मत का आधार 'कलियुग वृत्तात' है जिसके अनुसार कुमारदेवी नेपाल के लिच्छवि राज परिवार में उत्पन्न हुई थी। लेकिन अधिकाश विद्वानो ने कलियुग राज वृत्तात को जाली होना सिद्ध कर दिया है।[3] समुद्रगुप्त के काल में नेपाल को स्वतत्र राज्य मानना इसलिए भी

समीचीन नही है, क्योकि प्रयाग प्रशस्ति मे स्पष्ट रूप से नेपाल को उन राज्यो की कोटि मे रखा गया है जिनके राज्य समुद्रगुप्त को करदान आदि द्वारा सतुष्ट करते थे ।[4]

हितनारायण झा ने सुपुष्प को समुद्रगुप्त द्वारा प्रताडित लिच्छवि करद राजा सिद्ध किया है ।[5] लेकिन यदि ऐसा होता तो प्रयाग प्रशस्ति मे अन्य पराजित राजाओ के साथ उसका नाम भी अवश्य होता । जयदेव द्वितीय का पशुपति नाथ मदिर-अभिलेख केवल इतना सकेत देता है कि नरेंद्रदेव का पूर्वज सुपुष्प पुरुषपुर (पाटलिपुत्र[6] ?) मे जन्मा था, इससे यह सिद्ध नही हो पाता कि वह पाटलिपुत्र का राजा भी था । इस प्रकार का दावा तो प्राय सभी मध्यकालीन राजपूत राजा अपने अभिलेखो मे करते रहे हैं । वे अपने को अयोध्या के इक्ष्वाकु वशीय राजाओ से सबधित मानते रहे हैं । इससे यह निष्कर्ष निकालना कि सभी राजपूत राजा अयोध्या मे दीर्घकाल तक राज्य करने वाले राजपरिवार से सबधित क्षत्रिय होने का दावा करते हैं तर्क सगत नही है । इससे केवल इतना स्पष्ट होता है कि वे सूर्यवशीय क्षत्रिय होने का दावा करते हैं । इसी तरह यहा भी नेपाल के राजा अपने को वैशाली के लिच्छवि होने का दावा करते है । अत इन अभिलेखो के प्रमाण से हम केवल इतना कह सकते है कि नेपाल के लिच्छवि राजा वैशाली के लिच्छविगण से सबधित थे ।[7]

काशीप्रसाद जायसवाल[8] तथा वासुदेव उपाध्याय[9] ने जयदेव प्रथम को समुद्रगुप्त का समकालीन नेपाल का लिच्छवि राजा माना है । पर यह मत उचित नहीं प्रतीत होता । इन विद्वानो ने नेपाल अभिलेखो (प्रथम वर्ग) मे प्रयुक्त सवत को गुप्त सवत[10] माना है, जो ठीक नही है । हितनारायण झा तथा अन्य विद्वानो ने इन अभिलेखो[11] (प्रथम वर्ग) मे प्रयुक्त सवत को शक सवत माना है । नेपाली इतिहास को क्रमबद्ध करने के लिए यही सवत अधिक सहायक है । जयदेव प्रथम को पशुपतिनाथ अभिलेख म मानदेव से 15 पीढी पूर्व[12] (अभिलेख मे जयदेव प्रथम के बाद 11 राजाओ के नाम मिट गए है) तथा वशावलियो मे 20 पीढी[13] पूर्व दर्शाया गया है । इस तरह नेपाल अभिलेखो (प्रथम वर्ग) के संवत को शक सवत् मानने से जयदेव प्रथम का शासन काल ई 467 (मानदेव की सिंहासनारोहण तिथि) —20×15 (=300) = 1 7 ई (अभिलेख के अनुसार) या 467—20×20 (=400) = 67 ई होना चाहिए । स्पष्ट है जयदेव प्रथम समुद्रगुप्त का समकालीन राजा नही था ।

सभवत नेपाल का लिच्छवि राजा (वशावलियो मे उल्लिखित) शिव वर्मन (वृषदेव का पितामह) समुद्रगुप्त का समकालीन था ।[14] सभवत शिव वर्मन ने ही समुद्रगुप्त को 'राजकर' देना स्वीकार करके समुद्रगुप्त से मित्रता (लिच्छवि-गुप्त सबध होने के कारण अपना हितैषी समझकर) स्थापित की । इस मित्रता

के कारण नेपाल में लिच्छवियों को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में सहायता मिली। फलस्वरूप उसके उत्तराधिकारियों ने दीर्घकाल तक नेपाल पर शासन किया। नेपाल में 'करद राजा' के रूप में शासन करने की स्थिति संभवत स्कंदगुप्त की मृत्यु (467 ई.)[15] तक बनी रही। लेकिन स्कंदगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गुप्त साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया।[16] इस स्थिति का लाभ उठाकर संभवत नेपाल का लिच्छविराजा मानदेव प्रथम ने अपने को 467 ई[17] में स्वतंत्र घोषित कर लिया और चागुनारायण मंदिर अभिलेख के अनुसार अपने राज्य का विस्तार किया तथा यही प्रथम नेपाली लिच्छवि राजा था जिसने गुप्त राजाओं को 'राजकर' देना बंद कर दिया। इसके स्वतंत्र होने के प्रमाण मानदेव द्वारा नेपाल में बहु-संख्या में अभिलेख उत्कीर्ण कराना तथा स्वतंत्र 'मानक' सिक्के प्रचलित करना है। इन अभिलेखों या उसने (गुप्त संवत के बजाय) शक संवत का प्रयोग किया। इससे प्रतीत होता है कि उसने इतिहास में अपनी अलग से पहचान बनाई। मानदेव प्रथम जैसे महत्वाकांक्षी राजा के लिए इतने में संतुष्ट होना पर्याप्त नहीं था। अपनी विधवा मां राज्यवती[18] की अनुमति प्राप्त कर उसने विजय-अभियान की योजना बनाई। सर्वप्रथम उसने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। यहा के नृपतियों ने बिना युद्ध लड़े ही उसके आगे आत्मसमर्पण कर दिया।[19] मानदेव ने उन नृपतियों के विनम्र व्यवहार से प्रसन्न होकर पुन अपने पदों पर आसीन कर दिया।[20] तत्पश्चात उसने पश्चिम की ओर प्रस्थान किया।[21] पूर्वनियोजित योजना के अनुसार मानदेव ने सैकड़ों हाथियों और अश्वारोहियों को साथ लेकर 'मल्लपुरी' पर आक्रमण कर उस जीत लिया।[22] इस अभियान में उसने अपने अनुभवी मामा से सहायता ली जिसने आक्रमण करने के पूर्व मल्लपुरी जाकर वहां की जनता को मानदेव के पक्ष में किया था। मानदेव की इस विजय के उपलक्ष्य में राज्यवती ने ब्राह्मणों को दान दिया।[23]

अभिलेख में आए इस 'मल्लपुरी' की पहचान को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। रेग्मी तथा कुछ अन्य विद्वान मल्लपुरी' को नेपाल में पैठण या दैलख के पश्चिम में कहीं स्थित मानते हैं।[24] हितनारायण झा[25] ने मल्लपुरी को वर्तमान गोरखपुर के पास स्थित होना सिद्ध किया है, जो तथ्य के अधिक निकट लगता है। यह मल्लपुरी संभवत मल्लों की राजधानी थी, जिन्होंने अजातशत्रु के आक्रमण के समय लिच्छवियों से मैत्री कर[26] लिच्छवियों का पक्ष लिया था। हितनारायण झा का मत इसलिए ग्राह्य है क्योंकि मानदेव स्कंदगुप्त के मृत्यु वर्ष में सिंहासन पर बैठा था। स्कंदगुप्त के मरते ही गुप्त साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया था।[27] उसके उत्तराधिकारियों में इतनी शक्ति और राजनीतिक कुशलता नहीं रही कि विशाल गुप्त साम्राज्य को सुरक्षित रख सकते। इसका लाभ संभवत महत्वाकांक्षी मानदेव ने उठाया और नेपाल-तराई से संलग्न भारत-भूमि पर

आक्रमण कर अपने अधीन कर लिया। गु स. 141 (460 ई) के काहौन अभिलेख[28] से विदित होता है कि यह क्षेत्र गुप्तो के अधीन था, लेकिन इस से स्पष्ट नही कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र पर गुप्तो का अधिकार 467 ई के बाद भी बना रहा।[29] मानदेव की अन्य उपलब्धियो तथा स्वतत्र 'मानाक'[30] विरुद्ध वाले सिक्के प्रसारित करवाना भी इस बात पर बल देता है कि उसने अवश्य ऐसे कार्य कर दिखाए जिसे उसके पूर्वज नहीं कर पाए थे। मानदेव ने न केवल अपने पूर्वजो का मान-सम्मान बढाया, वरन नेपाल तथा आसपास के क्षेत्रो मे अपनी स्थिति भी दृढ की थी।

लिच्छविराजा मानदेव प्रथम एक विजेता ही नहीं महान निर्माणकर्ता भी था। उसने एक प्रसिद्ध मानगृह का निर्माण कराया जो आगे की कई पीढियो के लिए राजकीय गतिविधियों का केंद्र बना रहा।[31] इसके अतिरिक्त उसने कई मदिर बनवाए और उन विभिन्न देवी देवताओ की मूर्तियो से अलकृत करवाया, उनम एक प्रसिद्ध वामनमूर्ति मदिर भी था।[32] अश्वमेध यज्ञ के समय बलि मे पूर्व वामन की बाह्य आकृति मे विष्णु का रूप बहुत सुदर ढग से चित्रित है।[33] सभवत मानदेव ने ही उस विहार का भी निर्माण कराया था जो कालातर मे मानदेव विहार कहलाया।[34] नेपाल मे मुद्रामाला का श्रीगणेश भी मानदेव प्रथम ने ही किया था। प्राचीन नेपाल के अभी तक प्राप्त सभी सिक्के ताम्र के हैं, उनके 'मानाक' विरुद् वाले सिक्के सभवत मानदेव प्रथम ने ही प्रसारित कराए थे।[35]

हितनारायण झा न मानदेव प्रथम की तुलना समुद्रगुप्त म की है।[36] मानदेव प्रथम समुद्रगुप्त के समान कर्मठ, साहसी और शूरवीर था। दोनो को हम शत्रु द्वारा अजेय महान सगठन कर्ता तथा दूरदर्शी राजनीतिज्ञ के रूप मे देखते हैं।[37] मानदेव स्वय विष्णु का उत्कट भक्त था लेकिन धार्मिक सहिष्णुता की नीति मे विश्वास करता था।[38] इन सब महान गुणो से सपन्न होने पर भी मानदेव उच्च घोष करने वाली उपाधियो को धारण करने की ओर कभी नही आकृष्ट हुआ। वह अपने साधारण उपाधि राजश्री, नृप तथा भट्टारक महाराज से ही सतुष्ट था।[39]

यदि चागुनारायण-अभिलेख की तिथि 386 मान ली जाए तो मानदेव ने कम से कम 42 वर्ष[40] तक राज्य किया, और यदि इसे 389 शुद्ध माने तो उसने 39 वर्ष[41] राज्य किया। इस अवधि मे उसने लिच्छवि वश को नेपाल म काफी दृढता से स्थापित कर लिया।

मानदेव के पश्चात महीदेव शासन मे आए। लेकिन महीदेव ने सभवत कुछ ही माह तक शासन किया। महीदेव का अपना कोई स्वतत्र अभिलेख अभी तक प्राप्त नही हुआ है। केवल जयदेव द्वितीय का पशुपतिनाथ अभिलेख तथा विष्णु गुप्त के एक अभिलेख म उसका नाम आदरपूर्वक लिया गया है।[42अ]

महीदेव के बाद वसतदेव सभवत 506 ई मे नेपाल के सिंहासन पर बैठा।[42]व वसतदेव ने सभवत 532 ई तक शासन किया।[43] थानकोट से प्राप्त उसके अभिलेख की तिथि स 454 (532 ई) है। इस अभिलेख की अपनी एक विशेषता है। इसमे 'महाराज महासामत श्री क्रमलीन' का उल्लेख हुआ है। इस अभिलेख से क्रमलीन 'भट्टारक महाराज श्री वसतदेव' को शासन पत्र के सबध मे राय देते हुए दिखलाया गया है। इस क्रमलीन की राजनीतिक स्थिति के बारे मे यहा कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। उत्तर भारत के तत्कालीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि 'महाराज महा सामत' विरुद प्राय बडे सामत अथवा शक्तिशाली सामत ही धारण करते थे।[44] अत यदि कहा जाए कि क्रमलीन भी नेपाल मे काफी शक्तिशाली सामत था तो अनुपयुक्त नही होगा। अब यहा यह विचार करना है कि एकाएक यह गुप्त सामत लिच्छवि राज्य नेपाल मे कैसे नियुक्त हो गया जो अपने प्रारंभिक वर्षों मे ही इतना शक्तिशाली था कि लिच्छिविराजा वसतदेव को राय (मत्रणा) देने लगा। पुन स 554 तिथि का यह अभिलेख वसत देव के शासन काल का अतिम ज्ञात तिथि का अभिलेख है।[45] इसमे ही सामत 'क्रमनील' महाराज सामत के रूप मे उल्लेख है। उत्तर भारत के परवर्ती गुप्त राजाओ के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि भानु गुप्त (510 ई) तथा ईश्वरवर्मा की तिथि (544 ई) के मध्य परवर्ती गुप्त राजा जीवितगुप्त (हर्षगुप्त का पुत्र) और मौखरी राजा आदित्य वर्मा के पुत्र ईशान वर्मा ने सयुक्त रूप से विजय अभियान मे हिमालय' से लेकर समुद्रतट के मध्य क्षेत्र' पर पुन अधिकार करने म सफलता प्राप्त की थी।[46] इस तथ्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि जीवित गुप्त ने ही सभवत हिमालय क्षेत्र पर राज्य करने वाले लिच्छवि राजा वसतदेव को परास्त करके 'मल्लपुरी' का क्षेत्र पुन लिच्छवियो से छीन लिया होगा।[47] और लिच्छवि राजा पर नियत्रण रखने के लिए सभवत उसने नेपाल म क्रमलील की नियुक्ति 'महाराज महासामत' के पद पर करवा दिया। इस तरह दूतक विरोकन गुप्त और रवि गुप्त क्रमश याज्ञिक तथा सर्व्वदण्डनायक महाप्रतिहार के पद पर आसीन हुए होगे।[48]

इस प्रकार भारतीय गुप्त सामतो का नेपाल मे प्रवेश सभवत वसतदेव के काल मे ही हुआ होगा, न कि मानदेव के काल मे जैसा कि हितनारायण झा[49] ने विचार व्यक्त किया है। वसतदेव के बाद के लिच्छवि राजाओ के समय मे भी हमे बहुत से गुप्त सामतो का उल्लेख मिलता है जिसमे भौम गुप्त काफी शक्तिशाली सामत था।[50]

वसत देव के पश्चात् वामन देव व गण देव लिच्छवि राजा नेपाल के सिंहासन पर बैठे। लेकिन व नाम मात्र के शासक रहे, वास्तविक सत्ता गुप्त सामतो के हाथ म ही रही। गण देव का प्रारंभिक अभिलेख की तिथि स 482[51] (560 ई)

है। इसमें 'सर्व्वदण्डनायक महाप्रतिहार' श्री भौम गुप्त का उल्लेख है। यहा यह ध्यान देने योग्य है कि सर्वदण्डनायक महाप्रतिहार होते हुए भी वह (भौम गुप्त) दूतक नही था। जबकि इसके पूर्व वसत देव के शासन काल में सर्व्वदण्डनायक रविगुप्त दूतक का भी कार्य करता था। भौमगुप्त ने अपना महत्त्व दिखाने के लिए 'परमदैवत' उपाधि भी धारण की[52], जबकि लिच्छविराजा वामन देव, राम देव तथा गण देव केवल 'भट्टारक महाराज' की उपाधि धारण करते थे। इससे प्रतीत होता है कि लिच्छवि राजा इन गुप्त सामतो के कठपुतली बन कर रह गए थे।[53] इस प्रकार वसत देव के समय से शिव देव प्रथम के शासन काल के मध्य तक गुप्तो ने प्राय सभी महत्त्वपूर्ण पदो पर अधिकार कर रखा था जिससे वे नेपाल के राजकीय गतिविधियो पर नियन्त्रण रखे हुए थे।[54]

भौम गुप्त का प्रभाव लिच्छवि राजा शिव देव के शासन काल मे स 515 अर्थात् 593 ई तक बना रहा था। शिव देव ने इन गुप्त सामतो से मुक्त होने का प्रयास प्रारभ किया। लेकिन वह यह कार्य अकेले नही कर सकता था, क्योकि गुप्त उसकी गतिविधिया पर कडी नजर रखते थे। उसके शासनकाल मे भौम गुप्त लिच्छवियो के लिए 'राहु' बन चुका था। इस राहु से मुक्ति पाने के लिए शिवदेव प्रथम को सौभाग्य से एक योग्यतम सामत अशु वर्मन मिल गया[55], जो सभवत लिच्छवि था। कुछ विद्वान अशु वर्मन को गुप्त वशज मानते हैं[56], किंतु यह मत उचित नहीं प्रतीत होता है।[57] वशावलियो से ज्ञात होता है कि लिच्छवि राजा शिव देव वर्मन (अभिलेख म उल्लिखित शिव दव का अशु वर्मन दामाद था।[58] अशु वर्मन को लिच्छवि कहने का आधार यह भी है कि वशावलियो के सभी लिच्छवि राजा 'वर्मन' विरुद धारण किए हुए हैं तथा सूर्यवशी हैं। अशु वर्मन भी 'वर्मन' विरुद धारण करता है, जबकि अन्य गुप्त सामत प्राय 'गुप्त' विरुद धारण किए हुए हैं।

अशु वर्मन के सहयोग से ही शिव देव प्रथम लिच्छविकुल की प्रतिष्ठा पुन स्थापित कर सका। इसीलिए शिव देव प्रथम को अभिलेखो मे 'लिच्छवि कुल केतु' कहा गया है।[59] अशु वर्मन का ही सहयोग पाकर शिव देव प्रथम शाति एव सुव्यवस्था स्थापित करने म सफल हो सका। अशु वर्मन की मृत्यु होते ही जो गुप्त सामत शात थे पुन सक्रिय हो गए।[60] अशु वर्मन का गुणगान शिव देव प्रथम के लगभग सभी अभिलेख करते हैं।[61] लेकिन अशु वर्मन भी महत्त्वाकाक्षी महासामत था। उसने लिच्छवि राजा शिव देव प्रथम को गुप्त सामतो के चगुल स मुक्त करा कर अपना प्रभाव स्थापित किया। लिच्छवि राज्य का विस्तार वहा तक कर लिया जहा तक पहले मान देव का अधिकार था। उसने मल्लपुरी पर भी सभवत: पुन अधिकार कर लिया। शिव देव के समय के अभिलेख (स 520[62]-596 ई) मे 'मल्लकर' का उल्लेख है यद्यपि इस अभिलेख मे शिव देव का नाम

नहीं है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि 'मल्लो' को अकुश मे रखने के लिए शिव देव प्रथम को जनता पर 'मल्लकर' लगाना पडा हो। अशु वर्मन के सहयोग से ही शिव देव प्रथम राज्य मे शाति और सुव्यवस्था स्थापित करने में सफल हुआ।

प्रारभ मे अशु वर्मन केवल एक सामत था[63], जो सभवत. 574 ई मे नियुक्त हुआ।[64] अशु वर्मन की योग्यता तथा उसके द्वारा लिच्छवि वश की पुन प्रतिष्ठा स्थापित करने के कारण शिव देव प्रथम ने सभवत अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया और उसकी पदवी सामत से 'महासामत' कर दी[65] तथा राज्य के प्रशासन एव सुरक्षा का अधिकार भी उसे दे दिया। इस अधिकार को पाते ही अशु वर्मन अपनी स्थिति दृढ करने लगा। आगे चलकर सभवत शिव देव प्रथम के शासन काल के 30वें वर्ष (604 ई)[66] मे अशु वर्मन ने एक अलग राज्य की स्थापना कर ली, जो उसके सभी अभिलेख सिद्ध करते हैं। यह स्थिति शिव देव प्रथम के शासन के 39वें वर्ष तक बनी रही।[67] इस स्थिति को देखते हुए हम अनुमान लगा सकते हैं कि नेपाल मे इस समय द्वैराज्य शासन प्रणाली स्थापित हो गई थी। इद्र जी[68] और जायसवाल[69] का भी मत है कि नेपाल मे द्वैराज्य-शासन प्रणाली थी। अशु वर्मन नेपाल का पहला राजा था जिसने पडोसी राज्यो से राज-परिवारो से वैवाहिक सबध स्थापित कर अपनी स्थिति सुदृढ की। अशु वर्मन की बहन भोग देवी भारतवर्ष के मौखिरी वश के राजपुत्र शूर सेन से ब्याही थी[70], जिससे भोग वर्मन पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका विवाह मगध के गुप्त राजा आदित्य सन की पुत्री से हुआ था।[71] भोगदेवी ने पशुपति नाथ मदिर के समीप एक लिंग की स्थापना की थी जो सूर्य भोगेश्वर के नाम से जानी जाती है।[27]

अशु वर्मन के सवत 34[73] तिथि के अभिलेख मे शिव देव का पुत्र उदय देव का उल्लेख दूतक एव युवराज के रूप मे हुआ है।[74] ऐसा सभवत इसलिए किया होगा कि अशु वर्मन का कोई पुत्र नही था। उदय देव उसका साला था। इसलिए उसे अशु वर्मन ने अपना उत्तराधिकारी चुना होगा। यह भी हो सकता है कि शिव देव प्रथम के पुत्र उदय देव की ओर से कोई झगडे की स्थिति न पैदा हो, इस कारण अशु वर्मन ने उसे अपना 'दूतक' नियुक्त किया और उसे 'युवराज' कहकर सम्बोधित किया।[75] दूतक के रूप मे रहते हुए सभवत उदय देव ने यह सोचा हो कि भविष्य मे वही अविभाजित राज्य का उत्तराधिकारी होगा अत इस पद मे वह पूर्णरूप से सतुष्ट रहा होगा।[76]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि शिव देव प्रथम के शासन काल मे 30वें (स 52८) मे अशु वर्मन ने एक अलग राज्य की स्थापना कर ली थी[77], लेकिन इस पर भी वह स्वय को केवल 'महासामत' और 'श्री'[78] ही कहता था। यह स्थिति सभवत शिव देव प्रथम के शासन काल के उनतालीसवें[79] वर्ष (सभवत. शिव देव

मे उल्लेख है कि नरेंद्र देव तिब्बत के राजा स सहायता प्राप्त करने मे सफल हुआ। नेपाल के सिंहासन पर एक तरह से अधिकार जमाए हुए अवसरवादी गुप्तो को समूल नष्ट करने के लिए तिब्बत के राजा ने नरेंद्र देव की सहायता के लिए बडी सेना भेजी जिसके द्वारा नरेंद्र देव ने नेपाल पर आक्रमण किया और अवैध अधिकार जमाए गुप्तो को नेपाल की राजनीति से पूरी तरह बाहर निकाल फेंका।[112] इस प्रकार नेपाल मे लिच्छवियो के वश का पुन गौरव स्थापित हो सका। यह महत्त्वपूर्ण कार्य नरेंद्र देव की दूरदर्शिता के कारण सपन्न हुआ। इस लिए उसे लिच्छवि वश का उद्धारक कहना उचित होगा। नरेंद्र देव ने पुन उच्च राजकीय उपाधि परमभट्टारक महाराजाधिराज'[113] धारण की। उसने तिब्बत के राजा की सहायता प्राप्त करने के बदले मे यद्यपि कुछ वार्षिक कर[114] देना स्वीकार किया लेकिन इसके अतिरिक्त हम तिब्बत का नेपाल की राजनीति मे किसी प्रकार का दखल नही पाते।

गुप्तो को नेपाल की राजनीति से समूल नष्ट करने के पश्चात नरेंद्र देव ने पडोसी देश चीन से मित्रता स्थापित की। उसने अपने पुत्र को उपहार के साथ 651 ई मे चीन भेजा।[115] इसी प्रकार 646 ई म एक चीनी दूत मण्डल नेपाल होता हुए भारत आया था।[116] यह दूत मण्डल जब भारत पहुचा तो तब तक हर्ष वर्द्धन की मृत्यु हो चुकी थी। भारत पहुचने पर मगध का अर्जुन या अरुणासव (सभवत हर्ष वर्द्धन का मत्री या सामत) ने इस दूत मण्डल के साथ दुर्व्यवहार किया और चीनी दूत वैग ह्वेन-त्साग के अगरक्षको को मार डाला।[117] चीनी दूत सहायता के लिए नेपाल आया।[118] उसके अनुरोध पर नेपाल तथा तिब्बत के राजा ने चीनी दूत वैग ह्वेन-त्साग को सहायता के लिए एक बडी सेना दी। सैनिक सहायता पाकर वैग ने अपने अपमान का बदला अजुन को युद्ध म परास्त करके लिया। अर्जुन को बदी बनाकर वह चीन ले गया। जहा इसके लिए उसे बहुत अधिक सम्मान दिया गया।[119]

नरेंद्र देव ने तिब्बत तथा भारत के मौखरियो से विवाह सबध स्थापित किए। नरेंद्र देव ने अपनी बहन भृकुटी का विवाह तिब्बत के राजा[120] तथा अपने पुत्र शिव देव द्वितीय का विवाह मगध के राजा भोग वमन[121] (अशुवमन का भान्जा) की पुत्री वत्सदेवी (आदित्य सेन की नातिनी) स किया। इस प्रकार वैवाहिक सबध करके नेपाल मे अपनी स्थिति सुदृढ कर ली।

नरेंद्र देव ने कम से कम 37 वर्ष तक शासन किया।[122] नरेंद्र देव के बाद क्रमश शिव देव द्वितीय[123] जयदेव द्वितीय[124], शकर देव द्वितीय[125] नेपाल के सिंहासन पर आसीन हुए। शकर देव द्वितीय का अतिम ज्ञात तिथि स 207 (=781 ई) है।[126] यही नेपाल के लिच्छवियो राजाओ की अतिम ज्ञात तिथि है। शकर देव द्वितीय के शासन काल मे भी एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई। कल्हण

की राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीर का राजा जयापीड, जो 782 ई म सिंहासन पर बैठा, उत्तर भारत पर प्रभुत्व जमाना चाहता था लेकिन अरमुडी नाम के नेपाली शासक, से बुरी तरह पराजित हुआ। अन्य साक्ष्य के उपलब्ध न होने के कारण अरमुडी की पहचान करना कठिन है। परतु शकर देव को 782 ई मे शासन करता देखकर यही अनुमान लगाया जा सकता है कि सभवत अरमुडी लिच्छवि सामत या नायक था।

इस प्रकार नेपाल मे लिच्छवियो का शासन 781 ई तक अवश्य रहा। इसके पश्चात किसी लिच्छवि राजा का उल्लेख नेपाल के इतिहास मे नही मिलता है। सत्ता से हटने के पश्चात नेपाल के लिच्छवि वैशालियो के लिच्छवियो की भाति जीवन-यापन के लिए कृषि, व्यापार आदि कार्यों म सलग्न हो गए, और अतत नेपाली समाज मे घुलमिल गए जिनकी अलग से पहचान करना कठिन है। थारु जातियो मे एक शब्द 'बाजि' (सभवत वज्जि का बिगडा रूप), जिसका अर्थ थारु भाषा मे 'बाबा' (पितामह) से लिया जाता है, का सबोधन सम्मान-जनक माना जाता है।[127] इससे प्रतीत होता है कि नेपाल के लिच्छवि थारु जाति मे आत्मसात हो गए।

सदर्भ तथा टिप्पणिया

1 रेग्मी, एशिएट नेपाल पृ 116
2 कक पैट्रिक एन एकाउंट आफ द किंगडम आफ नेपाल, लन्दन 1811, डी राइट, हिस्ट्री आफ नेपाल (परबतिया का अनुवाद) कैंब्रिज, 18 7 अन्य वशावलियों के सदर्भ के लिए देखिए रेग्मी, एशिएट नेपाल, 1960
3 इ हि क्वा, भाग 20 पृ 345, ज बि रि सो भाग 31 पृ 28, परमेश्वरी लाल गुप्त, वही पृ 233
4 प्रयाग प्रशस्ति
5 हितनारायण झा वही, पृ 104
6 लूनिया का मत है कि पशुपतिनाथ अभिलेख में पुष्प पुरेकृती पाठ जो पढ़ा गया है अशुद्ध है नोली महोदय ने प्रमाणों से यह स्पष्ट किया है कि अभिलेख का शुद्ध पाठ 'पुष्पसराकृती होना चाहिए और इसका अर्थ है कि सुपुष्प लिच्छवि राम देव के समान सुदर था अत यह प्रमाणित नहीं होता कि सुपुष्प लिच्छवि मगध का सार्वभौम राजा था (लूनिया वही पृ 105-106)
7 आवश्यक चूर्णि (भाग, पृ 172) से हम जानते हैं कि 9 लिच्छवि, 9 मल्ल तथा 18 काशी कोशल का संयुक्त मोर्चा चेटक के नेतृत्व मे अधिक दिन अजातशत्रु की सेना के सामने नहीं टिक सका, चेटक के अतिरिक्त अन्य गणराजा अपने घर लौट आए अकेला

चेटक ही अत तक युद्ध करता रहा अतत उसकी पराजय हुई और उसने मैदान से भाग कर कुए में कूदकर आत्महत्या कर ली बचे-खुचे लिच्छवि (उसके अनुयाई) नेपाल की ओर भाग गए

सभव है सुपुष्प भी उनमें एक रहा हो जिसने अपनी रक्षा हेतु काठमाण्डो घाटी की शरण ली हो लिच्छवियों में प्रत्येक अपने को राजा कहता था इसलिए अभिलेख में सुपुष्प को राजा लिखा गया होगा सुपुष्प को यहां अपने पांव पर खडा होने पर अवश्य समय लगा होगा लिच्छवि कुशल राजनीतिक और योद्धा थे ही यहां की स्थितियां उनकी महत्वाकांक्षा पूर्ण करने में सहायक रही होगी सुपुष्प के वशज (सतति) अपनी राजनीतिक कुशलता के कारण नेपाल के सिंहासन पर अधिकार करने मे सफल हुए होगे अगर वशावलियो पर विश्वास किया जाए तो 'वमन उपाधिधारी राजा सुपुष्प के वश के हो सकते हैं वशावलियो में कहा गया है कि भास्कर वमन (सोम वश का अतिम राजा) के कोई पुत्र न होने के कारण भूमि वमन (सूयवशी लिच्छवि) सामत को अपना उत्तराधिकारी बनाया इसका अथ यह हुआ कि लिच्छवि पहले सामत थे बाद में सावभौम राजा हुए लिच्छवियो को शासन बनने में भी काफी समय करना पडा होगा इससे विदित होता है कि लिच्छवि काफी समय पूव वैशाली से नेपाल आकर बसे होगे अत आवश्यक चूर्णि के कथन पर विश्वास किया जाना चाहिए सुपुष्प के काल का अनुमान लगाने का दूसरा साक्ष्य पशुपतिनाथ अभिलेख है जिसके अनुसार सुपुष्प जयदेव प्रथम से 23 पीढ़ी पूव हुआ था अभिलेख में जय देव प्रथम के बाद 10 राजाओ के नाम मिट गए हैं तत्पश्चात 13वें पर वृषदेव 14वें शकर देव 15व धर्म देव तथा 16वें मान देव (प्रथम) का नाम लिखा है मान देव का समय चागुनारायण अभिलेख की तिथि 389 (शक सवत मानने पर 78+389=ईसवी सन् 46 हुआ) वह इस वष या एक वर्ष पूव सिंहासन पर बैठा होगा इसके अनुसार मान देव से 16वें पीढ़ी पूव जय देव प्रथम और जय देव से 23वी पीढ़ी पूव सुपुष्प नाम धारी राजा पुष्पपुर (पाटिलिपुत्र ?) में जन्मा था अगर प्रत्येक राजा का औसत शासन काल 20 वर्ष मान लें तो मान देव (467 ई सुविधा के लिए) से 16+23=39×30=780 वष पूव 780—467=313 ई पू के लगभग सुपुष्प के आने का समय आता है यह समय अजातशत्रु के समय के अधिक निकट है अगर वशावलियो में उल्लिखित राजाओ को ठीक से पहचान करने का प्रयत्न किया जाए तो अभिलेख में छूट गए राजाओं के नाम पूर्ण किए जा सकते हैं

8 जायसवाल भारत वष का अ यु इति पृ 268
9 उपाध्याय वासुदेव गुप्त अभिलेख पृ 259
10 फ्लीट इ ए भाग 14 पृ 642 51 जायसवाल ज वि ड रि सो भाग 12 पृ 157 264 राधा गोविंद बसाक हि आफ नादन ईस्टन इंडिया पृ 274
11 रमेशचद्र मजूमदार ज ए सो भाग 1 1959 पृ 47-48 वि च ला भाग 2 पृ 62 -41 रेग्मी एशिएट नेपाल पृ 101 हितनारायण झा लिच्छवि पृ 119
12 नोली अभिलेख 81, टवेंटी थ्री इस्क्रिप्शन अभिलेख 15
13 इ ए भाग 14, प 412
14 श्रीराम गोयल पृ 65 गोयल सही गणना करते हैं कि वशावलियो का वृष देव वर्मन (अभिलेख मे इसे वृष देव) का पिता रुद्र देव वमन या पितामह शिव वर्मन समुद्रगुप्त का समकालीन लिच्छवि राजा था

15 ज रा.ए सो. 1889 पृ 134 स्कदगुप्त की अतिम ज्ञात तिथि गु. स 148 है अर्थात 319+148=467 ई
16 स्कदगुप्त के पश्चात् परवर्ती गुप्त राजाओ का क्रम निश्चित करना कठिन है उसके पश्चात् कौन उत्तराधिकारी हुआ इस पर विद्वानों मे मतभेद है विस्तृत जानकारी के लिए देखिए सिन्हा, डिक्लाईन आफ द किंगडम आफ मगध, पटना, 1954, चट्टोपाध्याय अर्ली हि आफ ना इ कलकत्ता 1958, रायचौधुरी, पो हिस्ट्री, रमेशचन्द्र मजूमदार वाकाटक गुप्त ऐज, पृ 184 93, वा उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास इलाहाबाद, 1957, आलातोर, लाइफ इन गुप्त ऐज, बम्बई, 1943,
17 चांगु नारायण मदिर अभिलेख तिथि 389 (467 ई) प्रथम ज्ञात तिथि है जिसमे उसके विषय में बहुत सारी जानकारी मिलती है यह तिथि ठीक स्कदगुप्त के मृत्यु वर्ष पर पडती है इससे यह सोचना अनुपयुक्त नहीं होगा कि उसने स्कदगुप्त के मरते ही अपने को स्वतन्त्र घोषित कर लिया
18 ट्वटी थ्री इसक्रिप्शन, अभिलेख 1, नोली, अभिलेख 1 रेग्मी, पृ 106 धर्म देव के स्वर्ग-वासी हो जाने पर मान देव की मा राज्यवती सती होना चाहती थी लेकिन मान देव मा की इच्छा जानकर खुश नहीं हुआ उसने मा को ऐसा न करने का हठ किया उसने सोचा कि मा की मौजूदगी उसके राज्य सचालन मे सहायक तथा उसकी महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति मे प्रेरणा स्रोत रहेगी अतत राज्यवती ने अपनी इच्छा बदल दी तत्पश्चात् मा की अनुमति प्राप्त कर वह विजय अभियान के लिए निकला
19 वही, श्लोक 16; हितनारायण झा, वही, पृ 108 उनका मत है कि यद्यपि अभिलेख में विजित स्थानों का नामोल्लेख नही है, फिर भी अनुमान लगाया जा सकता है कि नृप कोसी क्षेत्र में रहे होगे
20. वही, श्लोक 16, रेग्मी, वही, पृ 106.
21 वही, श्लोक 16, रेग्मी, वही, पृ 106
22 वही, श्लोक 18 अभिलेख इस बात की ओर सकेत करता है कि मल्लपुरी के लोगों में वहां के राजा के प्रति काफी असतोष व्याप्त था जिसका लाभ मान देव ने उठाया.
23 हितनारायण झा, वही, पृ 109
24 एशिएट नेपाल, पृ 107, श्रीराम गोयल, वही पृ 71, प्र कु जायसवाल, वही 227, इन विद्वानो ने निम्नलिखित आधार पर 'मल्लपुरी' की स्थित गोरखपुर के आसपास नहीं मानी
अ अभिलेख म दिया गया वर्णन यह सकेत करता है कि सेना ने गण्डकी नदी को किसी ऊचे स्थान से पार किया था जहा से पानी चक्रवात करता नीचे गिरता है
ब चांगु नारायण की तिथि 386 (464 ई) मे गोरखपुर स्कदगुप्त के आधीन था इसलिए मल्लपुरी गोरखपुर के क्षेत्र में अवस्थित नही हो सकती है.
स मान देव द्वारा पराजित शत्रु उसका सामत था इस लिए मल्लपुरी पर्वतीय क्षेत्र में होनी चाहिए
25 हितनारायण झा, वही, पृ 109 हित नारायण झा सुझाव देते हैं कि अभिलेख में वर्णित नदी पहाडी नहीं, बल्कि मैदानी क्षेत्र मे बहने वाली नदी थी मैदानी नदियो में ही बाढ़ आने पर चक्रवात बनता है, पहाडी नदी में ऐसा दृश्य देखने को नहीं मिलता है (वही, पृ 109) झा के अनुसार चागु नारायण की तिथि का शुद्ध पाठ 389 (467 ई) है, जैसाकि

एक नेपाली लेखक ने पढा (इतिहास सशोधन, 2, पृ. 5 6) विश्वास किया जाता है कि इस वर्ष स्कदगुप्त की मृत्यु हो गई होगी जिसके तुरत बाद गुप्त साम्राज्य का विघटन होना आरभ हो गया, इसलिए असभव नही कि मान देव जैसा महत्वाकाक्षी तथा राज नीतिज्ञ ने इस स्थिति का लाभ उठाया हो मल्लो का इस क्षेत्र से सबध भूतकाल में था और मल्लो का अन्य किसी स्थान पर निवास करने की कोई सूचना न उपलब्ध होने के कारण तथा गडक से गोरखपुर क्षेत्र की समीपता होने के कारण यह सोचना उपयुक्त होगा कि मल्लपुरी का अर्थ गोरखपुर क्षेत्र से लिया जाए (पृ 131) इसी तरह अभि लेख में सामत शब्द का प्रयोग विद्वानो को गलतफहमी में डालता है जिसका अर्थ वे 'अधीन' से लेते हैं। लेकिन वास्तव में सामत का एक अर्थ पडोसी राजा भी होता है लेख की ऊपरी पक्ति में शत्रु के लिए 'प्रत्यरि' (अर्थात् प्रतिस्पर्धी शत्रु) का प्रयोग किया गया है यदि मल्लपुरी का राजा मान देव का 'आधीन सामत' होता तो विद्वान प्रशस्ति लेखक 'प्रत्यरि' शब्द का प्रयोग कभी न करता। अत अभिलेख के 'सामत' शब्द का अभिप्राय शाब्दिक न होकर साहित्यिक है जो केवल यह प्रदर्शित करने के लिए प्रशस्तिकार ने लिख दिया कि वह किसी राजा के विरुद्ध अभियान नहीं, वरन् विद्रोही सामतो का दमन मात्र है (वही, पृ 132)

26 पीछे प्रथम अध्याय देखिए

27 मूनिया, वही, पृ 383 सभवत स्कदगुप्त के अतिम दिन अच्छे नही रहे थे, सभवत उसके साम्राज्य के पश्चिमी भाग के सामत स्वतन्त्र हो गए थे, इसका आभास इससे भी मिलता है कि शासन के उत्तरार्द्ध में उसने जो स्वर्ण मुद्राए प्रसारित करवाई उन पर पहले की तरह गर्व व्यक्त करती विरुदावली नहीं थी। उन पर सीधा सादा लेख 'परहितकारी राजा जयति दिव श्री क्रमादित्य' उत्कीर्ण है परमेश्वरी लाल गुप्त ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि स्कदगुप्त के शासन काल के अतिम भाग में स्वर्ण और रजत की जो मुद्राए उत्कीर्ण की गई उन पर उसके पराक्रम शौर्य और प्रभुसत्ता उद्घोषित करने वाले विरुदों और उपाधियों का अभाव है स्कदगुप्त अब 'परमहितकारी' राजा रह गया था यह इस बात का परिचायक है कि स्कदगुप्त अब महान शक्तिशाली प्रभुसत्ता सप न सम्राट नही रह गया था मालवा बघेलखण्ड और सौराष्ट्र में तथा सभवत पार्श्ववर्ती अन्य क्षेत्रो में उसका प्रभुत्व नही रह गया था इस प्रकार स्कदगुप्त का शासन समाप्त होते होते गुप्त साम्राज्य विघटित हो चला था स्कदगुप्त के बाद एक भी ऐसा अभिलेख प्राप्त नही हुआ है जो यह बतलाए कि सौराष्ट्र गुजरात मालवा, बघेलखण्ड परवर्ती गुप्त *सम्राटों के अतगत रहे हों अत हो सकता है कि मान देव ने स्कदगुप्त के अतिम वर्षों* में (या मृत्यु के तुरन्त बाद) यह मल्लपुरी छीनी हो (वही)

28 उपाध्याय प्रा भा अभि का अध्ययन, खण्ड 2, पृ 68 69

29 हितनारायण झा, वही, पृ 131

30 'मानाक विरुद्ध वाले सिक्के किस राजा के थे इस पर विद्वानों में मतभेद रहा है लेकिन अब यह निश्चित हो चुका है कि ये सिक्के मान देव द्वारा ही प्रसारित कराए गए थे (ज रा ए सो 1908 पृ 669 आगे, रेग्मी, एशिएट नेपाल, पृ, 91, हितनारायण झा, लिच्छवि, पृ 134 सिक्कों के मुख भाग पर श्री मानाक तथा पृष्ठ भाग पर कमल पर बैठी हुई देवी बनी है जिसके एक ओर 'श्री भोगिनी' लिखा है (वही) भोगिनी उसकी एक प्रमुख रानी का नाम था सूर्यघाट अभिलेख, स 427, पर यह नाम अकित है (वही, टिप्पणी)

31 नोली, अभिलेख 62 यह स्थान कम से कम भीमार्जुन देव तक महत्वपूर्ण रहा था
32 नोली, अभिलेख 3, पृ 6, झा, *लिच्छवि*, पृ 133
33 झा, लिच्छवि, पृ 133
34 यँग बहाल अभिलेख (नोली 74) मे मान देव विहार के नाम से इसका उल्लेख हुआ है इसी तरह अंशु वर्मन के स 32 तिथि का हाडिगाऊ अभिलेख (नोली, 36) में मान विहार का उल्लेख हुआ है
35 पीछे देखिए
36 झा, लिच्छवि, पृ 134
37 वही
38 वही, पृ 135 *उसकी एक रानी गुजावती शिव की पुजारिन थी*
39 वही पृ 136
40 नोली, अभिलेख 81
41 मान देव की अतिम ज्ञात तिथि 427 (सूर्यघाट अभिलेख) है
42अ झा, लिच्छवि, पृ 136
ब बसत देव की प्रथम तिथि 478 (506 ई) है (आदिनारायण अभिलेख, नोली, अभिलेख 12)
43 बसत देव की अतिम ज्ञात तिथि (454+78=532 ई) है इस प्रकार उसने समवत 506 ई से 532 ई, तक शासन किया (झा, लिच्छवि, पृ 139, नोली अभिलेख 14
44 प्र कु जायसवाल वही, पृ 230 तथा पृष्ठभूमि देखिए
45 नोली अभिलेख 14
46 हितनारायण झा, वही, पृ 110, अफसढ अभिलेख (वा उपध्याय, प्रा भा, अभि का अध्य पटना, 1961 पृ 82 जीवित गुप्त शीलपर्वत हिमालय पर रहने वाले और समुद्रतट पर रहने वाले शत्रुओं के लिए काल ज्वर था उसने इस क्षेत्र मे रहने वाले शत्रुओ को परास्त किया था यहा हिमालय क्षेत्र के शत्रु की पहचान नेपाल के लिच्छवियो से की जाती है इस अभिलेख में जीवित गुप्त को क्षितीश चूडामणि' कहा गया है यह हर्ष गुप्त के 'नृप' विरुद् से अधिक महत्व का माना जाता है (लूनिया, गुप्त राजवश का राजनीतिक एव सांस्कृतिक इतिहास पृ 461), वि च ला वाल्यूम 637 रमेशचद्र मजूमदार सही सोचते हैं (वही) कि एक मौखरि राजा (ईशान वर्मा या ईश्वर वर्मा) और परवर्ती गुप्त राजा जीवित गुप्त प्रथम ने मिलकर हिमालय के किसी शत्रु को परास्त किया था, सभवत लिच्छवियो को
47 पो हिस्ट्री (छठा सस्क), पृ 601 जायसवाल सही सोचते हैं कि इस विजय अभियान में पूर्वी भारत पुन गुप्तो के नियत्रण में आ गया था
48 नोली, अभिलेख 12, 13, 14 15
49 हितनारायण झा वही, पृ 100 टिप्पणी 5 झा का मत है कि मान देव द्वारा मल्लपुरी *तथा वैशाली क्षेत्र पर अधिकार कर लेने में समवत* इस क्षेत्र के गुप्त लोग उसकी आधीनता में आ गए उन्होने सोचा कि पराधीन रहने की अपेक्षा लिच्छवि राजाओ के यहा नोकरी करना अच्छा है अत नेपाल आकर लिच्छवि राजा के यहा उन्होने नौकरी कर ली और मान देव के पश्चात दुर्बल राजाओं के शासन काल में अवसर पाकर शक्तिशाली हो गए तथा लिच्छवि राजाओ की गतिविधियों पर नियत्रण रखने लगे

50 हितनारायण भा, लिच्छवि, पृ 111, नोली, अभिलेख 14, 15, 17, 19, रेग्मी, वही, पृ 116
51 झा, लिच्छवि, पृ 139, प्र कु. जायसवाल, वही, पृ 231
52. गण देव के अंतिम ज्ञात तिथि स 489 (567) गणदेव 'भट्टारक महाराज' की उपाधि ग्रहण करता और भौमगुप्त 'परमदैवत श्री' की उपाधि ग्रहण करता है (नोली अभिलेख 20)
53 झा, वही, पृ 140, झा, लिच्छवि 140 अशु वर्मन को गुप्त सामंत मानते हैं
54 झा लिच्छवि पृ 140
55 झा, लिच्छवि, पृ 141, प्र कु जायसवाल, वही पृ 234
56. जायसवाल ज वि उ रि सो 22, हितनारायण झा, वही, पृ 111, झा महोदय का तर्क है कि अशु वर्मन यदि लिच्छवि कुल का होता तो जय देव द्वितीय के पशुपतिनाथ अभिलेख तथा लिच्छवि राजाओ के अन्य अभिलेखों में उसके भी नाम का उल्लेख किया गया होता (वही, पृ 144 145)
57 अशु वर्मन को 'गुप्त वशज' कहने वाले विद्वानों का तर्क है किसी ठोस आधार पर नही प्रस्तुत किया गया है लिच्छवि राजाओ के अभिलेखों में अशु वर्मन का नाम न लिखे जाने का कारण सभवत यह रहा हो कि अशु वर्मन उस परिवार से सबधित था जो परिवार नेपाल में बहुत पहले से शासन करता आ रहा था सभवत वह अन्य किसी लिच्छवि परिवार से सबधित था तथा ब्राह्मण मत का अनुयायी नहीं था सभवत इसीलिए वह 'परम दैवत' या 'देव' आदि (वैष्णव मत की अनुयायी की तरह) उपाधि नहीं धारण करता, जबकि अभिलेखो में उल्लिखित सभी लिच्छवि राजा देव' विरुद् धारण किए हुए हैं दूसरी ओर वशावलियो में उल्लिखित लिच्छवि राजा वर्मन' विरुद् धारण किए हुए हैं, इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सभवत वे बौद्ध अनुयायी' थे वशा-वलियो में अशु वर्मन को 'ठकुरीवश या वैश्य राजपूत कहना भी यही सिद्ध करता है कि वह गुप्त वश से सबधित नहीं था इसे लिच्छवि कहने का एक आधार यह भी है कि उसने गुप्त सामतों को प्रश्रय देने की अपेक्षा शिव देव के पुत्र उदय देव जो उसका साला भी था, को ही अपना दूतक तथा युवराज (नोली, अभिलेख, 41) घोषित किया ह्वेन त्साग जो 635 ई मे भारत भ्रमण के लिए आया था, भी सभवत इसे लिच्छवि राजा कहकर प्रशसा करता है (बील, ट्रैवेल आफ ह्वेन त्साग)
58 राइट हिस्ट्री आफ नेपाल पृ 130.
59 नोली, अभिलेख, 24
60 प्र कु जायसवाल, वही, 234 तथा देखिए जिष्णुगुप्त का अभिलेख
61 देखिए, नोली, अभिलेख, 23, 24, 28 तथा 34 आदि
62 नोली अभिलेख 30
63 नोली, अभिलेख, 23
64 झा, लिच्छवि, पृ 141
65 पाटन अभिलेख स 517 (नोली, अभिलेख 23) में अशु वर्मन का केवल 'श्री सामन्त' के रूप में उल्लेख है और उस वर्ष का भदगॉव अभिलेख (नोली, अभिलेख, 24) में उसे 'महासामत' कहा गया है इससे आभास मिलता है कि सं. 517 (595) में उसका पद सामंत से बढकर महासामत हो गया,
66 झा, लिच्छवि, पृ 146

67 नोली, अभिलेख, 41 इस अभिलेख में अंशु वर्मन केवल 'श्री' की उपाधि ग्रहण किए हुए है
68. इ ए 63, पृ 422
69 हिंदू राजतंत्र, प्रथम खंड, (काशी, 1951) पृ 132
70 नोली, अभिलेख, 41, क्लासिकल ऐज, पृ 127
71 वही
72 वही
73 नोली, अभिलेख, 41
74 रेग्मी, वही, पृ 639
75. झा, लिच्छवि, पृ 145-46
76 वही, पृ 146, प्र कु जायसवाल, वही, पृ 237 जायसवाल का मत है कि सभवत अंशु वर्मन का लिच्छवि कुल से सघर्ष हुआ जिसमें लिच्छवियो की पराजय हुई फलत युवराज उदय देव से अंशु वर्मन के लेखो में दूतक बनना पड़ा
77 सं 30 (नोली, अभिलेख, 40) में अंशु वर्मन ने 'कैलाशकूट भवन' की स्थापना कर वहा से शासन भी करने लगा था यही नहीं सरकारी विज्ञप्तियों पर भी उसके हस्ताक्षर होते थे ऐसा शिव देव के लेखों से भी विदित है (नोली अभिलेख, 63) इससे यह प्रमाणित होता है कि बिना उसकी जानकारी के कोई काय नहीं होता था
78 नोली, अभिलेख, 35, लेवी, अभिलेख, 13
79 झा लिच्छवि, पृ 146.
80 वही
81 यद्यपि प्राप्त किसी भी अभिलेख मे यह उपाधि उसके साथ लगी नहीं मिली है फिर इसमें सदेह नहीं कि उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की जिसकी पुष्टि ध्रुव देव के पाटन अभिलेख (नोली, अभिलेख, 50) तथा उसके सिक्के (कैट आफ द क्वा आफ नेपाल, पृ 1) करते हैं (झा, लिच्छवि, पृ 146, टिप्पणी 7)
82. कैटलाग आफ द क्वाएंस आफ नेपाल, पृ 1 कुछ सिक्को ने मुख भाग पर 'श्रीअंशो' तथा पृष्ठ भाग पर 'महाराजाधिराजस्य' अंकित है
83 झा, लिच्छवि, पृ 147.
84 वही, पृ 147, झा ने बहुत वैज्ञानिक ढग से इस दूसरे वर्ग के सवत को अंशु वर्मन द्वारा प्रर्वातत कराना सिद्ध किया है (लिच्छवि पृ 121-124) उनके अनुसार अंशु वर्मन जब शिव देव प्रथम के शासन के 30वें वर्ष अपना एक अलग राज्य घाटी में स्थापित कर लिया तब उसने इस नए सवत का प्रयोग प्रारभ किया लेकिन इसकी गणना अपने सामत पद की नियुक्ति तिथि (574 ई) से की इस तरह यह तिथि 574 ई से आरभ होती है
85 नोली, अभिलेख, 81.
86 ज रा ए सो 1880, पृ 529
87 नोली, अभिलेख, 50, 52 54
88. ज रा. ए. सो , 1880, पृ. 529
89 झा, लिच्छवि, पृ 150, टिप्पणी 3 ध्रुव देव द्वारा उदय देव को सिंहासनाच्युत कर सिंहासन पर अधिकार करने का विवरण 'हिस्ट्री आफ दाय डायनस्टी' (ज रा ए सो , 1880, पृ 529) में मिलता है. यद्यपि उनके नामों का उल्लेख नहीं है, लेकिन ध्रुव देव के कुछ

अभिलेख (नोली, अभिलेख, 50, 51, 52, 53, 54) मिल जाने से इसकी पुष्टि हो जाती है.

90 झा, लिच्छवि, पृ 150

91 नोली, अभिलेख, (50 द्वितीय वर्ग के अभिलेखो में प्रयुक्त स. ईसवी सन् 574 में अंशु वर्मन द्वारा प्रचलित कराया गया था)

92 *नोली, अभिलेख, 50-56*

93 वही, लेकिन यहां 'युवराज' का अभिप्राय उत्तराधिकारी से नहीं लिया जा सकता है क्योंकि किसी साक्ष्य से ज्ञात नही होता है कि विष्णु गुप्त सार्वभौम राजा था अत युवराज केवल '*उच्चकुल में उत्पन्न होने के कारण कहा गया है (झा, लिच्छवि, पृ 152)*

94 कैटलाग आफ द क्वाइन्स आफ नेपाल, पृ 1 सिक्के के ऊपर 'श्री जिष्णु गुप्तस्य' अंकित है

95 नोली, अभिलेख, 50

96 वही, अभिलेख, 51

97 वही, अभिलेख, 55

98 वही अभिलेख, 62.

99 नोली अभिलेख 81

100 नोली, अभिलेख, 67 नोली इसे 69 पढ़ते हैं लेकिन महेशराज पत ने (इतिहास सशोधन, वि. स 2019, सीरीज 55 पृ. 22-23) इसका सही पाठ 67 पढ़ा है,

101 झा, लिच्छवि, पृ 152

102 वही, पृ 153

103. नोली, अभिलेख, 56

104. नोली, अभिलेख, 56, 57

105 नोली, अभिलेख, 60, 62

106 झा, लिच्छवि, पृ 155

107 नोली अभिलेख 61 'सकलजन निरुपद्रवोपाय सविधाने कृतिसततानो उल्लेख है

108 नोली, अभिलेख, 61
"अपरिमिताभिमत नृपति गुण कलापाविष्कृत मूर्तिरनव गीतावदात ज्ञान मयूखा पसारित सकल रिपु तिमिरसलइयो"

109 यद्यपि ताड् विवरण में नरेंद्र देव के पिता के नाम का उल्लेख नहीं है पर जय देव द्वितीय के अभिलेख (नोली, अभिलेख, 81) में उसके पिता के नाम का उदय देव के रूप से उल्लेख है.

110. हिस्ट्री आफ ताग डायनेस्टी (ज वि रा सो, 1880, पृ 529-30), ज वि उ. रि सो, 1936 पृ 238 और आगे, लेवी, भाग 2, पृ 164 और आगे, रेग्मी, वही पृ 177, झा लिच्छवि, पृ 155

111 वही

112 नरेंद्र देव के अभिलेखो मे गुप्त सामतो या अधिकारियो का नाम नहीं मिलता है. इससे विदित होता है कि गुप्त परिवार की राजनीति मे दखलदाजी समाप्त कर दी गई थी.

113 नोली, अभिलेख, 66 68, 70,73

114 ज रा ए सो 1880, पृ 529 30, रेग्मी, वही, पृ 177, क्लासिकल ऐज, पृ 138-39, झा लिच्छवि, पृ 156 वार्षिक कर देने की पुष्टि नरेंद्र देव के पुत्र शिव देव

द्वितीय के लगनटोला अभिलेख तिथि 119=693 ई. (नोली, 77) से भी होती हैं

115 झा, लिच्छवि, पृ 157, लेवी, भाग 2, पृ 161

116 ज रा ए सो, 1880, पृ 529-30

117 झा लिच्छवि, प 157

118 वही

119 वही, पृ 158

120 वही, पृ 159, कुछ विद्वान भृकुटी को अशु वर्मन की पुत्री मानते हैं (राय डायनटिक हिस्ट्री, भाग 1, पृ 190)

121 झा, वही, पृ 162, एडवास हिस्ट्री, पृ 162, द क्लासिकल ऐज, पृ 137, रेग्मी, वही, पृ 166-67

122 नरेन्द्र देव के शासन की प्रारंभिक ज्ञात तिथि स 67 (नोली, अभिलेख 67) है महेश-राज पन्त इसका सही पाठ 67 स किया है जबकि नोली ने 69 पढा था (इतिहास सशोधन, वि स 2019, सीरीज, 55 पृ 22 23) और अतिम ज्ञात तिथि 103 है (नोली, अभि 73) अर्थात् नरेंद्र देव ने 103+574=677 ई तक शासन किया

123 इसका एक अभिलेख तिथि 109 का मिला है तथा अतिम ज्ञात तिथि स 125 का है (नोली, अभि. 76 और 78) अर्थात् उसने 699 तक शासन किया

124 यह सभवत स 137 के पूर्व सिंहासन पर आया (नोली, अभि 79) तथा शकर देव की प्रथम ज्ञात तिथि स 189 (इतिहास प्रकाश पार्ट 1, पृ 159) है अत इससे अनुमान लगा सकते हैं कि जयदेव का शासन (189+574)=763 ई तक रहा होगा

125 झा, लिच्छवि पृ 171

126 शकर देव की अतिम ज्ञात तिथि स 207 है जिसमें विजय देव को दूतक के रूप मे उल्लेख पाते हैं (अभि पार्ट 5 पृ 12 13), यह तिथि नेपाल के लिच्छवि राजाओ की अतिम ज्ञात तिथि है

127 द्रष्टव्य, लिच्छवियो की उत्पत्ति व जाति' का अध्याय

7

लिच्छवि गणराज्य का पतन

लिच्छवि गणराज्य का इतिहास समाप्त करने से पूर्व लिच्छवि गणराज्य के पतन के कारणो पर विचार कर लेना आवश्यक है। लिच्छवि गणराज्य के पतन के कारणो मे प्रमुख कारण लिच्छवि गणराज्य का आकार मे छोटा होना था। छोटा राज्य, चाहे कितना ही वैभवशाली क्यो न हो, अधिक समय तक अस्तित्व मे नही रह पाता। पडोसी साम्राज्यवादी शक्तिया अवसर पाते ही उसे आत्मसात् कर लेती हैं।[1] लिच्छवि गणराज्य क्षेत्र की दृष्टि से अधिक विस्तृत नही था। अपनी सुरक्षा हेतु लिच्छवियो ने पडोसी गणराज्यो से सधि कर जो सयुक्त मोर्चा बनाया था, उन सबको मिलाकर भी उनका कुल विस्तार लबाई मे दो सौ मील से अधिक नही था।[2] अत जब सगठित तथा शक्तिशाली पडोसी मगधराज अजातशत्रु का उन पर आक्रमण हुआ तो लिच्छवि अधिक दिन तक उसका विरोध नही कर सके। लगभग एक वर्ष मे ही अजातशत्रु के विरुद्ध बना सयुक्त मोर्चा टूट गया और इसके पश्चात शीघ्र ही वज्जिसघ भी टूट गया तथा वैशाली पर अजातशत्रु का अधिकार हो गया।[3] यद्यपि अजातशत्रु ने लिच्छवियो की गणतात्रिक व्यवस्था नही समाप्त की, लेकिन उसने वज्जि सघ मे सम्मिलित कुलो को इस प्रकार अलग-थलग कर दिया कि वे भविष्य मे पुन कभी सगठित नही हो सके।

वज्जि सघ के टूट जाने से लिच्छवि अपने छोटे-से वैशाली क्षेत्र मे सीमित रह गए। कौटिल्य अर्थशास्त्र[4] मे वज्जि और लिच्छवि को तथा पतजलि[5] के महाभाष्य मे लिच्छवि और विदेह को अलग अलग दर्शाया गया है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इसक्षेत्र के छोटे छोटे गणराज्य पूर्व की तरह पुन कभी सगठित नही हो पाए। यह स्थिति सभवत मौर्य शुग काल तक बनी रही। परवर्ती शुग राजाओ के दुर्बल शासन मे सभवत लिच्छवियो को पुन शक्तिशाली होने का अवसर मिला, और अपने अतीत के गौरव, वैभव तथा स्वतत्रता को पुन

स्थापित करने मे उन्होंने सफलता भी प्राप्त की। लेकिन शुगो तथा शकों के पतन के उपरात उठ रही साम्राज्यवादी शक्तियो से उन्हे अपनी स्वतत्रता के लिए सभवत खतरा पैदा हो रहा था। इसलिए लिच्छवियो ने अपनी स्थिति सुदृढ करने के लिए नवोदित गुप्त वश से वैवाहिक सबध स्थापित कर लिया।

गुप्त राजाओ से सबध बना लेने से यद्यपि उनकी स्थिति सुदृढ हो गई, लेकिन एक तरह से लिच्छवि गुप्त राजाओ पर आश्रित हो गए। परिणाम यह हुआ कि महत्वाकाक्षी गुप्त राजाओं ने वैशाली मे 'कुमारामात्य'[6] की व्यवस्था करके लिच्छवियो के गणराज्य को अपने साम्राज्य मे आत्मसात कर लिया। अतत गुप्तों के पतन के साथ लिच्छवि भी भारत के राजनीतिक मच से लुप्त हो गए।

लिच्छवि गणराज्य के पतन का दूसरा कारण था—लिच्छवि गणराज्य मे कुछ पदा का आनुवशिक होना। इस प्रकार का उदाहरण हम सेनापति पद के लिए देखते हैं जब सेनापति खण्ड की मृत्यु के पश्चात सेनापति पद के लिए उसके दो पुत्रो के मध्य ही चुनाव हुआ तथा खण्ड का छोटा पुत्र सिंह सेनापति पद के लिए चुना गया।[7] इसी प्रकार का उदाहरण आगे 'कुमार देवी' के विषय म भी देखते हैं।[8] जो सभवत लिच्छवि गणराज्य की एकमात्र उत्तराधिकारिणी थी तथा जिसका विवाह चद्रगुप्त प्रथम के साथ हुआ था। लिच्छवि गणराज्य मे इस तरह की प्रवृत्ति विकसित हो जाने पर ही सभवत गुप्त राजाओ ने वैशाली मे 'कुमारामात्य'[9] की व्यवस्था की जिससे लिच्छवियो के स्वशासन मे हस्तक्षेप हुआ। लेकिन इसका विरोध न वैशाली की जनता ने और न ही लिच्छवि गण-राज्य के सदस्यो ने किया। सभवत उनकी दृष्टि मे अब गणतत्र तथा राजतत्र मे कोई स्पष्ट अतर नही[10] रह गया था। उन्होने गणतत्र की अपेक्षा हो सकता है कि राजतात्रिक व्यवस्था मे अधिक सुरक्षा अनुभव की हो।

पतन का तीसरा कारण लिच्छवि गणराज्य मे प्रत्येक सदस्य को स्वय को राजा कहने का अधिकार दिया जाना भी था। प्रारभ मे प्रत्येक सदस्य को राजा कहे जाने का आधार सभवत समानता का सिद्धात रहा हो, लेकिन बाद मे यही गुण अवगुणो मे परिवर्तित हो गया। सदस्य राजा प्राय अपने समकक्ष राजा की बात मानने तथा नेतृत्व स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं होते थे[11], क्योंकि इससे वे अपने को लघु अनुभव करते थे। ललित विस्तर[12] मे विवरण मिलता है कि लिच्छवि गणराज्य के सदस्य अपने को प्राय. किसी राजा से छोटा मानने को तैयार नही थे। सभी 'मैं राजा हू' 'मैं राजा हू' कहते थे महाभारत मे भी गणराज्यों के इस दोष की ओर इगित किया गया है।[13] संभवत इसी दोष का लाभ उठाते हुए मगध राज्य का ब्राह्मण मत्री वस्सकार लिच्छवि गणराज्य के सदस्यो मे भेद उत्पन्न कर सका था। परिणामस्वरूप एक ऐसा समय भी आ

गया जब लिच्छवियो ने एक दूसरे की बात सुननी ही बद कर दी। लिच्छवि गणराज्य में यह दोष सक्रामक रोग की तरह फैल गया। स्थिति यहा तक आ पहुची कि जब सथागार मे युद्ध की स्थिति पर विचार करने के लिए निमत्रण का घटा बजा तो समिति के सदस्यो ने उसे अनसुना कर दिया और सथागार मे एकत्र नही हुए।[14] इसी का लाभ उठाकर अजातशत्रु ने सरलता से वैशाली पर अधिकार कर लिया।

लिच्छवि गणराज्य के पतन का एक अन्य कारण उसका शत्रु राज्य के षड्यत्र का शिकार हो जाना था।[15] गणराज्य के सदस्यो से कोई भी बात गुप्त[16] नही रहने पाती थी। इसका लाभ उठाकर अजातशत्रु ने अपना विश्वसनीय व्यक्ति वस्सकार को वैशाली भेजा तथा बडी सरलता से उनमे भेद पैदा करने और आवश्यक सूचनाए प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की।

गणराज्य के सदस्यो म मतभेद या द्वेष केवल शत्रु राज्यो द्वारा ही नही उत्पन्न किया जाता था, बल्कि कभी-कभी गणराज्यो के सदस्यो द्वारा लिए गए निर्णयो के कारण भी मतभेद या द्वेष उत्पन्न हो जाता था। निर्णयो से अप्रसन्न हो जानेवाला सदस्य कभी कभी राज्य छोडकर शत्रुराज्य मे जाकर शरण ले लेता था। इस तरह का उदाहरण गोप नामक व्यक्ति था जो अपने कनिष्ठ भ्राता सिंह के सेनापति चुने जाने पर वैशाली छोडकर शत्रुराज्य मगध चला गया था।[17] ऐसी स्थिति म असभव नही कि उसने बहुत सारी महत्त्वपूर्ण सूचनाए लिच्छवियो के शत्रु राजा बिंबसार को दी हो।

लिच्छवियो मे व्यक्तिगत प्रतिद्वंद्विता एव शक्ति पिपासा भी पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान थी। कौटिल्य सरीखे राजनीतिज्ञ वस्सकार ने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया था। उसने लिच्छवियो को नष्ट करने के लिए द्वेष और विरोध का बीजारोपण कर उन्हे दुर्बल बनाया।[18] सभवत यह प्राचीन भारत के सभी गणराज्यो की दुर्बलता रही है। महाभारत मे भी गणराज्यो के विषय मे कहा गया है कि गणराज्य मे बाह्य शत्रुओ के भय की अपेक्षा वास्तविक भय आतरिक मतभेद अथवा वैमनस्य का होता है।[19]

लिच्छवि गणराज्य के पतन का एक और कारण उनकी शासन पद्धति का गणतत्रात्मक से राजतत्रात्मक व्यवस्था म परिवर्तित होना भी था। अजातशत्रु से पराजित होने के पश्चात वैशाली के लिच्छवि दीर्घ काल तक राजतत्रात्मक साम्राज्यो के अतर्गत गणराज्य का सचालन करते रहे। इस दीर्घ काल म लिच्छवि राजतत्रात्मक व्यवस्था स अच्छी तरह परिचित हो गए होगे, और सभवत गुप्तो के अभ्युदय के पूर्व उनका झुकाव भी इस ओर हो गया था। इसी अवधि मे वैशाली के लिच्छवियो की एक शाखा नेपाल म राजतत्रातिक व्यवस्था म शासन कर रही थी।[20] इस प्रकार लिच्छवियो की शासन प्रणाली गणतत्रातिक से

राजतन्त्रातिक व्यवस्था मे परिवर्तित होने लगी थी। इसी लिए सभवत जिन गुप्त सम्राटो ने वैशाली मे 'कुमारामात्य' की नियुक्ति की तो वैशाली के लिच्छवियो ने कोई विरोध नही किया बल्कि इस नई शासन व्यवस्था को व्यावहारिक मान लिया। सभवत इसी अवधि मे वैशाली से कुछ लिच्छवि परिवार जीवन यापन के लिए धीरे धीरे नेपाल पलायन कर गए जिससे वैशाली मे लिच्छवियो की सख्या न्यून हो गई। जब भारत मे गुप्तो का अपकर्ष हो गया, उस समय वैशाली मे सभवत इतने कम लिच्छवि रह गए कि वैशाली म पुन लिच्छवि राज्य स्थापित कर पाना व्यावहारिक नही रह गया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लिच्छवि गणराज्य के पतन के लिए उपरोक्त कारण उत्तरदायी थे। सभवत गुप्तकाल मे कुमारामात्य के शासन के अतर्गत लिच्छवि सुखशाति का अनुभव कर रहे थे, और उन्होने अब राजनीति में रुचि लेने की अपेक्षा कृषि तथा व्यापारिक कार्यों मे रुचि लेना अच्छा समझा। इस लिए गुप्तो के पतन के पश्चात पुन राजनीति मे आना लिच्छवियो ने पसद नही किया। यही कारण था कि जब 635 ई मे ह्वेन-त्साग[21] वैशाली नगरी देखने आया तो नगर का अधिकाश भाग खण्डहर हो चुका था। वैशाली क्षेत्र के अवशिष्ट लिच्छवि अन्य जातियो मे घुलमिल गए जिससे आज उनकी अलग से पहचान करना कठिन है। राहुल साकृत्यायन[22] ने इनको पहचानने का प्रयास किया है, लेकिन अनेक विद्वान उनसे सहमत नही हैं।[23]

सदर्भ तथा टिप्पणिया

1 जायसवाल हिंदू राज्यतत्र (हिंदी अनुवाद) पृ 238, हिंदू पालिटी, पृ 167
2. द्रष्टव्य, प्रशासन का अध्याय
3 द्रष्टव्य, 'मगध साम्राज्य तथा लिच्छवि' का अध्याय
4 अर्थशास्त्र, 11 1 5 6 लिच्छविक, वृजिक मल्लक—राजशब्दोप जीविन
5 महाभाष्य, 4 1 168
6 द्रष्टव्य, टिप्पणी 9
7 द्रष्टव्य, टिप्पणी, 17
8 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति (प्रथम स) पृ 9'
9 द्रष्टव्य, 'गुप्तकाल में लिच्छवि अध्याय
10. अल्तेकर प्राचीन भारतीय शासन पद्धति (प्रथम स) पृ 90
11 अल्तेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन एन्शियेण्ट इडिया, पृ 378-79
12 ललितविस्तर में कहा गया है कि लिच्छवि परस्पर एक दूसरे को छोटा-बड़ा नहीं मानते थे और सब मैं राजा हूं, कहते थे. (ललित विस्तर ।।।, 23, प्राणनाथ, वही, पृ 130, मज़ू. लिच्छवि पृ 75

13. मिथिला, पृ 117
14 जायसवाल, हिंदू राज्यतंत्र (हिंदी अनुवाद), पृ 229, ज ए सो बं. 1838, पृ 994-05
15 वही, पृ 240
16 परमात्मा शरण, प्राचीन भारत मे राजनैतिक विचार एव सस्थाए (पचम स. मेरठ, 1979) पृ 388.
17 द्रष्टव्य, 'मगध साम्राज्य तथा लिच्छवि' अध्याय
18 जायसवाल, हिंदू राज्यतंत्र, पृ 240
19 वही, पृ 241
20 द्रष्टव्य, 'गुप्त काल में नेपाल के लिच्छवि' अध्याय
21 उपेन्द्र ठाकुर, मिथिला, पृ 162
22 राहुल सांस्कृत्यायन, बुद्धचर्या पृ 104, टिप्पणी
23 योगेन्द्र मिश्र, वैशाली, पृ 113

8

सांस्कृतिक इतिहास

सामाजिक व्यवस्था

भारतवर्ष मे पूर्ववैदिक युग मे जातियो का उल्लेख नही मिलता है, यद्यपि वर्ण व्यवस्था का सकेत ऋग्वेद मे अवश्य मिलता है।[1] ऋग्वेद के प्रथम मण्डल मे लिखा है कि एक वर्ग सूर्योदय होने तक उच्च आदर्श पर पहुचने के लिए, द्वितीय उच्च महिमा प्राप्त करने के लिए, तृतीय लाभ प्राप्त करने के लिए, और चतुर्थ परिश्रम करके अपना जीवन व्यतीत करने के लिए है।[2अ] वैदिक युग का वर्ण चतुष्ठय कब जाति के रूप मे रूढ हो गया, कहा नही जा सकता। महात्मा बुद्ध के समय तक आते आते यह जाति भेद अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गया था। जातियो के अनुसार ऊच नीच की भावना अति प्रबल हो गई थी। समाज चार प्रमुख जातियों पुन उप जातियो मे विभाजित था। और हर कोई स्वय को अन्य से श्रेष्ठ मानता था, ब्राह्मण क्षत्रिय से और क्षत्रिय ब्राह्मण से।[2ब] जातियो का विभाजन तत्कालीन समाज मे आसानी से देखा जा सकता है क्योकि लोग अपनी जाति के अनुसार अलग-अलग ग्रामों मे बसते थे उदाहरणार्थ ब्राह्मण ग्राम[3], क्षत्रिय ग्राम[4], बनिया ग्राम[5], निषाद ग्राम[6], चाण्डाल ग्राम[7] इत्यादि। सूत्रकृताग[8] मे क्षत्रियो के निम्नलिखित उप जातियो या कुल का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—उग्र, भोग, अइक्षिक (इक्ष्वाकु), ज्ञात्रिक, कौरव और लिच्छवि।

वर्ण व्यवस्था एव जाति व्यवस्था के सबध मे अनेक विद्वानो ने विशेष चर्चाए की है। अत उनका यहा सविस्तार वर्णन पृष्टपेषण मात्र होगा। अत अन्य सामाजिक सास्कृतिक पहलुओ पर आगे विमर्श किया जाएगा। लिच्छवियो मे वैदिक समाज जैसी रूढिया नही थी। बौद्ध तथा जैन धर्म के प्रभाव म आकर लिच्छवियों ने प्रगतिशील सिद्धांतो को सबसे आगे बढकर अपनाया। रूढिवादी सस्कारो को न स्वीकार करने के कारण ही स्मृति के लेखकारो ने रुष्ट होकर उन्हे 'व्रात्य'[9] के अतंगत रखा।

महात्मा बुद्ध जातिवाद के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने कर्म को प्रमुख माना। जो जैसा कर्म करता है वही उसका वर्ग या जाति है। वे कहते थे कि यदि कोई ब्राह्मण नीच कर्म करता है तो क्या उस अवस्था मे भी उसके लिए स्वर्ग मे स्थान सुरक्षित रहेगा ? कोई चाडाल कुल म जन्म पा कर भी यदि पुण्य कर्मों द्वारा जीवन की सार्थकता सिद्ध करता हैं तो वह स्वर्ग का भागी क्यो नही हो सकता।[10] महात्मा बुद्ध ने कहा—मनुष्य न तो जन्म से चाण्डल होता है और न ही ब्राह्मण,[11] अततोगत्वा मानव मात्र मे समता है, विभेद तो बाह्य एव कृत्रिम है। उद्दालक-जातक मे ब्राह्मण के मुख से यह बात कहलाई गई है कि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल तथा पुक्कुस सभी मे सत्कर्मों द्वारा निर्वाण प्राप्त करने की समान क्षमता होती है।[12]

महात्मा बुद्ध द्वारा कर्म को प्रधानता देने के प्रचार का प्रभाव तत्कालीन समाज मे बहुत पडा। यही कारण है हम निषिद्ध कर्मों म रत एक लबी सूची ब्राह्मणो मे पाते हैं। दस ब्राह्मण जातक मे दस प्रकार के ब्राह्मणो का उल्लेख मिलता है—चिकित्सक, परिचारक, निग्गाहक (जो कुछ पाए बिना पिंड नही छोडते), लकडहारे, वणिग, अबष्ठ तथा वैश्य (कृषि व व्यापार मे सलग्न), गोघातक, गोप निषाद, लुब्धक और वे जो स्नान काल मे राजा की सेवा करते थे।[13] अन्य जातक कथाओ म भी चिकित्सक[14], कृषक[15], वणिक[16], वड्ढकि[17], अजपाल[18], धनुर्धारी[19], तथा निषाद[20] ब्राह्मणो के उल्लेख हैं। सभव है, जातक कथाओ के ब्राह्मण सबधी विवरणो म अतिरजना हो, लेकिन यह तथ्य तो स्वीकार करना ही होगा कि ब्राह्मणो और क्षत्रियो का गरीब वर्ग अपनी आजीविका के लिए *परिस्थिति वश विभिन्न प्रकार के कर्मों को स्वीकार करता था।* बौद्ध समुदाय उन्हे इन कर्मो म लगे रहने के कारण हेय दृष्टि से नही देखता था, इससे यह सभावना बनती है। इसी तरह हम देखते हैं कि बौद्ध समुदाय म शूद्र वर्ग के विद्वान व्यक्तियो को बौद्ध सघ मे सम्मान जनक दर्जा प्राप्त हैं, जैसे उपालि को (जो नापित पुत्र था, बुद्ध का परम प्रिय शिष्य था तथा जो बुद्ध की मृत्यु के पश्चात सघ का अध्यक्ष बना)[21]। क्षत्रिय कर्म करने के अतिरिक्त अन्य कर्म मे सलग्न होने के कारण ब्राह्मणो ने मनुस्मृति[22] मे लिच्छवियो को 'व्रात्य' के अतंगत रक्खा, जबकि लिच्छवि महात्मा बुद्ध के प्रशंसक बने रहे, यह सर्वविदित है।

शूद्र की स्थिति

महात्मा बुद्ध द्वारा शुद्र वर्ग को अन्य उच्च जातियो के समान दर्जा दिलाने के लिए अत्यधिक प्रचार के होते हुए भी समाज मे शूद्र का स्थान निम्न ही रहा, यह तत्कालीन समाज के वैज्ञानिक विश्लेषण से सिद्ध हो जाता है। यहा तक कि कही नही महात्मा बुद्ध भी उन सामाजिक मान्यताओ को मान्यता देने के

देने के लिए बाध्य होते दिखाई पडते हैं।[23] सभवत इसका कारण समाज मे उच्च जातियों का अत्यधिक दबाव होना रहा हो। इसका आभास हमे महात्मा बुद्ध के मुख से शृगाल जातक की कथा मे देखने को मिलता है।[24]

पालि पिटक एव धर्मसूत्रो मे अनेक उपजातियो को शूद्र माना गया है। यद्यपि इसका स्पष्ट उल्लेख नही मिलता कि किन विशिष्ट जातियो को शूद्र कहा जाता था, किंतु जिस रूप मे जातियो की सामाजिक अवस्था का वर्णन किया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें शूद्र वर्ण के अतर्गत माना जाता था। शूद्र प्रमुखत सेवक और मजदूर के रूप मे कार्य करते थे। आपस्तब धर्मसूत्र मे इस बात का आभास मिलता है कि ऐसे शूद्रो के पास इतनी भू-सपत्ति नही रहती थी कि वे राज्य को उसका कर देते[25]। इन्हें मृतको और कमजोर कहा जाता था[26]। जातकों से ज्ञात होता है कि मजदूर (कर्मकर) की मजदूरी प्रतिदिन डेढ मापक थी[27]। पातजलि महाभाष्य के अनुसार उसे मात्र चार माषक मिलते थे[28]। कौटिल्य अर्थशास्त्र मे खेतिहर मजदूर की मजदूरी निर्धारित की गई थी, भोजन के साथ 2/3 मापक[29]। अत उसकी मजदूरी (दैनिक) दो जना के भोजन के मूल्य के लगभग पडती थी। मृतको की आय साधारण अवश्य थी, परतु उन्हे समाज में हेय दृष्टि से नही देखा जाता था, क्योकि यदि ऐसा होता तो आपत्काल मे उच्च वर्ण के सदस्य इस कर्म का आश्रय नही लेते। एक जातक कथा मे ब्राह्मण कन्याओ के जीवन निर्वाह के लिए भृत्ति का आश्रय लेने का उल्लेख मिलता है।[30]

शूद्र वर्ण का एक वर्ग शिल्पियो का था। तकनीकी विकास के साथ साथ धीरे धीरे नवीन पेशेवर जातियो का उद्भव हो रहा था। पेशे और शिल्प कालातर मे पैतृक होते गए और उसमे लगे लोगो की विशिष्ट जातिया बनती गईं। इस प्रकार जो शिल्पी जातिया बन गईं उनम बुनकर (पेसकार, ततुवाय,[31] वढई (तच्छक)[32] लोहार (कम्मार=कर्मार)[33] दतकार,[34] कुम्हार (कुभकार)[35] आदि के उल्लेख मिलते हैं। इन जातियो मे सजातीय विवाह की प्रथा प्रचलित थी प्रत्येक जाति का एक प्रमुख भी होने लगा जो जेट्ठक कहलाया जैसे, मालाकार जेट्ठक[36], वड्ढकि जेट्ठक[37], कम्मार जेट्ठक[38] इत्यादि। कुभकार, लोहार, दतकार, बढई आदि जातिया अलग अलग ग्रामो मे वास करने लगी। जाति के आधार पर गावो के नामकरण होने लगे, जैसे कुम्भकार ग्राम[39], कम्मार ग्राम[40] वड्ढकि ग्राम[41] इत्यादि। वज्जि क्षेत्र मे इनकी सख्या भी काफी थी। विनय पिटक[42] मे राज्य की कला पर विशेष प्रकाश डाला गया है। ग्रामों मे इनका घर छप्पर व मिट्टी से बना होता था[43]

अनेक शूद्र जातिया ऐसी भी थी जो असगठित, अव्यवस्थित तथा भ्रमण शील थी। इनका प्रमुख कर्म था, जनता का मनोरजन, इसी प्रकार की जातियों मे

नट[44], लघ नटक[45] (करिश्मा दिखाने वाले), माया कार[46], सपेरे[47] (अहिंगुण्डिक), नेवला पालने वाले[48], गधर्व[49] (गायक वादक), भेरी वादन करने वाले[50], शख वादक[51], सर्पदश का विष दूर करने वाले (विसवेज्जा)[52] आदि का उल्लेख बौद्ध पिटक मे है। वैशाली मे सारी रात होने वाले उत्सवो मे इनके भाग लेने आदि का स्पष्ट उल्लेख जातक-कथाओ[53] मे मिलता है। इन घुमक्कडो की अपने कर्मों के अनुसार विशिष्ट जातिया बन गईं। अत हमे भेरी वादक कुल[54], शख वादक कुल[55], नाटक कुल[56] गधब्ब कुल[57] इत्यादि के उल्लेख मिलते हैं। इसी प्रकार की और भी कई जातिया थी परतु उनका जीवन अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित था। इस वर्ग की जातियो मे गोपालक, पशुपालक, तृणहारक (घसियारे), लकडहारे, वन कम्मिक (वनो मे काम करने वाले), आराम गोपक (उपवनो की रखवाली करने वाले) आदि के उल्लेख मिलते है[58]। इन जातियो का जीवन मुख्यतया ग्रामीण होता था। सादा जीवन उन्हे अधिक प्रिय था। शहरो के ऊचे-ऊचे भवनो को देखकर इनके मन म ईर्ष्या नही उभरती थी। ये अपने कच्चे मकानो मे ही खुश थे मज्झिम निकाय से ज्ञात होता है, शिल्पी जातियो के समान ये जातिया भी अलग-अलग ग्रामो मे बसने लगी थी।

हीन जातिया

पालि पिटक मे चडाल, नेसार (निषाद), पुक्कुस (पोल्कष) वेण तथा रथकार इन पाच जातियो को हीन जाति परिगणित किया गया है।[59] हीन जातियो म चाडालो की अवस्था सर्वाधिक शोचनीय थी। अभागे चाडालो को समाज म सर्वत्र तिरस्कृत होना पडता और ये बेचारे नगर सीमा से हटकर अपने घर बनाते थे।[60] चाडाल अस्पृश्य थे। उन्हें नगर मे प्रवेश का अधिकार प्राप्त नही था। इसलिए वे नगर प्रवेश द्वार के निकट ही अपनी कला का प्रदर्शन कर जीविकोपार्जन करते थे।[61] शृगाल जातक मे चाडाल की तुलना शृगाल से की गई है। चाडाल इतने अपवित्र समझे जाते थे कि उनके स्पर्श से हवा भी दूषित हो जाती। इसके सबध मे एक कथा मिलती है, जिस म र्ग से एक ब्राह्मण जा रहा था, दूसरा राहगीर भी उसी मार्ग से जा रहा था। ब्राह्मण ने अपने साथी राहगीर से परिचय पूछा। राहगीर ने उत्तर दिया, 'मैं चाडाल हू'। हवा का रुख चाडाल से होकर ब्राह्मण की ओर था। चाडाल के स्पर्श से दूषित वायु ने मेरे शरीर को दूषित कर दिया, ऐसा सोचकर ब्राह्मण दूसरी ओर लपकते हुए बोला, 'अरे अशुभ चाडाल, दूसरी ओर जाओ'[62] जातकों मे चाडलो का बडा ही मार्मिक वर्णन पढने को मिलता है। मातग जातक मे एक श्रेष्ठि पुत्री की दृष्टि एक चाडाल पर पड गई तो उसने अपने नेत्रो को सुगधित जल से धोकर पवित्र किया। श्रेष्ठि पुत्री के साथ चलने वाले लोगो ने मातग की लात जूतो से पिटाई कर उसे चेतना शून्य कर

दिया।[63] इसी प्रकार की एक अन्य कहानी चित्र सभूत जातक म मिलती है।[64]

जातक कथाओ मे वर्णित चाडाल जाति की हीनावस्था की पुष्टि धर्म शास्त्र से भी होती है। आपस्तव चाडाल को अस्पृश्य और अदर्शनीय मानते हैं।[65] मनु कहते हैं, यदि कोई चाडाल देख रहा हो तो उस समय ब्राह्मण को भोजन नही करना चाहिए।[66] मनुस्मृति मे कहा गया है कि चाडालो की बस्तिया ग्राम से बाहर हो और वे केवल मिट्टी के पात्र काम मे लाए, कुत्ते तथा गधे उनकी सपति हो। वे मृतको के वस्त्र धारण करें, लोहे के आभूषण पहनें, टूटे बर्तनो मे भोजन करें और यत्रतत्र घूमते रहें।[67] मनु के अनुसार इनका मुख्य कार्य मृतको को जलाना और जिनके सगे-सबधी न हो उनके शव ढोना था।[68] सडको पर झाड़ू लगाना और जीर्ण वस्तुओ के उद्धार के काम भी उनसे लिए जाते थे।[69] अपराधियो को कोडे लगाने या अगच्छेद करने जैसे कामों के लिए भी वे नियुक्त किए जाते थे।[70] मृत्यु दण्ड प्राप्त अपराधी की हत्या का काम भी चाडालो से लिया जाता था।[71] चाडाल लोग प्राय लाल या पीले रग के कपडे पहना करते थे।[72] अधोवस्त्र प्राय फटे-चीथडे होते और शरीर के ऊपरी भाग का दुपट्टा लाल होता।[73] वे अपना सिर पीले कपडे से बाधा करते थे।[74] चाडालो के बालक बालिकाए जब चीथडों मे लिपटे तथा हाथ म भिक्षा पात्र लिए[75] हुए नगर मे प्रवेश करते तो उन्हे देख-कर ही दया आ जाती होगी।

इसम कोई सदेह नही कि चाडाल समाज म तिरस्कृत जाति थी। परतु कभी-कभी ज्ञानी पुरुष के चाडाल पुन होने पर भी उस समाज म समुचित प्रतिष्ठा मिल जाती थी, विशेषकर बौद्ध समुदाय मे। जातक कथाओ मे कुछ ऐसे ही सत्पुरुषो के वर्णन मिलते हैं। मातग थे तो चाडाल, पर वे तपोबल से पूजनीय बन गए, ब्राह्मणों तथा क्षत्रियो ने भी उनकी सेवा की।[76] एक ज्ञानी चाडाल के प्रश्नो का उत्तर देने मे असमर्थ रहने पर ब्राह्मण को चाडाल के चरणों मे सिर झुकाना पडा।[77] एक अन्य ब्राह्मण एक चाडाल महापुरुष का शिष्य हो गया और उसने अपने गुरु की सब प्रकार स सेवा सुश्रूषा की।[78] लेकिन फिर भी जातको के इन विवरणो के आधार पर यह नही माना जा सकता है कि विद्वान चाडालो को समाज अच्छी नजर स देखता रहा होगा, इसे हम केवल अपवाद स्वरूप ले सकते हैं। सामान्यतया चाडाल तो अभागे ही रहे।

चाडालो की भाति निषाद भी नगर के बाहर ही रहा करते थे। इनका प्रमुख पेशा जगलो मे विचरण और आखेट था।[79] मनुस्मृति के अनुसार इनका कर्म मछली मारना था।[80] सभवत अपनी कर्म प्रकृति के फलस्वरूप इनका स्थान भी समाज में हीन हो गया।[81] वैशाली मे बहुत सख्या मे तालाब थे।[82] निश्चय ही वैशाली मे धीवरो व निषादो की आबादी रही होगी।

पुक्कुस का स्थान हीन जातियो की सूची मे दूसरा है।[83] मनु के अनुसार

इनका उद्भव शूद्र नारी और निषाद पुरुष के समागम से हुआ।[84] यह धारणा उस काल की है जब अतर्जातीय विवाहो को सर्वथा निषेध माना जाने लगा। सभवत पुक्कुस जाति भी चांडाल के समान तिरस्कृत रही। पुक्कुसों को भी निम्न स्तर के कर्म मे नियुक्त किया जाता था। सभवत सफाई का काम ही इनका मुख्य पेशा था, क्योंकि इनके द्वारा मंदिरो एव प्रासादो से मुरझाए फूलो को स्थानांतरित कराए जाने के उल्लेख मिलते हैं।[85]

वेण और रथकार को हीन जातियो की श्रेणी म स्थान देने का कारण भी उनके कर्मों के प्रति समाज मे हीन भावना का पनपना ही है। ये बास और लकडी की वस्तु बनाने का काम करते थे, जिसे निम्न कोटि का काम माना जाता था। पालि पिटको मे अनेक प्रकार के कामो का उल्लेख निम्न स्तर के कर्म के रूप मे हुआ है। नलकार (टोकरी बनाने वाला)[86] वेणुकार (बासुरी निर्माता)[87], पेस-कार (बुनकर)[88], नापित (या नहापित)[89], सर्पदश का विष दूर करने वाले (वसेवेज्जा)[90], दर्जी (तुण्णाकम्मका)[91], सुरा विक्रयी (वारुणि वाणिजा)[92], तथा नाविक—आदि को[93] हीन कर्म करने वाला कहा गया है। कसाई (ओरब्भिक), चिडीमार (साकुनिक), शिकारी (लद्दक=लुब्धक), मछुआ (मच्छघातक) आदि भी इसी श्रेणी म आते हैं।[94] क्योंकि इनके धर्म खूनी कहलाए गए हैं।

इस प्रकार अनेक जातिया अपने कर्म की प्रकृति के कारण हीन कहलाईं और समाज मे उनका स्थान निम्न माना गया। किंतु इनमे से जिन सदस्यो को राज-कुल म नियुक्त किया गया, जैसे राज कुभकार, राजु पट्टान नलकार, राज माला-कार[95], राज नापित उन्हें राजा से मित्र जैसा व्यवहार मिल जाता था। जिससे ये समाज म सम्मानजनक स्थान पा जाते थे।[96] कभी-कभी तो राज नापित को जीविकोपार्जन के लिए सपूर्ण ग्राम ही मिल जाता था।[97]

दास प्रथा

वर्ण व्यवस्था के समान ही दास प्रथा भी भारतीय समाज मे अति प्राचीन काल से ही प्रचलित हुई।[98] यद्यपि अधिकतर शूद्र वर्ग से दास बनाए जाते थे[99] लेकिन इसके साथ हम क्षत्रिय, ब्राह्मण और उच्च वर्ण के व्यक्तियो को भी दासत्व स्वीकार करते देखते हैं।[100] बौद्ध विवरणो[101] से ज्ञात होता है कि पूर्ण कश्यप और अजित केस कबली भी अपने पूर्व जन्म मे दास ही थे।

पालि पिटक तथा समकालीन सस्कृत साहित्य मे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज मे दासो के क्रय-विक्रय तथा दान सामान्य बातें हमे दास-दासी के क्रय-विक्रय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। नन्द जातक[102] मे एक सद्धिविहारिक (बौद्ध विहार का अन्तेवासी) की तुलना शत मुद्रा क्रीत दास से की गई। सत्तुभक्त-

जातक[103] के अनुसार जब एक ब्राह्मण ने भिक्षा मे मागकर सात सौ कार्षापण उपार्जित कर लिया, तो उसने सोचा—'इतनी मुद्राओ से दास-दासिया खरीदी जा सकती हैं।' परतु इस प्रसग ने दास-दासियो की सख्या का उल्लेख न होने से एक दास अथवा दासी के निश्चित मूल्य का पता नही चलता। लेकिन जैसा कि नन्द जातक मे दास के लिए शत मुद्रा क्रीत शब्द प्रयुक्त हुआ है उससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि साधारणतया एक दास या दासी का मूल्य उस समय एक सौ कार्षापण रहा होगा। विनय पिटक मे तीन प्रकार के दासो का वर्णन है :

1. घर की दासी से उत्पन्न पुत्र।
2. पैतृक सपत्ति के रूप मे उत्तराधिकार मे प्राप्त।
3. दान या खरीदा हुआ।

विदुर पडित जातक मे चार प्रकार के दासो का उल्लेख मिलता है :

1. दासी पुत्र।
2. भोजन आदि के लिए दास कर्म स्वीकार करना (स्वेच्छा से)।
3. जो दूसरो को मालिक की तरह पहचानते हैं.
4. जो विक्रय किया गया हो।

इसके अतिरिक्त अन्य जातको के माध्यम से अन्य प्रकार के दासो का पता चलता है

1. युद्ध मे बदी किया हुआ[104]।
2. भय से दासता स्वीकार करने वाला[105]।
3. ऋण न चुका पाने पर बना दास[106]।
4. अपराध करने पर दण्ड स्वरूप बनाया गया दास।
5. जुए मे हारने पर शर्त का पैसा न चुका पाने पर निश्चित अवधि तक के लिए बना दास[107]।
6. मृत्यु दण्ड से बचने के लिए अनेक अपराधी दास बन जाते थे।

जातको में दास कम्मकार शब्द ऐसे दासो के लिए प्रयुक्त हुआ है जो भोजन के लिए दास बनना स्वीकार करते थे।[108]

मनुस्मृति मे सात प्रकार के दासो का उल्लेख है।[109] इसी तरह नारद स्मृति[110] मे पद्रह तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र[111] मे पाच प्रकार के दासो का उल्लेख मिलता है। नारद स्मृति[112] राय देता है कि स्वामी अपने दासो को किसी अन्य के यहा बधक भी रख सकता है। इसी प्रकार ऋण का भुगतान करने की अवधि तक भी ऋण ग्रस्त व्यक्ति को दास बनाया जा सकता है।[113]

दासो के इस वर्गीकरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि युद्ध, धनाभाव, दुर्भिक्ष तथा ऋणग्रस्तता दास प्रथा के उद्‌भव के मूल कारण थे।

चुल्ल नारद जातक[114] मे गाव के निवासी डाकुओ द्वारा लूटते, पकडे और दास बनाए जाते हुए पाए जाते हैं।

'दास' सज्ञा पराधीनता का द्योतक है और पराधीन व्यक्ति के सुख दु ख का विधाता उसका स्वामी होता है जो अपने उग्र अथवा मृदु स्वभाव के अनुसार अधीनस्थ दासो के प्रति व्यवहार करते हैं। जातको से ज्ञात होता है कि दास कभी कभी अपने स्वामी से बहुत अच्छा व्यवहार पाते थे। कालकणी जातक[115], गगमाल जातक[116] और उरग जातक[117] से ज्ञात होता है कि दासो के साथ परिवार के सदस्य की भाति व्यवहार किया जाता था। नद[118] तथा नानचद जातक[119] मे मालिको व दासो के बीच अच्छा सबध देखने को मिलता है। कटाहक जातक से पता चलता है कि कुछ लोग दासो को अपने पुत्र के साथ अध्ययन और शिल्पो की शिक्षा भी देते थे। परिवार के अन्य सदस्य की भाति ही दास व्रत उपवास रखते और धर्म सबधी उपदेश सुनते थे। कुछ दास अपनी स्वामिभक्ति के कारण स्वामी के बहुत विश्वसनीय बन जाते थे। उनके परामर्श का आदर किया जाता था।[120]

बौद्ध जातको म स्वामी पुत्रो तथा दास कन्याओ के बीच प्रेम सबधी वर्णन मिलते हैं। इसी तरह स्वामी पुत्री व दास पुत्र के प्रेम सबधी विवरण भी मिलते हैं। प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के प्रेम की इति किस तरह होती होगी। कौटिल्य का मत है कि यदि किसी दासी पुत्री को अपने स्वामी से गर्भ रह जाए तो उस अवस्था म वह अपनी दासता से मुक्त मानी जाएगी।[121] इस विधान से प्रतीत होता है कि सभवत दासी कन्या अपने स्वामी की पत्नी बन जाती होगी। इस *बात का आभास हम जातक कथाओ से भी मिलता है।*[122] चुल्लक श्रेष्ठि जातक म श्रेष्ठि कन्या अपने दास के साथ भाग कर विवाह कर लेती है।[123] उस दास से उसेदो पुत्र हुए। थोडा बडे होने पर पुत्र ने अपने नाना के घर राजगृह जाने की जिद की।

राजगृह पहुचने पर न तो श्रेष्ठि पुत्री को और न ही दास को श्रेष्ठि के सम्मुख जाने का साहस हुआ। अत मे श्रेष्ठि ने अपने दौहित्रो को तो रख लिया, किंतु पुत्री और जामाता को पर्याप्त धन देकर विदा कर दिया। इस प्रकार हम देखते है कि वस्तुत तत्कालीन समाज ऐसे सबधो को अच्छी दृष्टि से नही देखता था, यह सब उच्च वर्ण के स्वामी को अनिच्छा पूर्वक स्वीकार करना पडता था।

उपरोक्त उद्धरणो से यह अर्थ कदापि नही निकाला जा सकता है कि स्वामी हमेशा दासो के साथ अच्छा व्यवहार करते थे। नाम सिद्ध जातक[124] से ज्ञात होता है कि स्वामी दासी पुत्री धनपाली को अकारण पीटते हैं। वह दूसरे के यहा भाड़े पर कार्य करने के लिए भेजी जाती है। एक अन्य जातक[125] मे उल्लेख है

कि एक दासी जो प्रतिदिन स्वामी के लिए भाडे पर कार्य करने के लिए निकलती थी, जब वह बिना कुछ कमाए घर लौटती तो उसे कोडे से पीटा जाता था।

उपरोक्त जातक कथाओ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुछ धर्म प्रधान कुलो के स्वामी को छोड कर सामान्यत स्वामी का उनके साथ व्यवहार अच्छा नही था। तत्कालीन समाज सुधारक भगवान बुद्ध वर्ग की दयनीय स्थिति और समाज की परिस्थिति देखते हुए इनकी दशा सुधारने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहे। भगवान बुद्ध ने इसके लिए कुछ निर्देश दिए, दास को उसके सामर्थ्य के अनुसार कार्य देना चाहिए। उन्हे वस्त्र और भोजन पूरा देना चाहिए। बीमारी मे स्वामी को उनकी सेवा सुश्रूषा करनी चाहिए। उनके प्रति स्वामी व स्वामिनी का व्यवहार अच्छा होना चाहिए। इसी प्रकार भगवान बुद्ध ने दासो को निर्देश दिया, दास को स्वामी से पहले सुबह उठना चाहिए, और स्वामी के सोने के बाद सोना चाहिए। अपना कार्य अच्छी तरह करना चाहिए। जो कुछ मिले उसी मे सतुष्ट रहना चाहिए। उसे सदा अपने स्वामी की प्रशसा करनी चाहिए। दासो को यह समझ कर कि दासता उसके पूर्वजन्मो के कर्मों का फल है, अपनी वर्तमान स्थिति को धैर्यपूर्वक सहना चाहिए। दास इस जन्म मे अपने स्वामी को अपनी सेवाओ से सतुष्ट करके ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है।[126]

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने स्वामी और दास के कर्त्तव्यो की विवेचना करते हुए सामाजिक असतोष को समाप्त करने के लिए प्रयास किए। लेकिन उनकी शिक्षा से स्वामी वर्ग के रवैये मे कोई परिवर्तन नही आया। दासो पर स्वामियो द्वारा क्रूर से क्रूर अत्याचार के उदाहरण हम जातको मे खूब मिलते हैं। परिस्थितियो को देखते हुए भगवान बुद्ध मे भी इतनी सामर्थ्य नही थी कि वे इस कोढ को मिटाने के लिए इस व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाते। उन्होने अपने सघ मे प्रवेश के लिए यह नियम बना रखा था कि यदि कोई दास प्रवज्या ग्रहण कर भिक्षु बन जाए तो वह दासता से मुक्ति पा लेगा।[127] लेकिन जब इस नियम से दास लोग स्वामी के घर से भाग कर दासता से मुक्ति पाने लगे तो उच्च वर्ग ने भगवान बुद्ध से विरोध के रूप मे शिकायत की। इस पर भगवान बुद्ध ने दास को (अपने दासत्व से मुक्त होने के पूर्व) सघ मे प्रवेश पाने पर रोक लगा दी।[128] लेकिन सभवत बहुत से स्वामी भगवान बुद्ध के अनुयायी हो जाने पर स्वय अपने दासो के दासत्व से मुक्त कर बौद्ध सघ मे सम्मानित होने की प्रेरणा देते रहे होगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दासो को कोई सवैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं था। स्वामी उन्हे मार सकता था। पिटवा सकता था, जला भी सकता था। कुछ स्वामिनिया अपनी दासियो को रस्सी से पीटती थी। स्वामी के आदेश की अवहेलना करने पर दास को पीटा जाता था तथा नाक, हाथ, पाव आदि भी काटे जा

सकते थे। भागने पर स्वामी उन्हें पकडवा कर कडा दण्ड दे सकता था। स्वामी उन्हें दूसरे क्रूर व्यक्ति को भी दे सकता था। उन्हे जान से मार सकता था। स्वामी के दुर्व्यवहार से तग आकर कुछ दास भागने का प्रयत्न करते, कुछ आत्म-हत्या करते और कुछ स्वामी के विरुद्ध विद्रोह[129] करते, किंतु दासो का कोई अपना सगठन न होने के कारण उनके स्वामी सरलता से दासो का विद्रोह दबा देता था।[130] दासो को स्वामी की सपत्ति के रूप मे माना जाता था। वह दासियो से यौन आनद[131] लेने के लिए भी स्वतत्र था। लिच्छवि भी उस समय की इस बुराई से मुक्त नही थे। वे दासियो के पुत्रो को एक स्वतत्र आदमी के रूप मे पहचानने (मान्यता देने) को तैयार नही हुए थे। वासव खतिया को शाक्य परिवार के सदस्य के रूप मे केवल इसलिए नही स्वीकारा गया क्योकि वह कुमार महानाम से उत्पन्न एक दासी नागमुण्डा की पुत्री थी।[132]

दासों के कार्य की प्रकृति उनकी योग्यता और स्वामी की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती थी। समृद्ध स्वामी के योग्य दास कोषाध्यक्ष भाडारिक तथा निजी सचिव आदि का कार्य भार ग्रहण करते देखे जाते हैं।[133] लेकिन ऐसे दासो की सख्या न्यून थी। साधारणतया दास दासियो को घर के छोटे कार्यों मे लगाया जाता था। जैसे—रसोइए का कार्य (पाचक कर्म)[134], जलाशय से जल लाना[135], बर्तन धोना[136], अन्नागार की रखवाली करना व धूप म धान सुखाना[137], वस्त्र बुनना व धोने का कार्य[138], तथा खेतों मे कार्य करना[139] आदि। दासियो का मुख्य कार्य स्वामिनी की सेवा करना[140] था। खेतो मे अपने स्वामी का भोजन पहुचाना[141], घर मे स्वामी स्वामिनी के भोजन करते समय तत्सम्बधी सभी आवश्यक[142] कार्य भी दासिया करती थी। ये कार्य ऐसे नही थे जिसे हीन कहा जाए। कौटिल्य[143] ने दास दासियो से गर्हित कर्म कराने का निषेध किया है। उन्होने दास दासियो से मुर्दा ढोने, मलमूत्र साफ कराने, उच्छिष्ट भोजन की सफाई और नग्न स्थान के समय दासी से काम लेने आदि का निषेध किया है।

दास को दासत्व से मुक्त होने का भी विवरण मिलता है। पालि पिटक से ज्ञात होता है कि दास द्वारा सन्यास स्वीकार कर लेने से, अथवा अपने स्वामी की इच्छा से, अथवा अपने स्वामी को मुक्ति शुल्क चुका देने से दासत्व का अत हो जाता था। दीर्घ निकाय[144] मे कहा गया है कि यदि कोई दास सन्यासी हो जाता है तो वह अभिवादन और उच्चासन तथा भिक्षु जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओ, यथा चीवर, पिण्ड पात्र, आसन आदि का अधिकारी माना जाएगा। सोणनद जातक[145] म उल्लेख है कि एक ब्राह्मण गृह पति ने प्रवज्या ग्रहण करने के समय अपने सभी दासो को मुक्त कर दिया। बेस्सतर जातक[146] के अनुसार शुल्क देकर दासत्व का अत सभव था। कौटिल्य के अनुसार जो दण्ड स्वरूप अथवा युद्ध बदी होने के कारण दास बनाए जाते थे वे शुल्क देकर मुक्त हो सकते थे। क्रीतदास

को उतना ही शुल्क देना पडता था जितने मे उसके स्वामी ने उसे क्रय किया हो। यदि किसी को अर्थदण्ड चुकाने की असफलता के कारण दास बनना पडता, तो अर्थ दण्ड की राशि का भुगतान कर देने पर उसे मुक्ति मिल जाती थी। यदि दास स्वामी मुक्ति, शुल्क पाकर भी किसी दास को मुक्त नही करता था तो उसे द्वादशपण दण्ड का भागी माना जाता था। यदि दासी को अपने स्वामी से सतान लाभ हो जाता तो माता और सतान दोनो स्वतत्र माने जाते।[147] मज्झिम निकाय के रठ्ठपाल सूत्र से ज्ञात होता है कि अपने स्वामी को कोई सुखद सवाद देने से भी कभी कभी दास को पुरस्कार स्वरूप मुक्त कर दिया जाता था।[148] दासो को मुक्त करने की प्रथा का उल्लेख नारद स्मृति[149] मे भी मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज मे दासमोक्ष की परपरा लबे समय तक प्रचलित रही।

नारी की स्थिति

बुद्ध काल मे जातिगत भावनाए प्रबल हो गई थी। सामान्यतया यह ध्यान रखा जाता था कि अतर्जातीय विवाह द्वारा किसी कुल का रक्त दूषित न हो। बौद्ध पिटक वर्णित विवाहो मे सबद्ध पक्षो को सदा समान जाति तथा कुल का बतलाया गया है—ब्राह्मण[150], क्षत्रिय[151], श्रेष्ठि[152], भाडारिक[153] आदि अपने सतान का विवाह स्वजाति के अतर्गत समान सामाजिक प्रतिष्ठा एव आर्थिक स्थिति के कुलो मे सपन्न करते थे। वैशाली लिच्छवियो ने यह नियम बनाया था कि 'प्रथम श्रेणी (वर्ग) मे उत्पन्न कन्या का विवाह केवल प्रथम श्रेणी के परिवारो मे हो सकता है, मध्य श्रेणी (वर्ग) मे उत्पन्न कन्या का विवाह प्रथम और मध्यम श्रेणी (वर्ग) मे हो सकता है, लेकिन तृतीय श्रेणी (वर्ग) मे उत्पन्न कन्या का विवाह किसी भी श्रेणी (वर्ग) के परिवार मे हो सकता था।'[154]

इस तरह निम्न कुलोत्पन्न कन्या को तो स्वीकार किया जा सकता था लेकिन उच्च कुलोत्पन्न कन्या का विवाह निम्न वर्ग मे उत्पन्न वर मे नही हो सकता था। इस तरह का विचार एक जातक[155] मे देखने को मिलता है, लिच्छवि कन्या पर एक नापित पुत्र के आसक्त होने पर उसका पिता उसे समझाता है, 'पुत्र, तुम हीन जन्मा नापित पुत्र हो, और अनुरक्त हो गए हो, जाति सपन्ना क्षत्रिय दुहिता लिच्छवि कुमारी पर। यह तुम्हारे लिए उचित नही है, मैं तुम्हारे लिए सजातीय तथा सगोत्र कन्या का प्रबन्ध करूगा।' बुद्ध भी इस कथा को सुनकर 'शृगाल को शेरनी पर आसक्त होने की कथा शिष्यो को सुनाकर' नापित पुत्र का उपहास करते हैं।[156] कच्छप जातक की एक गाथा से भी यही अर्थ झलकता है कि प्राय असगोत्र विवाह को मान्यता नही मिलती थी।[157] लेकिन कही कही इसका अपवाद भी हमे देखने को मिलता है जैसे काटाहक जातक और कलडुक जातक

में उच्च घराने की कन्याओं के विवाह निम्न कुलीन दास पुत्रों से होने की चर्चा पाई जाती हैं जो दास के साथ घर से भाग कर देश की सीमा पार कर स्वतंत्र जीवन आरंभ करती दिखाई गई हैं।

लिच्छवि स्वस्थ यौन संबंध का काफी सम्मान करते थे। शक्ति द्वारा नारी या कन्या पर प्रभाव डालने की अनुमति नहीं थी।[158] रक्त शुद्धता के लिए लिच्छवियों ने दो विशेष अधिनियम बनाए थे। प्रथम यह कि किसी कन्या का विवाह उससे नहीं हो सकता जो वैशाली का नागरिक नहीं है।[159] चीवरवस्तु में दी गई कहानी के अनुसार बिंबसार का विवाह सिंह सेनापति की छोटी पुत्री से न होकर इसी कारण बड़ी पुत्री से संपन्न हुआ, क्योंकि बड़ी पुत्री का जन्म वैशाली में *नहीं हुआ था।*[160] *द्वितीय अधिनियम 'स्त्री रत्न' से संबंधित था।*[161] इस अधिनियम के अनुसार 'स्त्री रत्न' को वैवाहिक जीवन भोग करने की अनुमति नहीं थी। वह समाज को अलंकृत करने या खुश करने के लिए होती थी, उसे 'नगर शोभिनी' की उपाधि से विभूषित किया जाता था। वह राष्ट्र की सबसे मूल्यवान निधियों में से एक होती थी जो किसी एक विशेष व्यक्ति की संपत्ति नहीं हो सकती थी, उसे एक उच्च सामाजिक पद या वैभव में रखा जाता था। वह संपूर्ण गण से संबंधित होती थी। लोगों में एकता और देश की स्वतंत्रता सुरक्षित रखना उसका पुनीत कर्त्तव्य माना जाता था।[162] लिच्छवियों को विश्वास था कि 'नगर शोभिनी' अपने सौंदर्य की मोहिनी शक्ति द्वारा लोगों में यह भावना बाह्य आक्रमण के संकट काल में भी बनाए रख सकेगी। मातृभूमि की रक्षा के लिए उससे व्यक्तिगत इच्छा की त्याग की आशा की जाती थी। संभवतः इस *महान त्याग के कारण ही नगर शोभिनी 'अंबपाली' बुद्ध द्वारा भी घृणा नहीं पाती* है जबकि दूसरी ओर उनकी धारणा थी कि एक भिक्षु के लिए नारी संपर्क चीते के मुख में जाने के समान है।[163]

'स्त्री रत्न' जैसे अधिनियम बनाने के पीछे क्या उद्देश्य या कारण था, स्पष्ट नहीं कहा जा सकता है। प्रगतिशील विचारों के लिच्छवियों के समाज में इस तरह के नियम का होना, कलंक ही कहा जा सकता है। प्राचीन भारत के अन्य किसी भी समाज में इस तरह के नियम या परंपरा का उल्लेख हम नहीं पाते हैं। इस नियम के कारण अति सुंदर कन्याओं के माता-पिता का दुःखी होना स्वाभाविक है, जो अपनी पुत्री को विवाहित देखने की इच्छा रखते थे। इस तरह हम अंबपाली के पिता महानाम को चिंताग्रस्त पाते हैं।[164] अपने पिता को इस तरह हर समय सोच में डूबा देखकर एक दिन अंबपाली ने पिता के चिंता का कारण जानना चाहा तो उदासमना *महानाम* ने उसे *परिस्थितियों से अवगत* कराते हुए बताया, पुत्री, गणों ने एक अधिनियम बना रखा है कि वैशाली की अति सुंदर कन्याएं गणों द्वारा मनोरंजन करने योग्य ही हैं, और तुम उस तरह

की कन्याओ मे से एक हो' ।[165]

वैशालियो के समाज मे एक पत्नीत्व को सर्वोत्तम माना जाता था। लेकिन समृद्ध और शौकीन समाज मे बहुपत्नीत्व के उदाहरण भी मिल जाते है। अगुत्तर निकाय मे चार सुदर पत्नियो वाले एक सुखी सम्पन्न गृहस्थ का वर्णन मिलता है।[166] वज्जियो के देश के हस्ति ग्राम के श्रेष्ठि उग्ग गृहपति की चार सुदर पत्निया थी।[167] इसी कथा मे उग्ग गृहपति के द्वारा गृह त्याग कर भगवान बुद्ध की शरण जाने पर उसकी चौथी पत्नी को पुनर्विवाह करते पाते हैं जिसमे अनुमान लगाया जा सकता है कि लिच्छवियों ने नारी को विशेष परिस्थिति मे पुनर्विवाह करने का अधिकार दे रखा था[168] परतु सामान्य तौर पर इसे आदर्श नही माना जाता था।

पालि पिटको से ज्ञात होता है कि विवाह सबंध निर्धारण मे मध्यस्थता तथा पारस्परिक वार्ता का आश्रय लिया जाता था, जिसका उपक्रम होता था वर के अभिवाहक द्वारा। वर के माता पिता अपने पुत्र के लिए उपयुक्त कन्या की तलाश मे अपने आदमियों को भेजा करते थे।[169] इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि वर स्वय कन्या को पसद करता था।[170] किंतु कई बार उपयुक्त कन्या न मिलने पर लिच्छवि कुमार लिच्छवि गणो को उसके लिए अनुकूल पत्नी चुनाव करने के लिए अनुरोध भी करते थे, उन्ही के माध्यम से विवाह सबंध बनते थे।[171] प्रेम विवाह का भी उदाहरण लिच्छवियो मे देखने को मिलता है।[172] चुल्लक सेट्ठि जातक (4) मे श्रेष्ठि कन्या अपने दास के साथ भागकर प्रेम विवाह कर लेती है। दासी अपने मालिक के लिए पुत्र उत्पन्न करती पाई जाती है, लेकिन इन दासियो के बच्चे स्वतत्रता नही पा सकते थे।[173] बाद मे इस विषय पर कौटिल्य ने अपना मत रखा कि यदि किसी दासी पुत्री को अपने स्वामी से गर्भ रह जाए तो उस अवस्था मे वह अपनी दासता से मुक्त मानी जाएगी।[174] इस विधान से प्रतीत होता है कि सभवत दासी कन्या अपने स्वामी की पत्नी बन जाती होगी।

लिच्छवियो मे भाई बहन मे विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी या नही यह विवादास्पद है। बौद्ध ग्रथो मे वर्णन मिलता है कि शाक्यवशियो ने वश रक्षा के लिए अपनी भगिनियो (बहनों) से विवाह किया,[175] परतु यह आपत्कालीन व्यवस्था थी, कोई मान्य रिवाज नही। लिच्छवियो की उत्पत्ति कथा, जो अट्ठकथा के परमयज्योतिका कथा[176] मे वर्णित है, मे भाई बहन का विवाह हुआ है। हित नारायण झा ने इससे निष्कर्ष निकाला है कि उनमे भी यह प्रथा प्रचलित थी।[177] लेकिन हमे उत्पत्ति कथा के आधार पर यह निष्कर्ष निकालने मे कठिनाई होती है, इस तरह का उदाहरण तो ऋग्वेद मे यम और यमी के आख्यान मे भी मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद् मे भी विवाह की दार्शनिक व्याख्या दी गई है, आरभ म पुरुष एक था। तत्पश्चात् उसने अपने को दो भागो मे

विभाजित किया।

इस प्रकार नर नारी की सृष्टि का प्रारभ हुआ।[178] क्या इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैदिक समाज मे भाई बहन मे विवाह होने की प्रथा थी ? कतिपय जातको मे भाई बहन मे विवाह के उदाहरण दिए गए हैं।[179अ] परतु ये उदाहरण केवल राजकुलो के हैं और सबधित भाई बहन न तो एक पिता के सतान है और न एक माता की। एक भी ऐसा उदाहरण नही मिलता जिसमे एक ही माता पिता से उत्पन्न भाई बहन मे विवाह हुआ हो। अत इस विषय मे यही कहा जा सकता है कि सभ्य लिच्छवि समाज ने इस प्रथा को कभी प्रश्रय नही दिया होगा। प्राचीन भारत मे यदि भाई बहन के रिश्ते मे विवाह करने की अनुमति दी गई तो मात्र मातुल दुहिता के साथ। बौद्ध लेखक तथा ब्राह्मण धर्म शास्त्रो के लेखक दोनो मातुल दुहिता का पाणिग्रहण करने की कथा का उल्लेख करते है। भगवान महावीर के अग्रज नदि वर्द्धन ने अपनी मातुल दुहिता लिच्छवि राजा चेटक की पुत्री ज्येष्ठा के साथ विवाह किया था।[179ब] जातक कथाओ[180] मे मातुल दुहिता के सग विवाह के प्रसगो के कई उदाहरण देखने मे आते है। इससे केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि लिच्छवियो मे भी अधिक से अधिक मातुल दुहिता के सग विवाह होने की प्रथा रही होगी।

लिच्छवियो मे बाल-विवाह का एक भी उदाहरण नही मिलता, लेकिन बेमेल विवाह के उदाहरण मिलते हैं। वृद्ध बिंबसार का विवाह सिंह सेनापति की बडी पुत्री से सपन्न हुआ हम देखते हैं।[181] लेकिन यह राजकुल की बात थी। सामान्य जन मे ऐसे विवाह को अच्छी दृष्टि से नही देखा जाता था, वेस्सतर जातक (547) मे एक नवयुवती से गाव की महिलाओ ने कहा 'नि सदेह तुम्हारे माता पिता तुम्हारे शत्रु थे, तभी तो उन्होने तुम्हे वृद्ध के गले बाध दिया।' इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज मे बेमेल विवाह का उपहास किया जाता था। सुत्त निपात मे भी वृद्ध विवाह का निषेध किया गया है[182]

लडकियो के विवाह की सर्वोत्तम आयु 16 वर्ष मानी जाती थी। थेरी गाथा के अनुसार इसिदासी का पूर्व जन्म मे सोलह वर्ष की आयु मे विवाह हुआ था।[183] पुन. धम्मदिन्ना, कुण्डलकेश आदि भिक्षुणियो के कुवारी अवस्था मे प्रव्रज्या ग्रहण करने के उल्लेख मिलते हैं।[184] ये भिक्षुणिया लगभग 16 वर्ष अथवा विवेक बुद्धि के उदय होने की वय तक अविवाहित रही होगी। ऐसा अनुमान लगाना अनुचित नही होगा। जातको मे कहीं वर की आयु भी 16 वर्ष बतलाई गई है।[185]

इसी तरह लिच्छवियो के समाज मे नारी के सतीत्व पर बडी कठोरता से ध्यान रखा जाता था। सतीत्व का उलघन करने पर पति द्वारा कठोरतम दण्ड तथा मौत का भी प्रावधान था।[186] इसका यह अर्थ नही कि सतीत्व का उलघन होता ही नही था उनमे भी व्यभिचार के उदाहरण देखने को मिलते हैं। सभवत:

इस दोष को एक सीमा तक बाधने के प्रयत्न मे लिच्छवि लोग वेश्यागमन तथा मनोरजन को बुरा नही मानते थे। युवा लिच्छवि खुलेआम उत्सवो की रात्रि को बागो मे गणिकाओ के साथ मनोरजन करते थे।[187] लेकिन ऐसी स्थिति म यह कैसे आशा की जा सकती है कि उनकी युवा पत्निया घर मे व्यर्थ बैठी रहती हो। पतियो द्वारा इस प्रकार की उपेक्षित वे प्रतिवार मे नारिया कभी कभी अपने लिए अवैध प्रेमी की तलाश कर उसके साथ रग-रेलिया मनाती देखी जाती हैं।[188] इस प्रकार की एक लिच्छवि पत्नी, पति द्वारा बार बार चेतावनी देने पर भी सैकडो बार व्यभिचार कराना स्वीकारती है।[189] पुरुष सत्तात्मक लिच्छवि समाज ने इस दोष को रोकने के लिए जाच का अधिकार पुरुषो को दे रखा था।[190] इस जाच से बचने के लिए दुष्ट चरित्रा नारी कभी कभी प्रव्रज्या लेकर भिक्षुणी बन जाती थी। ऐसी ही एक दुष्ट चरित्रा पत्नी को जान से मार डालने की अनुमति गण से पाने का प्रयत्न एक व्यक्ति करता है, तब पत्नी घर से भागकर प्रव्रज्या ग्रहण कर स्वय को बचा लेती है।[191] सभवत ऐसी ही स्त्रियो के प्रति भिक्षुणियो के मन मे विरक्ति पैदा करने के लिए बौद्ध लेखको ने धर्मग्रंथो व अधिकाश जातक कथाओ मे नारियो का वर्णन दुराचारिणी के रूप म किया है। एक जातक कथा मे वर्णित है कि स्त्री स्वभाव को समझ पाना असभव है, उनका चित्त चचल होता है, जैसा कि बानर का।[192] पति के दुश्चरित्र होने पर या पत्नी के दुश्चरित्र होने पर परिवार म कलह पैदा हो जाती थी तो ऐसी स्थिति मे दोनो ओर स सबध विच्छेद करने का प्रावधान बौद्ध तथा ब्राह्मण दोना व्यवस्थाकारो ने किया है। वशिष्ठ[193] ने चरित्रहीन पति को त्यागकर स्त्री को पुनर्विवाह करने की अनुमति प्रदान की है। कौटिल्य[194] ने पति पत्नी मे निरतर वैमनस्य रहने पर दोनो पक्षो की सहमति से विवाह विच्छेद का विधान किया है। लेकिन अक्सर सभ्रात परिवारो मे पति-पत्नी मे कटुता होने या दुश्चरित्र का पता लग जाने पर भी जल्दी सबध विच्छेद नही होता था।[195]

गणिकाए

वेश्यावृत्ति लिच्छवि समाज मे एक वैध सस्था थी, जैसा कि ऊपर के विवरण से आभास मिलता है। वेश्या गमन को हेय दृष्टि से नही देखा जाता था। वेश्याओ (गणिकाओ) को भी समाज मे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। महान नैतिकता वादी भगवान बुद्ध मे भी वैशाली की प्रसिद्ध गणिका अबपाली का आतिथ्य स्वीकार करते हुए अनादर भाव नही उपजा।[196] गणिकाए सर्वदा बराबरी के आधार पर लोगो मे मिलती थी।[197] वैशाली वासी अपने नगर की गणिका के सौंदर्य पर गर्व करते थे।[198] गणिकाओ के माध्यम से जब मानस का सौंदर्यानुराग प्रबुद्ध एव परितुष्ट होता था। वे महोत्सवो पर राजप्रसाद म लोक

रंजनार्थ सगीत नृत्य के हृदय ग्राही प्रदर्शन करती थी । अबपाली को प्रति रात्रि पचास कार्षापण की आय होती थी जो इतनी अधिक थी कि वह ठाट-बाट से जीवन व्यतीत कर सकती थी ।[199] अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए अबपाली अपने प्रशसको के साथ गाना बजाना करती शोभा यात्रा मे निकलती थी ।[200] उसने कभी अनुभव नही किया कि वह किसी की दासी रखैल है । विवाहित न होते हुए भी वह सामान्य नारी से बढकर सम्मानजनक जीवन व्यतीत करती थी । मगध का राजा बिंबसार उसके रूप सौंदर्य पर इतना मुग्ध हो गया था कि लिच्छवियो मे चल रहे युद्ध को बीच मे छोडकर एक रात चुपके से अबपाली से मिलने चला गया, जहा वह सात दिन तक गुप्त वास पर रहा । उसी समय के ससर्ग से अबपाली से बाद मे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अभय था ।[201]

लेकिन यह चित्र एक राज गणिका का है जिसे समाज मे इतना आदर और यश मिला । क्या यही बात एक सामान्य गणिका के विषय मे कही जा सकती है ? प्राय समाज चादी-सोने के थोडे से टुकडो के बदले शरीर-विक्रय के कर्म को हेय दृष्टि से देखता था । इसे नीच कर्म की सज्ञा दी गई ।[202] नीच घर अथवा गणिका घर[203] और दुरित्थ कुभदासी[204] सदृश शब्दो से यही अर्थ प्रतिभासित होता है कि वेश्या को भद्र समाज नही मिलता था ।

शिक्षा

लिच्छवि शिक्षा मे काफी रुचि रखते थे । युवा लिच्छवियो को काफी दूरस्थ स्थानो पर भी पढने के लिए भेजा जाता था । महाली[205] नामक लिच्छवि तक्ष-शिला[206] जैसे विश्व प्रसिद्ध शिक्षा केंद्र मे शिक्षा ग्रहण करने गया था । शिक्षा प्राप्त करने के उपरात वैशाली लौटकर उसने पाच सौ लिच्छवियो को शिक्षा दी । फिर ये पाच सौ लिच्छवि शिक्षा प्राप्त कर पुन देश के विभिन्न भागो मे पढाने के लिए गए ।[207] शिक्षा का प्रचार सारे देश मे था । वैशाली भी उनमे से एक प्रमुख *शिक्षा का केंद्र था ।[208] लिच्छवि लोग विहारो तथा सघारामो मे* भगवान बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए एकत्र होते थे ।[209]

लिच्छवि धर्म और दर्शन पर बहस करने म इतना अधिक दिलचस्पी लेते थे कि उन्होने भगवान बुद्ध के लिए कूटागारशाला ही बनवा दी थी ।[210] बौद्ध सिद्धि विहारिक साधारणतया विनय, गाथाओ, जातक कथाओ, प्रार्थनाओ, मूलतत्वो और बौद्ध दर्शन मे प्रवीण होते थे, और इस पर भगवान बुद्ध मे तर्क करते थे । ह्वेन त्साग ने भी लिच्छवियो की शिक्षा मे गहरी रुचि लेने की प्रशसा की है ।[211]

नारी भी शिक्षा क्षेत्र मे पीछे नही रही । नाच प्रिय गाना[212] उनम काफी उच्चकोटि का था । गणिकाए इनमे विशेष रुचि लेती थी । चित्रकला[213] उनका दूसरा प्रिया विषय था ।

लिच्छवियो मे शिल्प ज्ञान भी काफी विकसित था।[214] भिक्षु भी भवन निर्माण का निरीक्षण कार्य सभालते थे जो कि भवन निर्माण मे विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किए बिना सभव नही था। उनमे से कुछ अपने का श्रेष्ठ इजीनियर समझते थे। वैशाली के सुदर भवनो का जातको मे चित्रण पढकर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि लिच्छवियो मे कितने श्रेष्ठ भवन निर्माणकर्ता थे। उन्होने न केवल विशाल, सुदर भवन, स्तभ, चैत्य, विहार व मदिरो[215] आदि से नगर को सजाया, बल्कि खूबसूरत पार्कों व बगीचो[216] तथा तालाबो[217] से भी वैशाली नगरी को सजाया था। सात हजार सात सौ सात राजाओ मे प्रत्येक के पास एक एक भवन[218] के साथ खूबसूरत पार्क व बगीचा तथा कमल के सरोवर[219] थे। इस तरह लिच्छवि न सिर्फ योद्धा ही थे बल्कि वे बहुत अच्छे शिल्पकार भी थे।

शौकीन प्रवृति के लिच्छवियो के भडकीले सुदर वस्त्रो[220] के लिए वैशाली मे निपुण दर्जियो का होना आवश्यक था। स्वर्ण, मणि तथा बहुमूल्य पत्थरों[221] का बडे पैमाने पर उपयोग करने की इच्छा रखने वाले लिच्छवियो की इच्छा पूर्ति करने के लिए अनुभवी स्वर्णकारो और जौहरियो का वैशाली मे होना आवश्यक था। वे लोगो के लिए न केवल आभूषण तैयार करते थे, बल्कि रथो, हाथियो, भवनों तथा पालकियो की साज सज्जा के लिए भी आवश्यक वस्तुए तैयार करते थे।[222]

इसी तरह लिच्छवि धर्नुविद्या[223] सीखने मे भी रुचि लेते थे जिसका प्रयोग युद्ध मे शत्रुओ से लडने तथा आखेट करने म होता था। वे श्रेष्ठ आखेटक[224] थे और साधारण कुत्तो[225] की सहायता से महावन मे आखेट करते थे। हाथियो को अभ्यास कराना निम्नकोटि के कार्यों मे गिना जाता था। वज्जि पुत्रो का एक बहुत विलक्षण परिवार वैशाली मे इस कार्य म लगा था।[226] सुदर बैलगाडिया, पालकियों, धनुष तथा तीरो आदि को बनाने के लिए दक्ष और अनुभवी शिल्पियों की माग रही होगी जो बिना किसी उचित प्रशिक्षण के सभव नही था।

ललित विस्तार से ज्ञात होता है कि बच्चो की प्रारभिक शिक्षा देने वाली छोटी पाठशाला को 'लिपिशाला' कहते थे। इनके दारकाचार्य बालको को लिखना व गिनती गिनना सिखाते थे। इनमे कन्याए भी शिक्षा पाती थी।

महावग्ग मे दो प्रकार के अध्यापको का उल्लेख है: उपाध्याय और आचार्य[227]। बुद्ध घोष की टीकानुसार 'उपाध्याय' वे अध्यापक कहलाते थे जो 10 वर्ष या इससे अधिक काल से भिक्षु रहे हो और 'आचार्य' वे जो 6 वर्ष या उससे अधिक काल से भिक्षु रहे हो। उपाध्याय विद्यार्थियों को धर्म-ग्रथ पढाते थे और आचार्य उनके जीवन और आचरण की देख भाल करते थे। उन्हें 'धर्माचार्य' भी कहा जाता था। ख्याति प्राप्त आचार्यों को दिशा प्रमुख आचार्य कहा जाता था। दिशा प्रमुख आचार्यों की समाज मे बडी प्रतिष्ठा थी और उनकी पाद सेवा

सैकडो शिष्य करते थे। वाराणसी और तक्षशिला के प्रमुख आचार्यों की कीर्ति दूर दूर तक थी। वैशाली के कूटागारशाला तथा आम्रवन मे बौद्ध शिक्षा दी जाती थी।[228] इन बौद्ध विहारो मे भिक्षुओ को आध्यात्मिक ज्ञान के साथ साथ लौकिक विषयो तथा शिल्पो की शिक्षा प्रदान करने की भी व्यवस्था थी।[229]

समाज मे अध्यापकों को उनकी सेवा के लिए उच्च सम्मान मिलता था। उन्हें अच्छा शुल्क भी मिलता था। समृद्ध परिवारो से सबद्ध विद्यार्थी साधारणतया अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् एक हजार कर्षापण शुल्क के रूप म देते थे।[230]

खानपान

इस क्षेत्र मे कई प्रकार के चावल, दाल, खाने वाले तेल, सब्जिया और फल की उपज होती थी। अत यही उस युग म पूर्व भारत के लोगो का मुख्य भोजन था। बौद्ध युग मे धान की अनेक किस्मो की खेती पूर्व भारत म होती थी। पालि पिटक मे सालि (शालि), वीहि (व्रीहि) तथा तुडुल किस्मो के धान के उल्लेख मिलते है,[231] पर गृहसूत्रो मे मात्र व्रीहि का।[232] पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी मे शालि, व्रीहि और महा व्रीहि का उल्लेख किया है।[233] जिससे प्रतीत होता है कि व्रीहि की दो उप किस्म थी, एक तो वह जिसका उपयोग उच्चवर्ण के लोग करते थे, और दूसरी वह जिसका उपभोग जनसाधारण करता था। पतजलि[234] ने शालि की बडी प्रशसा की है और सुश्रुत[235] ने महाशालि की। शालि मे रक्तशालि, कमल शालि महा शालि और गध शालि आदि किस्मो के चावल होते थे।[236] ह्वेन त्साग को सभवत शालि अथवा महा शालि चावल का भात नालदा मे खाने को मिला था। उनमे सुगधि थी। इस चावल को प्राय धनी मानी व्यक्ति ही खाया करते थे।[237] *आज भी नालदा क्षेत्र का बासमती चावल काफी प्रसिद्ध है। पाणिनि ने हायन,* षष्टिका और नीवार का भी उल्लेख किया है जो सभवत धान की ही उप किस्मे थी। पाणिनि ने गोधूम और गवेधुका का भी उल्लेख किया है।[238]

दाल की जातियो मे कलाय (मटर), मुग्ग (मूग), मास (मसूर), व कोलत्थि (कुलथी घोड या चना) आदि प्रमुख थी।[239] तेलो मे सरसो अलसी व तिल का प्रयोग होता था।[240] सब्जियो मे कमल ककडी, लौकी, कोहडा (सीता-फल), बैगन, ककडी, खीरा, मूली आदि मुख्य थी।[241] फल व दूध भी मनुष्य का प्रमुख आहार था। आम, केला, जामुन, आमलक, बेदाना आदि का प्रयोग होता था।[242] *बौद्ध साहित्य मे दूध के साथ दही, मक्खन तथा घी का उल्लेख प्रिय* आहारो के रूप मे मिलता है[243]

भात के लिए पालि मे भत्त अथवा भक्त शब्द मिलते हैं।[244] पाणिनि ने इसे ओदन की भी सज्ञा दी है।[245] सामान्यत यह दाल और सब्जी के साथ खाया जाता था।[246] इस काल मे यवागू भात बहुत ही प्रिय भोजन था।[247] इसे यव अथवा

भात से बनाया जाता था। भारत के पूर्वी इलाकों में आज भी यवाग्र भात निर्धन जनता का आहार है। यवाग्र भात तैयार करने के लिए रात्रि में भात और पानी मिलाकर रख दिया जाता है जिसे प्रातः सरसों का तेल, इमली, मिर्च और नमक मिलाकर खाया जाता है।

गरीब जनता का प्रमुख आहार सत्तू भगवान बुद्ध के समय बहुत खाया जाता था।[248] पाणिनि के अनुसार लोग सत्तू को पानी में मिला कर खाते थे।[249] उदमन्थ या उदकमन्थ शब्द से विशेष प्रकार के सत्तू का बोध होता है जिसे भुने हुए चावल से बनाया जाता है।[250] आजकल इसे भुजिया का सत्तू कहते हैं। 'तिलोदक' खाद्य पदार्थ[251] को लोग बड़े चाव से खाते थे। तिल-चावल को एक साथ पका कर इसे बनाते थे। मसाले का भी प्रयोग होता था। तेल नमक के साथ पिप्पली नामक मसाला प्रयोग में लाया जाता का था।[252]

'खाजा' के लिए पिट्ठखज्जक शब्द मिलता है। सारिपुत्र को खाजा अत्यधिक प्रिय था, पर उन्होंने इसे न खाने का प्रण कर लिया, क्योंकि खाजा उनकी जिह्वा-लोलुपता को जागृत कर देता था।[253] ब्रह्मछत्त जातक (336) में वर्णन मिलता है कि राजा ने एक तपस्वी का सत्कार यवागु और पिट्ठखज्जक से किया। पाणिनि ने पलल नामक सुस्वादु मिष्टान्न का उल्लेख किया है, जिसे तिल के चूर्ण और चीनी अथवा गुड़ के मिश्रण से बनाया जाता था।[254] इसका आधुनिक रूप तिल-कूट है। पाणिनि ने पिष्टक का भी उल्लेख किया है।[255] पिष्टक चावल की लपसी से बनता था और आज भी पूर्वी भारत की ग्रामीण जनता इसे पीठा के नाम से पुकारती है।

प्रागैतिहासिक युग का मनुष्य मांसाहारी था। वैदिक युग में भी आर्य मांसाहारी थे। बुद्ध के समय भी मांसाहारी का प्रचलन काफी अधिक था। वैशाली में बहुसंख्या में तालाब व नदियों से मछली, गावों व महावन से जानवर[256] व चिड़िया मिलती थी। लिच्छवियों में शाकाहारी व मांसाहारी के बीच विभाजन रेखा खींचना कठिन है। बौद्ध भिक्षु भी गृहस्थों द्वारा प्रदत्त मांस स्वीकार कर लेते थे।[257] भगवान बुद्ध भी मांस स्वीकार कर लेते थे।

एक बार जैन साधुओं ने इस बात का घोर विरोध किया। सिंह सेनापति[258] ने भगवान बुद्ध को भोजन के लिए न्योता दिया और मांस सहित भोजन कराया। जैन साधुओं ने इसका घोर विरोध यह कह कर किया कि तथागत जानबूझ कर अपने लिए बनाए मांस को खाते हैं। बौद्ध ग्रंथों में भी मांस मछली का भोजन निषिद्ध नहीं था।[259] केवल कुछ आदमी इससे घृणा करते थे। लेकिन मांसाहारी व्यक्ति से नहीं।[260] किसी समय जैनी लोग भी इसे खाते रहे थे।[261] ब्राह्मण लोगों में भी मांस के साथ चावल खाने का विशेष मोह था।[262] मछली भात बहुत स्वादिष्ट भोजन माना जाता था।[263] पालि निकाय में गो घातक, मेष घातक,

अज घातक, शूकर घातक, मृगलुब्धक, शाकुनिक तथा हत्यागृहो के उल्लेख[264] से हम इस निर्णय पर पहुचते है कि उस समय मासाहार के व्यापक प्रचार के फलस्वरूप ही अनेक पेशेवर जातिया का प्रादुर्भाव हुआ जो पशु पक्षियों को पकडने, मारने तथा मास विक्रय के द्वारा अपना जीविकोपार्जन करते थे।

वे निगम तथा नगर के बाजार मे विक्रय के लिए शकटो म भर कर मास ले जाते थे।[265] मृग मास भी खूब खाया जाता था। मृग का आखेट करने वाले लोग मृग लुब्धक[266] कहलाते थे। शूकर मास खाने वालो की सख्या न्यून नही जान पडती। पालि निकाय म शूकरिक अथवा शूकर घातक का उल्लेख है।[267] शूकर मास की गणना उत्तम दक्षिणा सामग्री मे की गई है।[268] महापरि निब्बान सुत्त के अनुसार भगवान बुद्ध ने पावा मे चुद कर्मार पुत्र के घर शूकर मार्द्दव खाया।[269] जातक कथाओ के अनुसार लोग कबूतर, हस, क्रौंच, मयूर, काक तथा मुर्गे का भी मास खाते थे।[270] जातक कथाओ से यह भी विदित होता है कि गोध तथा सर्पो को भी मार कर लोग खाते थे।[271] यद्यपि ये धर्मशास्त्रो मे भक्ष्य नही माने गए हैं।

लिच्छवियो के समाज म मद्यपान भी बुरा नही माना जाता था। जातको मे मधुशाला के वर्णन उपलब्ध है जहा पीने वालो की भीड लगी रहती थी।[272] लिच्छवि लोग गणिकाओं के साथ रगरेलिया मनाते हुए सुरा[273], मैरय (मेरय)[274], वारुणी[275], शिधु[276], सतय[277] तथा अन्य प्रकार[278] के मादक पेय का उपभोग खुलकर करते थे। अगर जातको[279] पर विश्वास किया जाए तो औरतें और तपस्वी भी इन मादक पेयो को लेते हुए हर्ष अनुभव करते थे। कभी कभी इसे उचित मात्रा से अधिक पी कर लडखडाते थे।[280] सुरापान के लिए मधुशाला मे सपत्नीक भी जाते थे।[281] पालि तथा जैन ग्रथो स ज्ञात होता है कि लोग उत्सव के दिन जी भर कर खाते पीते और आनदोल्लास मनाते, जिसम मद्यपान का प्रमुख स्थान होता था।

एक उत्सव का तो नाम ही सुरानक्षण (सुरानक्खत) था, जिसकी विशेषताए थी, अनियत्रित सुरापान, भोजन तथा नृत्य सगीत।[282] सुरानक्षण म सर्वसाधारण का तो कहना ही क्या, तापस लोग भी अपना नियत्रण खोकर सुरापान करते थे।[283] बौद्ध और जैन तथा ब्राह्मण लेखको ने यद्यपि समान रूप स पुरोहित वर्ग के लिए इस व्यसन का निषेध किया। विनय के नियमानुसार श्रामणेर तथा भिक्षु के लिए सुरापान वर्जित था।[284] महासुत सोम जातक के अनुसार ब्राह्मण मद्यपान को दुष्कर्म मानते थे।[285] धर्म शास्त्र मे ब्राह्मण के लिए सुरापान का सर्वथा निषेध किया गया[286], परतु क्षत्रिय और वैश्य के लिए नही।[287] इस तरह ब्राह्मण, श्रमण, निर्ग्रंथ तथा अन्य तापस और सभी वर्ग के ब्रह्मचारी मद्यपान से दूर रहे, फिर भी यह साधिकार नही कहा जा सकता कि ब्राह्मण समुदाय इस व्यसन से

सर्वथा मुक्त था।

उपर्युक्त उदाहरणो से यह कहना स्वाभाविक लगता है कि तत्कालीन समाज मे मद्यपान का वही स्थान था जो आज पाश्चात्य देशो तथा महानगरीय समाज मे है।

सामाजिक जीवन

लिच्छवि देखने मे अति सुदर, स्वस्थ और बुद्धिमान होते थे। विभिन्न रगो मे खूबसूरत चमकीले कपडे पहनने के शौकीन थे।[288] विभिन्न अवसरो, मेलो या किसी अतिथि के आगमन पर ही नही उन्हे नित्य चमकीले कपडे पहनने का शौक था।[289] सासारिक मोह माया से विमुख भगवान बुद्ध भी उनको इन सुदर रगीन वस्त्रो मे देखकर टकटकी लगाकर देखते थे और उनके सौंदर्य की तुलना तावतिंस (तैंतिस) देवताओ से करते थे।[290]

लिच्छवियो के कई कुल थे।[291] प्रत्येक कुल अपनी पृथक पहचान के लिए प्रतीकात्मक रगविशेष प्रयोग मे लाता था। बौद्ध साहित्य मे हमे एक ऐसा ही विवरण उपलब्ध है, 'लिच्छवि युवको का रथ, अश्व, लगाम, चाबुक, वस्त्र, अलकार, पगडी, छत्र, तलवार, मणि और जूते सभी नीले रग के है।' इसी तरह दूसरे कुलो के लिच्छवियो के वस्त्र एव उनकी साज-सज्जा पीला, लाल, हरा तथा रग-बिरगे रग की होती थी।[292] उनमे बडी एकता थी।[293] यही एकता उनकी शक्ति का मूल स्रोत थी जिससे तत्कालिक साम्राज्यवादी शक्तिया भयग्रस्त रहती थी। अजातशत्रु, जो अपनी साम्राज्यवादी आक्रमकता के लिए अत्यत प्रसिद्ध था लिच्छवियो से खुले मैदान मे युद्ध करने का साहस नही कर सका।[294] उसे लिच्छवियो को पराजित करने के लिए दस हथकडो का सहारा लेना पडा। उनके एकताप्रिय चरित्र से पुन यह सिद्ध होता है कि लिच्छवि लोग प्राय ऐसे समारोहो का आयोजन किया करते थे जिसमे एक ही कुल के लोग एकत्र हुआ करते थे।[295] ऐसे समारोहो मे कुल के बाहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी आमत्रित किए जाते थे जिन्हे समुदाय हार्दिक धन्यवाद देकर सम्मान प्रदर्शित करता था।[296] किसी के यहा कोई बीमार होता था तो लिच्छवि उसके यहां सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए जाना पुनीत कर्तव्य मानते थे और बीमार के लिए कोई कार्य करने मे हिचकते नही थे।[297]

लिच्छवि अत्यधिक धनी और सपन्न थे। उनके पास स्वर्णमणि तथा अन्य बहुमूल्य पत्थर इतना था कि रथ, घोडे, हाथी और पालकी को भी इन से सजाकर रखते थे।[298] लेकिन इस सपन्नता के होते हुए भी वे विलासी जीवन नही व्यतीत करते थे। केवल इन वस्तुओ से प्रेम नही था बल्कि शारीरिक श्रम से भी प्रेम था। उनकी वाणी मे स्वाभाविकता रहती थी और पूर्णरूप से विश्वास करने

के योग्य थे।[299] लिच्छवियो के कठिन परिश्रम को देखकर भगवान बुद्ध उनकी बार-बार प्रशसा किया करते थे, 'ओ भिक्षुओ उस ओर देखो, लिच्छवि लोग कैसे लकडी के कुदो का सिरहाना बनाकर सो रहे हैं। वे उत्साही और परिश्रमी हैं तथा धनुर्विद्या मे सक्रिय हैं। वैदेहीपुत्र मगधराज अजातशत्रु उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्यवाही करने का न कोई कारण खोज सकता है और न ही उन्हे पराजित कर सकता है। लेकिन भिक्षुओ, एक समय आएगा जब लिच्छवि लोग बहुत सुकुमार होना चाहेंगे जिससे उनके पैरो व अस्त्र-शस्त्रो मे भी कोमलता आ जाएगी, वे सुदर कीमती वस्त्रो पर आरामदायक सिरहाना लगाकर सूर्य उदित होने के बाद तक सोना चाहेंगे, तब मगधराज अजातशत्रु इसके विरुद्ध आसानी से युद्ध का कारण खोजकर पराजित कर सकेगा।[300] इनकी प्रबल शक्ति को देखकर कौटिल्य[301] चद्रगुप्त मौर्य को परामर्श देता है कि सैनिक शक्ति प्रयोग करने की अपेक्षा इन्हें अपना मित्र बनाकर रखना श्रेयस्कर होगा।'

लिच्छवियो के चरित्र निर्माण म महात्मा बुद्ध का भी प्रभावशाली योगदान रहा। एकपण्ण जातक के अनुसार लिच्छवि कुमारो मे एक बहुत ही निर्दयी और कामुक लिच्छवि कुमार था। उसकी आदत सुधारने म जब उसके माता-पिता तथा सगे-सबधी सफल नही हुए तो अतत वे उसे भगवान बुद्ध के पास ले गए। भगवान बुद्ध के उपदेश से उसका हृदय परिवर्तन हो गया।[302] लिच्छवि अपनी भूल स्वीकार करने के लिए सर्वदा नैतिक रूप से तैयार रहते थे। कभी-कभी लिच्छवियो म अभद्रता एव अशालीनता के भी प्रमाण मिलते हैं। वयोवृद्ध महानाग नामक लिच्छवि यह देखकर आश्चर्य चकित रह गया कि सपन्न घराने के लडके जो नगर मे अपनी धृष्टता और मनमर्जी करने के लिए कुप्रसिद्ध थे, भगवान बुद्ध के प्रति बहुत सम्मान प्रदर्शित कर रहे हैं। महानाग ने यह देखकर टिप्पणी की, 'प्रभु! ये लिच्छवि लडके इतने धृष्ट और अभद्र हैं कि जो कुछ गन्ना, बेर, रोटी, मिष्ठान या चीनी से तैयार किया अन्य खाद्य पदार्थ परिवारो से उपहार स्वरूप भेजे जाते हैं, वे सब लूट का माल समझ कर खा जाते हैं। सभ्रात परिवार की लडकियो तथा महिलाओ पर राह चलते धूल फेंक देते हैं। ऐसे लडके अधोमुख होकर निर्विकार भाव से आपको करबद्ध प्रणाम कर रहे हैं, आश्चर्य है प्रभु।'[303]

लिच्छवि समाज का एक और महत्वपूर्ण चित्र था, आर्थिक क्षेत्र या सभवत प्रशासनिक क्षेत्र मे उनकी दृढ स्थिति, जिसके अनुसार वे तीन वर्गों या श्रेणियो मे विभक्त थे। तिब्बती दुल्व[304] के अनुसार वैशाली तीन स्कधो मे विभाजित था। प्रथम सात हजार स्वर्ण कलश वाले गृह, मध्य नगर मे। चार हजार गृह रजत कलश वाले तथा अतिम मे इक्कीस हजार गृह कास्य कलश वाले थे। इन गृहा मे सामाजिक स्थिति के अनुसार उच्च, मध्य व निम्न श्रेणी (या वर्ग) के

लोग रहते थे। इस विवरण से प्रतीत होता है कि यह विभाजन उनके पदानुसार था। प्रथम लिच्छवि प्रमुखो, द्वितीय उच्च श्रेणी के पदाधिकारी गण जैसे सेनापति, भण्डागारिक आदि के लिए तथा तृतीय अन्य लोगो के लिए थे। इस तरह यह विभाजन आनुवशिक नही प्रतीत होता।

खण्ड जो बाहर से वैशाली में शरणार्थी होकर आया था उसे पदानुसार उसके श्रेणी मे परिवर्तन किया गया।[305] लेकिन अन्य प्रदेशो की भाति लिच्छवियो मे उच्च सामाजिक भेद तथा वर्ग विशिष्टता का निर्वाह था। एक जातक कथा[306] के अनुसार एक नापित पुत्र एक लिच्छवि कन्या के सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गया और पिता से उसे पाने की इच्छा व्यक्त की। उसके पिता ने कहा, 'पुत्र, तुम हीन जन्मा नापित पुत्र हो और अनुरक्त हो गए जाति सपन्ना, क्षत्रिय दुहिता लिच्छवि कुमारी पर, यह तुम्हारे उपयुक्त नही है, अत उसे भूल जाओ। मैं तुम्हारे लिए सजातीय तथा सगोत्र कन्या का प्रबध करूगा।' यद्यपि महात्मा बुद्ध जातिवाद समाप्त करने के लिए अपने जीवन भर भरसक प्रयास करते रहे[307] लेकिन सभवत उनके उपदेश भिक्षु सघ के बाहर समाज मे प्रभावशाली नही हो सके। समाज का वर्ग विभाजन यथावत बना रहा।

लिच्छवि अपने मृतक की अत्येष्टि क्रिया पृथ्वी मे गाडकर और खुले मे शव को छोडकर करते थे जिसे जगली जानवर व गिद्ध खा जाते थे।[308]

विनय पिटक[309] के एक उल्लेख स पता चलता है कि लिच्छवियो मे चोरी के मामले होते ही नही थे। राइस डेविड[310] ने लिखा है, 'बौद्ध कालीन गावो मे हमे अपराध की एक भी घटना नही सुनाई पडी।' 'गावो मे छोटा-सा स्वशासित लोकतत्र था।' धान के खेतो के चारो ओर गाव बसे होते थे। पशु किनारे के जगलो मे चरा करते थे। इन जगलो पर गाव वालो का समान अधिकार रहता था।[311] सबसे विचित्र बात यह थी कि अपने खेत पर स्वय कार्य करना लोग गौरव मानते थे, नौकर रखना भारी क्लक तथा नौकरो के द्वारा खेती कराना निंदा की बात मानी जाती थी।[312] दूसरे के खेता मे मजदूरी करने को बाध्य होना दुर्भाग्य माना जाता था इसे सामाजिक पतन समझा जाता था। इस प्रणाली की निंदा की गई है।[314]

लोक महोत्सव और मनोरंजन

लिच्छवि समाज मे निरतर पर्वो का दौर चला करता था जिससे उनका जीवन हर्षोल्लास से परिपूर्ण रहता था।[315] 'कन' और 'सब्बर-त्तिवारो'[316] दो महत्वपूर्ण पर्व थे जिसमे लिच्छवि समुदाय सारी रात्रि उत्सव मे सम्मिलित होता था।[317] सभी सदस्य नाच-गाने मे रुचि लेते थे। गणिकाए भी इसमे सम्मिलित होती थी।[318] भ्रमण करने वाले नर्तक व सगीतकार[319] अपनी कला का प्रदर्शन

करके लोगो मे अतिरिक्त आनद का सचार करते थे। ढोलकिया व शखनाद करने वाले[320] उनका मनोरजन करते थे। इसी तरह जादूगर[321] व अहिगुठिका[322] (सपेरा) अपने अभिनय से उनको विशेष हर्ष प्रदान करते थे। भडकीले वस्त्र पहनकर शोभायात्रा आदि म निकलना समाज म एक आवश्यक गुण माना जाता था। वैशाली की 'नगर शोभनी' अवपाली भी अपने वैभव का प्रदर्शन और जनता का मनोरजन करने के लिए अपने कुछ विशिष्ट प्रशसको को साथ लेकर गाना-बजाना करती शोभायात्रा मे निकलती थी।[323]

वैशाली भर मे फैले विविध प्रकार के सुगधित फूलोफलो से परिपूर्ण किस्म किस्म के बाग व बगीचे लोगो को सवेदनशील बनाते थे।[324] इन खूबसूरत जगहो का भ्रमण करते हुए आदमी आनदविभोर हो उठते, नई कलियो को खिलता देख उसका भी जीवन मधुर मुस्कान से भर जाता था। चिडियो[325] की ची ची से सगीतमय होते बगीचे, सरोवर[326] मे खिले हुए कमल लोगो को घटो अपने आचल मे खडे रहने को विवश कर देते थे। वैशाली म बडी सख्या के सरोवरो[327] तथा नदी की सुविधा होने के कारण नाव खेना तथा तैरना भी युवा लिच्छवियो का एक शौक रहा होगा। पास मे विशाल प्राकृतिक वन 'महावन'[328] के होने से लिच्छवि लोग जानवरो व चिडियो का आखेट[329] करने मे विशेष रुचि लेते थे। हाथी घोडे की सवारी तथा गाडी हाकना[330] जहा उनके लडाकू प्रवृत्ति का परिचायक था वहा एक सीमा तक उन्हे आनदित भी करता था। धनुर्विद्या[331] के वे बहुत अधिक शौकीन थे। धनुर्धारियो के एक बडे समूह म आदमी बर्बर जानवरो के घने वन मे भी मनोरजन कर ही लेते हैं। चित्रकला[332] और बेलबूटे[333] बनाना एक शौक तथा आय का साधन था। लिच्छवि लोग ऐस समारोहो का प्रायः आयोजन किया करते थे जिसम विद्वानो तथा धर्मोपदेशको को आमत्रित किया जाता था, ऐसा करने म उन्हे हार्दिक प्रसन्नता तथा मानसिक शाति मिलती थी।[334]

पालि निकाय से ज्ञात होता है कि उन दिनो महोत्सवो का स्वरूप कई दिनो तक चलने वाले मेलो जैसा हो गया था। दीघ निकाय के अनुसार दर्शको को *मनोरजन के अनेक कार्यक्रमो को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता था, जैसे नृत्य,* गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घडो पर तबला बजाना, समूहगान, लोहे की गोली का खेल, बास का खेल, धोपन, हस्ति युद्ध, अश्व युद्ध, महिष युद्ध, वृषभ युद्ध, बकरो का युद्ध, भेडो का युद्ध, मुर्गो की लडाई, लाठी के खेल, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मार पोट के खेल, सेना और युद्ध की चालें इत्यादि।[335] *मेले मे नट* और इद्रजालिको के नृत्य तथा खेल हुआ करते थे। लोग हसते हसते लोटपोट हो जाते थे।[336] शख फूकने वाले (शख धूमक)[337] तथा भेरी वादक[338] वातावरण को सगीतमय बना देते थे।

32 राहुल साकृत्यायन (सपा), धम्मपद, 80, जातक, 159
33 जातक, 6, पृ 189, 437, वा श अग्रवाल, इडिया एज नोन टू पाणिनि, पृ 234
34 राइस डेविड्स व कारपेंटर (सपा), दीघ निकाय, 1 पृ 78, ट्रेंकनर व चामर्स (सपा), मज्झिम निकाय, 2, पृ 18 फाउसबोल (सपा) जातक, 2 पृ 197
35, ट्रेंकनर व चामर्स (सपा), वही, 2, पृ 18, 46 3, पृ 118, जातक, 2, पृ 79, 3 पृ 376
36 जातक, 3, पृ 405
37 जातक, 4 पृ, 161
38 जातक 3, पृ 281.
39 उवास गदसाओ, 7/184 के अनुसार पलासपुर नगर के निकट पांच सौ आबादी का एक कुमवार ग्राम था
40 जातक, 3, पृ 281
41 जातक, 2, पृ 18, 405, 4, पृ 159, 207,
42 विनय टेक्स (अनु), 2, 170 72, 2, 67, 4, 47
43 इको, लाइफ, पृ 232.
44 जातक, 2, पृ 167, 3, पृ 61, 507.
45 जातक, 1, पृ 43
46 जातक 4, पृ 495
47 जातक, 1, पृ 370, 2 पृ 267, 429, 3, पृ 198 348
48 जातक, 4, पृ 389
49 जातक, 2, पृ 249
50 जातक, 1, पृ 283
51 जातक, 1, पृ 284
52. जातक, 1, पृ 310
53 ज ए सो बे, 1921, भाग 17, 266-67
54 जातक, 1, पृ 283
55 जातक, 1, पृ 284
56 जातक, 2, पृ 167
57. जातक, 2, पृ 248
58 जातक, 5, पृ 417, ट्रेंकनर व चामर्स (सपा) मज्झिम निकाय 1, पृ 79
59 ट्रेंकनर व चामर्स (सपा), मज्झिम निकाय, 2, पृ 152, 183 84, 3, पृ 169, मोरिस व हार्डी (सपा), अगुत्तर निकाय, 2 पृ 85, 3, पृ 385
60 जातक, 4, पृ 200, 376, 390
61 जातक, 4, पृ 390
62. जातक, 3, पृ 233
63 जातक, 4 पृ 276
64 जातक, 4, पृ 390 92
65 बयूलर (सपा), आपस्तंब धर्म सूत्र, 2/1/2/8
66. मनुस्मृति, 3/29

4 व. अभि ग्रं पृ 85-86।
5 वही.
6. जातक, 2, पृ, 36 , 4. पृ 413, 6, पृ 71
7 जातक, 4, पृ, 200, 376, 390, महावश, 4/41
8 सूत्रकृतांग, सै बु ई 45, पृ, 339, योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 113, पो हिस्ट्री, पृ 118, 120
9 ब्यूलर, द ला आफ मनु (आक्सफोर्ड, 1886) × 20-22 एक ही मां बाप से उत्पन्न वे पुत्र जो वैदिक कार्यों (सस्कारों) को नही करते तथा सावित्री सिद्धात पर नही चलते, वे 'व्रात्य' के अन्तर्गत आते हैं फिक्, पृ 7, जौली, 4 मानव धर्मशास्त्र (लण्डन, 1887) × 20-22 सदूर्णानद आर्यों का आदि देश, पृ 218, परिशिष्ट (क)
10 मदनमोहन सिंह, बुद्ध कालीन समाज और धर्म (पटना, 1972) पृ 12
11 दीर्घ निकाय, (श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा सपा) 1, पृ 111
12 मदनमोहन सिंह वही पृ 19
13 वही, पृ 20
14 जातक, 2, पृ 213, 6, पृ 181
15 जातक, 2 पृ 165, 3, पृ 162 163, 293, 4, पृ 276, 5, पृ 68
16 जातक, 2, पृ 15, 4, पृ 15 21, 5. पृ 22, 471
17. जातक, 4, पृ, 207
18 जातक, 3, पृ 401
19 जातक, 3 पृ 219, 5, पृ 127
20 जातक, 2, पृ 200, 6 पृ 170, 182
21 मनोरथपूर्णी (अगुत्तर टीका) 2, पृ 751,
22 ब्यूलर, द ला आफ मनु, (आक्सफोर्ड 1886) ×-20 22, जौली मानव धर्मशास्त्र, (लण्डन, 1887) × 20-22
23 मज्झिम निकाय, ट्रेंकनर और चामस द्वारा सपा) 2 पृ 97 99 महात्मा बुद्ध के मुख से ये वचन निकलते हैं, हे राजन् ! क्षत्रिय, ब्राह्मण वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण हैं, इनमे दो वर्ण (क्षत्रिय, ब्राह्मण) अभिवादन, प्रणामजोली, अग्रासन तथा सेवा के अधिकारी हैं यहां महात्मा बुद्ध द्वारा स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि क्षत्रियो तथा ब्राह्मणों का स्थान समाज में सर्वोपरि है, अन्य जातियो का स्थान उनसे निम्न है
24. जातक 2, पृ 5.
25. आपस्तब धमसूत्र (ब्यूलर द्वारा सपा) (बम्बई सस्कृत सीरीज, 1932) 2/10/26/5
26 अगुत्तर निकाय (मारिस व हार्डी द्वारा सपा), पा टे सो (लण्डन) 3, पृ 37 38 4, पृ 277, अष्टाध्यायी, 1/3/36, 3/2/22
27 जातक, 3, पृ 326
28 कील हार्न (सपा.), पतजली महाभाष्य (बबई), 1/3/72
29 कौटिल्य अथशास्त्र (अनूदित शाम शास्त्री) 2/34
30 जातक, 1, पृ 475,
31 सै. बु. ई 13, पृ 28, दीघ निकाय (राइस डेविड्स व कारपेंटर द्वारा सपा), 1, पृ 51, जातक, 4, पृ 475

32. राहुल साकृत्यायन (सपा), धम्मपद, 80, जातक, 159
33. जातक, 6, पृ 189, 437, वा श अग्रवाल, इडिया एज नोन टू पाणिनि, पृ 234
34. राइस डेविड्स व कारपेंटर (सपा), दीघ निकाय, 1 पृ 78, ट्रेंकनर व चामर्स (सपा), मज्झिम निकाय, 2, पृ 18 फाउसबौल (सपा), जातक, 2 पृ 197
35. ट्रेंकनर व चामर्स (सपा), वही, 2, पृ 18, 46 3, पृ 118, जातक, 2 पृ 79, 3, पृ 376
36. जातक, 3, पृ 405
37. जातक, 4, पृ 161
38. जातक 3, पृ 281.
39. उवास गदसाओं, 7/184 के अनुसार पलासपुर नगर के निकट पास मो आबादी का एक कुम्भकार ग्राम था
40. जातक, 3, पृ 281
41. जातक, 2, पृ 18. 405, 4, पृ 159, 207,
42. विनय टेक्स्ट (अनु), 2, 170-72, 2, 67, 4, 47
43. इर्वो, लाइफ, पृ 232
44. *जातक, 2, पृ 167, 3, पृ, 61, 507,*
45. जातक, 1, पृ 43
46. जातक 4, पृ 495,
47. जातक, 1, पृ 370, 2 पृ 267, 429, 3, पृ 198, 348
48. जातक, 4 पृ, 389
49. जातक, 2, पृ 249
50. जातक, 1, पृ 283
51. जातक, 1, पृ 284
52. जातक, 1, पृ 310
53. ज ए सा बे, 1921, भाग 17, 266-67
54. जातक, 1, पृ 283
55. जातक, 1, पृ 284
56. जातक, 2, पृ 167
57. जातक, 2, पृ 248
58. जातक, 5, पृ 417, ट्रेंकनर व चामर्स (सपा) मज्झिम निकाय 1, पृ 79
59. ट्रेंकनर व चामर्स (सपा), मज्झिम निकाय, 2, पृ 152, 183 84, 3, पृ 169, मोरिस व हार्डी (सपा), अंगुत्तर निकाय, 2 पृ 85, 3, पृ 385
60. जातक, 4, पृ 200, 376, 390
61. जातक, 4, पृ 390
62. जातक, 3, पृ 233
63. जातक, 4, पृ 276
64. जातक, 4, पृ 390 92
65. बधूलर (सपा) आपस्तम्ब धर्म सूत्र, 2/1/2/8
66. मनुस्मृति, 3/29

67. मनु, 10/51-52.
68 मनु, 10, 55,
69 जातक, 4, पृ 383, 390, 5 पृ 429
70 जातक, 3, पृ 41, 179.
71 मनु, 10/56
72 जातक, 6, पृ 156
73 जातक, 4, पृ 379
74 जातक, 6, पृ 156
75 मॉरिस व हार्डी (सपा), अगुत्तर निकाय, 4, पृ 376
76 एंडरसन और स्मिथ (सपा), सुत्त निपात, 1/7/22-23
77. जातक, 3, पृ. 233-35
78 जातक, 4, पृ 201
79 जातक, 5, पृ 110, 337]
80 पाठक (सपा), मनु, 10/48
81 फिक्, सोसल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्टर्न इंडिया इन बुद्ध-टाइम, पृ 322
82 वैशाली एक्सवेशन (1950), पृ
83. जातक, 3, पृ 194-5, 4, पृ 205-303
84 मनु, 10/18
85 जातक, 3, पृ 195, फिक्, वही, पृ 321
86. जातक, 4, पृ 251
87 वही
88 जातक, 1, पृ 356
89 जातक, 3, पृ 452
90 जातक, 1, पृ 310
91 जातक, 4 पृ 40
92. जातक, 1, पृ 292
93 जातक, 3, पृ 230
94 मॉरिस व हार्डी (सपा), अगुत्तर निकाय, 2, पृ 207
95 जातक, 1, पृ 121, 5, पृ 290 92
96 जातक, 1, पृ. 137
97 जातक, 2, पृ 5, जातक 1, पृ 138
98 डी आर चानना, स्लेवरी इन एंशिएंट इंडिया (बबई 1960), पृ 15-18, महाभारत, सभापर्व, 52/4/4-46 मे उल्लेख है कि युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ में नियुक्त 88 000 ब्राह्मण स्नातको को 30 30 दासियो का दान दिया
99 मनु स्मृति (8/413) मनु कहते हैं कि दास बनाने के लिए शूद्रों का क्रय करना चाहिए
100. घोषाल, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ 461 67, इको लाइफ, पृ. 294-93
101. इको लाइफ, पृ. 297

102. जातक में, 39
103. वही, 402.
104. वक ब्रह्म जातक, अरण्य जातक,
105. विदुर पंडित जातक.
106. सेतकेतु जातक
107. मज्झिम निकाय
108. विदुर पंडित जातक
109. मनुस्मृति (8/415)
    ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहज: क्रीत दत्त्रिमउ।
    पैतृको दण्डदासो सप्तैत दास्यो न य ॥
110. नारद स्मृति, 5, 25 28
111. अर्थशास्त्र, 3 13
112. नारद स्मृति, 5, 25-28
113. वही
114. जातक, 4, 200
115. जातक, 382
116. जातक, 421
117. जातक, 354
118. जातक, 39
119. जातक, 289
120. सत्त सोम जातक
121. अर्थशास्त्र, 3, 13
122. जातक, 1, पृ 156-57
123. कटाहक और कलहक जातक में भी उच्च घराने की पुत्री दास के साथ भागकर विवाह करती है
124. जातक, 97
125. जातक, 402, घोषाल, वही, पृ 464 · घोषाल की राय है कि दासों को कोड़े से पीटा और बेड़ी से बांधा जा सकता था बद्योपाध्याय (इको लाइफ 295) टिप्पणी करते हैं कि उनके साथ हिंसा का व्यवहार अवैधानिक नहीं था.
126. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास (मैकमिलन, दिल्ली, 1975), पृ 120
127. दीघ निकाय, पा टे. सो (लन्दन) पृ 60-61, जातक 532.
128. इको मार्कि, पृ 297
129. एपिग्रफ ऐंडी, इंडिका, 10 खण्ड 26 (ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास) पृ 121
130. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, (मैकमिलन, 1975) पृ 121
131. नारद स्मृति viii, 11 13 कभी कभी दासियां दूसरों के भोगसुख के लिए उधार दी जाती थीं अगर एक व्यक्ति बिना उसके स्वामी से पूछे दासी कन्या के साथ विषय भोग कर लेता तो उसे पहले स्वामी को एक दिन के लिए दो पण जुर्माना देना पड़ता

189 भिक्खुनीविभग सघादिसेस 2 पृ 225
190 वही II पृ 225 पेटावत्थुअट्ठकथा (सिमहेलेस ऐडोमन) 1 पृ (124 56), मललसेकेर पृ 780
191 भिक्खुनीविभगसघादिसेस 2 पृ 225
192 *जातक 5 पृ 446*
193 बशिष्ठ धमसूत्र 17/20
194 वही 3/3
195 जातक 4 प 25 3 पृ 351
196 ओल्डनवर्ग बुद्ध (लण्डन 1882) पृ 118 वाशम द वण्डर दैट वाज इडिया (लण्डन 1954) पृ 184 दिवाकर वही पृ 173 मललसेकेर प 943
197 वाशम वही पृ 184
198 वही ओल्डनवर्ग वही पृ 148 इको लाइफ पृ 266.
199 दिवाकर वही पृ 173 इको लाइफ पृ 266
200 दिवाकर वही प 173
201 गॅकहिल वही पृ 64 ला *इण्डोलाजिकल स्टडीज (कलकत्ता 1959) पाट 1 पृ* 202.
202. जातक 3 प 60
203 वही 3 पृ 61 4 पृ 249
204 वही 6 प 228
205 धम्मपद (पुराना सस्करण) पृ 211
206 अल्तेकर एजुकेशन इन एनशिएट इडिया (वाराणसी 1957) प 106 113 तक्ष *शिला रावलपिण्डी से बीस मील की दूरी पर स्थित था यहां के दिशा प्रमुख आचार्यों* की ख्याति बहुत दूर दूर तक थी भगवान बुद्ध के समय यह शिल्प ज्ञान का एक बहुत महत्वपूर्ण केन्द्र था भरत के पुत्र तक्ष इसके सस्थापक थे यह आज के विश्वविद्यालय कालेज की तरह नहीं था देश के सभी भागों से लडके यहा शिक्षा प्राप्त करने आते थे। जबकि उस समय आने जाने के साधन काफी कम और जोखिम भरे थे विद्यार्थी गण विद्वान आचार्यों के पाव के समीप भीड लगाए रहते थे यहा तीनो वेदो व्याकरण दशन और 18 विषयो (शिल्पो) की विशिष्ट शिक्षा दी जाती थी ये 18 विषय निम्न *लिखित थे वाद्य गीत नत्य चित्रकला नक्षत्र कम अश्वशास्त्र वास्तुकला तक्षण* वार्ता पशुपालन व्यापार आयुर्वेद राजस्व परिचालन कानूनी शासन युद्ध कला और धनुर्वेद इद्रजाल क्रीडा मणिरागाकर आदि सपन्न माता पिता भोजन तथा आवास शुल्क के साथ शिक्षा शुल्क भी देते थे परतु निधन छात्र शुल्क देने मे असमथ होने के कारण श्रम के रूप मे गुरु दक्षिणा चुकाते थे शुल्क देने वाले छात्रो को दिन में शिक्षा दी जाती थी और शुल्क न देने वाले छात्रो को रात्रि में शिक्षा दी जाती थी इस तरह निधनता के कारण कोई मेधावी छात्र शिक्षा प्राप्त करने से वचित नहीं रह पाता था ?

फाउसबोल महावग्ग (6 22) से ज्ञात होता है कि तक्षशिला उस समय आयुर्वेद की शिक्षा के लिए बहुत प्रसिद्ध था मगध सम्राट बिम्बिसार के राजवैद्य जीवक ने भी यहीं 7 वष तक रहकर विशिष्ट ज्ञान अर्जित किया था परीक्षा उत्तीण होने के पूव उसे इस विश्वविद्यालय के चारों ओर एक योजन (चार या दो कोस) तक जितनी वनस्पतियां

उगी थी, उन सबकी पहचान करनी पड़ी थी,
तक्षशिला उच्च शिक्षा के द्र था, अत वहा अध्ययनार्थ जाने वाले छात्रो की उम्र 16 वर्ष बतलाई गई है (मदनमोहन बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ 93)

207 फाउसबोल, धम्मपद (पुराना सस्करण), पृ 211
208 कुरुलकलिग जातक, क्रम 301, मिथिला, पृ 137
209 अगुत्तर निकाय पा रे सो, भाग 2, पृ 190 4, भाग 3, पृ 75-78 167 68, सयुक्त निकाय भाग 3, पृ 389 90
210. राइस डविड्स् (सपा), सुमगल विलासिनी, पा टे सो (लण्डन, 1887), पार्ट 1, पृ 309 लेज रिकार्ड आफ द बुद्धिष्ट किंगडम (चीनी यात्री फाह्यान का यात्रा विवरण) आक्सफोर्ड, 1886) पृ 72
211 बील, ट्रैवेल आफ ह्वेन-त्साग (कलकत्ता, 1953), भाग 3 पृ 308
212 फाउसबोल, धम्म पद (पुराना सस्करण) पृ 391, फिक, पृ 286
213 बुद्धिष्ट इडिया, पृ 41
214 ललित विस्तार (बि इ सी), अध्याय 3 पृ 33
215 सुमगल विलासिनी (बर्मी सस्करण) पृ 103 5, डायलाग्स, भाग 2, पृ 80, विनय-टेक्स पार्ट 2, पृ 171 ज ए सो ब (1921), पृ 267
216 विनय टेक्स, पार्ट 2, पृ 171, ज ए सो ब (1921), प 367
217 वैशाली इक्वेशन 1950 पृ 1, विनय टेक्स, पार्ट 2, पृ 171
218 विनय टेक्स, पार्ट 2 पृ 171
219 वही
220 सें बु ई, भाग 10 पृ 31, अगुत्तर निकाय, पा रे सो भाग 3 प 239
221 ललित विस्तर (सपा हेफमन्न), भाग 1 पृ 21, रोमाटिक लीजेंड आफ शाक्य बुद्ध (बील द्वारा अनु) पृ 28
222 वि च ला, क्षत्रिय क्लान (1922), पृ 63
223 अगुत्तर निकाय पा टे सो, भाग 3, पृ 76, मलालसेकेर, पृ 780 ज ए सो ब, (1921), भाग 17, पृ 268, मुकर्जी, हिंदू सिवलाइजेशन, बबइ, 1957), पार्ट 2, पृ. 243
224 अगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3, पृ 76, ज प्रो ए सो ब, (1921) भाग 17, पृ 267, मलालसेकेर, पृ 779-80
225 अगुत्तर निकाय, वही, ज. ए सो ब (1921), भाग 17, पृ. 268
226 श्रीमती राइस डेविड्स् (अनु), सांग्स आफ द ब्रेदन, पृ 106
227 महावग्ग, (फाउस बोल), 5, 4, 2,
228 राधाकुमुद मुकर्जी, एंशिएट इडियन ऐजुकेशन, पृ 443
229 वही
230 एको लाइफ, पृ 265
231 मज्झिम निकाय (सपा), ट्रेंकनर और चामर्स) पा टे सो (लण्डन, 1912), भाग 1, पृ 57, 3 पृ 90, अगुत्तर निकाय (सपा — मारिस तथा हार्डी) पा टे सो (लण्डन, 1888 1900) भाग 5, पृ 213, जातक, 1, 429, 484 2, पृ 110, 135, 378, 4, पृ 276 6, पृ 367 इको लाइफ, पृ 237 ओमप्रकाश, फूड एण्ड ड्रिंक इन एशिएंट

189 भिक्खुनीविभग सपादिसेस, 2, पृ 225
190 वही, 11, पृ 225, पेटावत्युअट्ठकथा (सिमहेलेस ऐडोमन), 1 पृ. (124 56); मल्लसेकेर, पृ 780
191 भिक्खुनीविभगसघादिसेस, 2, पृ 225
192 जातक, 5, पृ 446.
193 वशिष्ठ धर्मसूत्र, 17/20
194 अर्थ, 3/3
195 जातक 4, पृ 25, 3, पृ 351.
196 ओल्डनबर्ग, बुद्ध (लण्डन, 1882), पृ 118, बाशम, द वण्डर दैट वाज इण्डिया, (लण्डन, 1954), पृ 184, दिवाकर, वही, पृ 173, मललसेकेर, पृ 943
197 बाशम, वही, पृ 184
198 वही, ओल्डनबर्ग वही, पृ 148, इको लाइफ, पृ 266.
199 दिवाकर, वही, पृ 173, इको लाइफ, पृ 266
200 दिवाकर, वही, पृ 173
201 गॉकहिल, वही, पृ 64, ला. इण्डोलाजिकल स्टडीज (कलकत्ता, 1959), पार्ट 1, पृ 202.
202 जातक, 3, पृ 60
203 वही, 3, पृ 61, 4, पृ 249
204 *वही, 6, पृ 228*
205 धम्मपद (पुराना सस्करण), पृ 211
206 अल्तेकर, एजुकेशन इन एनशिएट इण्डिया (वाराणसी, 1957), पृ 106 *113* 'तक्षशिला रावलपिण्डी से बीस मील की दूरी पर स्थित था यहां के दिशा प्रमुख आचार्यों *की ख्याति बहुत दूर दूर तक थी भगवान बुद्ध के समय यह शिल्प ज्ञान का एक बहुत* महत्वपूर्ण केन्द्र था भरत के पुत्र तक्ष इसके सस्थापक थे यह आज के विश्वविद्यालय कालेज की तरह नही था देश के सभी भागों से लडके यहां शिक्षा प्राप्त करने आते थे। जबकि उस समय आने जाने के साधन काफी कम और जोखिम भरे थे विद्यार्थी गण *विद्वान आचार्यों के पाव के समीप भीड लगाए रहते थे यहां तीनों वेदों व्याकरण,* दर्शन और 18 विषयो (शिल्पो) की विशिष्ट शिक्षा दी जाती थी ये 18 विषय निम्नलिखित थे, वाद्य, गीत, नृत्य, चित्रकला नक्षत्र कर्म, अर्थशास्त्र, वास्तुकला, तक्षण, वार्ता, पशुपालन, व्यापार, आयुर्वेद, गजस्व परिचालन, कानूनी शासन, युद्ध कला और धनुर्वेद, इन्द्रजाल, *क्रीडा, मणिरागाकर आदि सपन्न माता पिता भोजन तथा आवास* शुल्क के साथ शिक्षा शुल्क भी देते थे परतु निर्धन छात्र शुल्क देने में असमर्थ होने के कारण श्रम के रूप मे गुरुदक्षिणा चुकाते थे शुल्क देने वाले छात्रों को दिन मे शिक्षा दी जाती थी और शुल्क न देने वाले छात्रों को रात्रि मे शिक्षा दी जाती थी इस तरह *निर्धनता के कारण कोई मेधावी छात्र शिक्षा प्राप्त करने से वचित नहीं रह पाता था ?*

फाउसवोल महावग्ग (6,22) से ज्ञात होता है कि तक्षशिला उस समय आयुर्वेद की शिक्षा के लिए बहुत प्रसिद्ध था मगध सम्राट बिम्बिसार के राजवैद्य जीवक ने भी यहाँ 7 वर्ष तक रहकर विशिष्ट ज्ञान अर्जित किया था परीक्षा उत्तीर्ण होने के पूर्व उसे इस *विश्वविद्यालय के चारों ओर एक योजन (चार या दो कोस) तक जितनी वनस्पतिया*

लगी थीं, उन सबकी पहचान करनी पड़ी थी,
तक्षशिला उच्च शिक्षा केंद्र था, अतः वहां अध्ययनार्थ जाने वाले छात्रों की उम्र 16 वर्ष बतलाई गई है (मदनमोहन बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ 93).

207 फाउसबोल, धम्मपद (पुराना संस्करण), पृ 211

208 कुल्लकलिंग जातक, क्रम 301, मिथिला, पृ 137.

209 अंगुत्तर निकाय पा टे सो, भाग 2, पृ 190-4, भाग 3, पृ 75-78, 167 68, संयुक्त निकाय भाग 3, पृ 389-90

210. राइस डविड्स् (सपा), सुमंगल विलासिनी, पा टे. सो (लन्दन, 1887), पार्ट 1, पृ 309 लज रिकार्ड आफ द बुद्धिष्ट किंगडम (चीनी यात्री फाह्यान का यात्रा विवरण) आक्सफोर्ड, 1886) पृ 72

211 बील, ट्रैवेल आफ ह्वेन-त्सांग (कलकत्ता, 1953), भाग 3, पृ. 308

212 फाउसबोल, धम्म पद (पुराना संस्करण) पृ 391, फिक्, पृ 286.

213 बुद्धिष्ट इंडिया, पृ 41

214 ललित विस्तार (बि इ सो), अध्याय 3 पृ. 33

215 सुमंगल विलासिनी (बर्मी संस्करण), पृ 103-5, डायलाग्स, भाग 2, पृ 80, विनय-टेक्स, पार्ट 2, पृ 171, ज ए सो ब (1921), पृ 267

216 विनय टेक्स, पार्ट 2 पृ 171, ज ए सो. ब (1921), पृ 367

217 वैशाली एक्सकेवेशन 1950, पृ 1, विनय टेक्स, पार्ट 2, पृ 171

218 विनय टेक्स, पार्ट 2, पृ 171

219 वही

220 सै बु ई, भाग 10, पृ 31, अंगुत्तर निकाय, पा. टे. सो भाग 3 पृ 239

221. ललित विस्तर (सपा हेफमन्न), भाग 1, पृ 21, रोमांटिक लीजेंड आफ शाक्य बुद्ध (बील द्वारा अनु) पृ 28

222. वि च ला, क्षत्रिय क्लान (1922), पृ 63

223. अंगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3, पृ 76, मलालसेकेर, पृ. 780, ज ए सो. ब, (1921), भाग 17, पृ 268, मुकर्जी, हिंदू सिवलाइजेशन, बंबई, 1957), पार्ट 2, पृ. 243

224 अंगुत्तर निकाय, पा टे. सो, भाग 3, पृ 76, ज. प्रो ए सो ब, (1921) भाग 17, पृ 267, मलालसेकेर, पृ 779-80

225. अंगुत्तर निकाय, वही, ज. ए सो ब (1921), भाग 17, पृ. 268

226. श्रीमती राइस डेविड्स् (अनु), साम्स आफ द ब्रेदेन, पृ. 106

227 महावग्ग, (फाउस बोल), 5, 4, 2,

228 राधाकुमुद मुकर्जी, एंशिएंट इंडियन ऐजुकेशन, पृ. 443

229 वही

230 एकी लाइफ, पृ. 265

231 मज्झिम निकाय (सपा), ट्रेंकनर और चामर्स) पा टे सो (लन्दन, 1912), भाग 1, पृ 57, 3 पृ 90, अंगुत्तर निकाय (सपा —मारिस तथा हार्डी) पा टे सो (लन्दन, 1888-1900), भाग 5, पृ 213; जातक, 1, 429, 484, 2, पृ 110, 135, 378, 4, पृ 276, 6 पृ 367

इडिया (दिल्ली 1961), पृ 58-60
232 आश्वलायन-गृह्य सूत्र, (सें ब ई, 29), 1/17/2, सांख्यायन गृह्य सूत्र, 1/24/3, 1/28/6
233 अष्टाध्यायी, 5/2/2, 6/2/38
234 महाभाष्य (सपा) कील होन, बबई, (1892-1909) 1/19
235 सूत्र स्थान, 46/7.
236 फूड एण्ड ड्रिक इन एंशिएट इडिया (1961) पृ 38-60
237 मील, लाइफ आफ ह्वेन त्साग, पृ 109
238. अष्टाध्यायी, 3/1/48, 3/3/48, 5/1/90, 4/3/136
239 मज्झिम निकाय (ट्रेंकनर और चामर्स द्वारा सपा), 1, पृ 57 80, 3, पृ 90, अ निकाय सपा मारिस व हार्डो), 4, पृ 103, सुत्त निपात (सपा एन्डरसन और स्मिथ), 3/10, जातक, 1, पृ 429, 2, पृ 74, इको लाइफ पृ 237, ओमप्रकाश, वही, पृ 61
240 ओमप्रकाश, वही, पृ 71
241. इको लाइफ, पृ 237 ओमप्रकाश, वही, पृ 73 अष्टाध्यायी, 4/1/45 4/3/165, 8/4/5 जातक, 5, पृ 37
242 इको लाइफ, पृ 237 ओमप्रकाश, वही पृ 71
243. अगुत्तर निकाय (सपा मारिस व हार्डी) 2, पृ 95 अष्टाध्यायी, 2/4/14, 4/3/160 412/18
244 तकल जातक, अष्टाध्यायी, 4/4/100
245 अष्टाध्यायी, 4/4/60
246 जातक, 6, पृ 372
247 विसवत जातक, 69
248 सत्तुभस्त जातक, (402)
249 अष्टाध्यायी, 6/3/59
250. वही, 6/3/60
251 कच्चानिक जातक, 417
252 मोघ जातक, 417.
253 विसवत जातक, 69
254 अष्टाध्यायी, 6/2/128
255 वही, 4/3/14
256 जातक, 12, 21, 50, 142 144 196, 199, 254, 277, 362, 402, 420
257 महावग्ग, 6/23/10-15
258 तेलोवाद जातक, 246
259 विनय, 1, 80, सुत निपात, 11 2 3-9, विनय 4, 93 जातक, 331 418 436
260 वही
261 ओमप्रकाश, वही, पृ 65
262 जातक, 545 मतरभत जातक, 19
263. जातक, 292.

264 मज्झिम निकाय, 1, पृ 364, 2, पृ 192, द बुक आफ किड्रेड्ग 2, पृ 171 , द बुक आफ ग्रेडुअल सेइग, 1, पृ 229
265 मस जातक (315)
266 जातक, 3 पृ 49
267 सयुक्त निकाय (सपा मिसेज राइस डविड्स) पा टे सो (लण्डन, 1884 1904) 2 पृ 257 अगुत्तर निकाय (सपा मारिस व हार्डी), 2 पृ 207 3, पृ 303 जातक, 6, पृ 111
268 अगुत्तर निकाय (सपा) मारिस व हार्डी, 3 पृ 4)
269 दीघ निकाय (संपा राइस डेविड व कारपेंटर), 2 पृ 127 इसका उल्लेख उदान (8/5) मे भी मिलता है
270 पुण्णान्दि जातक, 214 रोमक जातक, 277 तथा जातक 2, प 412
271 गोध जातक, 138 सखपाल जातक, 524
372 वारुणि जातक, 47, इल्लीस जातक, 78
273 धम्मपद (पूना, 1934) 247, जातक, 466 पाति मोकल सें बु ई (आक्सफोर्ड, 1881) पृ 21 इको लाइफ, पृ 215 ओमप्रकाश वही, पृ 75 सुरा सभी प्रकार के मादक पेय के साथ उपभोग किया जाता था यह अन्न से तैयार किया जाता था
274 जातक 466 इको लाइफ, पृ 245, ओमप्रकाश वही पृ 75 मेरय लोकप्रिय मसालेदार मदिरा थी, जो शाक (सब्जी) से बनती थी
275 इको लाइफ पृ 245 ओमप्रकाश, वही पृ 75 वारुणी मधुक फूल से तैयार की जाती थी यह एक तेज मादक पेय था
276 ओमप्रकाश, वही, पृ 75 शिघु पेय गन्ने के रस से तैयार किया जाता था
277 वही, पृ, 76 सतय एक बहुत तेज मादक पेय था जिसमें सौ बार पानी मिलाने पर भी उसका तेजपन कम नहीं होता था
278 इको लाइफ, पृ 245, ओमप्रकाश, वही, पृ 75 पाद टिप्पणी तालक्क और कादबरी भी एक लोकप्रिय मादक पेय था यह ताड के फल तथा पके कदब फल से क्रमश बनाया जाता था
279 जातक, 81 व 512, पुराण (वायु, 58, 43, मतस्य 120 31) तथा अजता की पेंटिंग (ओमप्रकाश, वही, पृ 185) भी नारियों द्वारा मद्यपान करना प्रामाणित करती है
280 जातक, 81 व 512
281 जातक, 4 पृ 114
282. जातक, 1, पृ 362 489
283. वही, 1, पृ 362.
284 सें बु ई, 13 पृ 211, 215
285 जातक, 5, पृ 467
286. आपस्तब धर्मसूत्र, 1/5/17/21, गौतम धर्मसूत्र, 2/26
287 विष्णु धमसूत्र, 21/84
288. जो स, द महावस्तु बुद्धि सी (लण्डन, 1949), भाग 1, पृ 315-16, वाटर, आन ह्वेन त्साग ट्रैवल, लन्दन 1905) भाग 2, पृ 79, ज ए सो ब, (1921) भाग 17, पृ 266, मलसेकर, पृ 779, अगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3 पृ 239,

डायलाग्स, पृ 103, ला, वही, पृ 70-78
289 अगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3, पृ 239 ला, क्षत्रिय क्लान (कलकत्ता एण्ड शिमला, 1922) पृ 60-63
290 महावग्ग, बुद्धि सी, भाग 2, पृ 107, डायलाग्स, भाग 2, पृ 103, ओल्डनबर्ग, बुद्ध (लण्डन, 1882), पृ 148, वाटर, वही, पृ 79, कारपोरेटेड लाइफ, पृ 92, मललसेकर, पृ 779
291 ला, वही, पृ 63
292 अगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3, पृ 239, दीघ निकाय, भाग 2, पृ 96, ला, इण्डोलाजिकल स्टडीज, (कलकत्ता, 1950) पार्ट 1, पृ 112, मललसेकर, पृ 779
293 महावग्ग, बुद्धि सी, भाग 2, पृ 106, ज ए सो ब (दिसंबर, 1838) 5, पृ 992, ला, ए हिस्ट्री आफ पालि लिटरेचर (लण्डन, 1933), भाग 1, पृ 100 मललसेकर, पृ 779
294 रॉकहिल, द लाइफ आफ बुद्ध (लण्डन, 1907), पृ 123 25, हार्डी, मैनुअल आफ बुद्धिम (द्वितीय सस्करण लण्डन, 1880), पृ 243, घोष, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया *(इलाहाबाद, 1939) पृ 112-13, वि चरण ला (सपा), बुद्धिस्ट स्टडीज (कलकत्ता,* 1931) 199-200, दिवाकर (सपा) बिहार, थ्रू द ऐज (1959) पृ 103
295 सुमगल विलासिनी (बरमेस एडीसन), पृ 103 05, मललसेकर, पृ 779
296 वही, चौधरी, हिस्ट्री आफ बिहार (पटना 1958), पृ 13
297 मललसेकर, पृ 7'9 ला क्षत्रिय क्लान (कलकत्ता एण्ड शिमला, 1922), पृ 60
298 रॉकहिल वही, पृ 123-25, वि च ला, वही, पृ 63
299 ज ए सो ब (1921), 17, पृ 267 68, वाटर, वही पृ 79 घोष, वही, पृ 102 चौधुरी, वही, पृ 13, मललसेकर, पृ 780
300 सयुक्त निकाय, पा टे सो, भाग 2 पृ 267-68 रॉकहिल, वही, पृ 123 25, राधा कुमुद मुकर्जी, हिंदू सिवलाइजेशन (बम्बई, 1957) पार्ट II, पृ 243
301 कांग्ले (सपा) द कौटिल्य अर्थशास्त्र (1960), पार्ट 1, पृ 244 सघलाभी दण्डमित्र लाभा नामुत्त
302. कावेल (सपा) द जातक, भाग 1, पृ 316, ला, वही, पृ 96-98
303 अगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3 पृ 76, ज ए सो ब (1921) भाग 17, पृ. 268
304 उवासगदसाओ, बि इ सी, (कलकत्ता, 1888) भाग 2, पृ 6, रॉकहिल वही, पृ 62, रैप्सन (सपा), कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, (दिल्ली 1955) भाग 1, मिथिला, पृ 130
305 मिथिला, पृ 62, 71 130, दत्त (सपा), गिलगिट मैनुस्क्रिप्ट, (श्रीनगर 1942) भाग 3, पार्ट 2, पृ 134 *खण्ड विदेह राज के पांच सौ अमात्यों का प्रमुख था जो दूसरे* मंत्रियों के द्वेष और षड्यन्त्र से खिन्न होकर वैशाली चला आया, जहां वह प्रथम श्रेणी के लिच्छवियों में सम्मिलित किया गया और ततत सेनापति का पद प्राप्त किया, इ हि क्यू (मार्च, 1947), भाग 23 पृ 59, घोषाल, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चरल (कलकत्ता, 1957) पृ 389-90
306 दीघ निकाय (श्रीमती राइस डेविड द्वारा सपा) 1, पृ 88,1 20 मज्झिम निकाय

(ट्रेंकनर और चामर्स द्वारा सपा), 2 पृ 133 34 अंगुत्तर निकाय, 3 पृ 223, सुत्त निपात, 3/7

307 सुत्त निपात, 2, पृ 150 मनुष्य न तो जन्मना चाडाल होता है और न ब्राह्मण हो, अततोगत्वा मानव मात्र में समता है विभेद तो वाह्य एव कृत्रिम है, विमानवत्थु में महात्मा बुद्ध तर्क देते हैं कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी तो अजर अमर नहीं है, सभी का अत एक ही है, फिर हम क्यो किसी को जन्मना श्रेष्ठ मानें और दूसरे का हेय दृष्टि से देखें ? (5/13/15), पेतवत्थु (2/6/12) चुल्लवग्ग में एक जगह भिक्षु सघ को सबोधित करते हुए कहा— हे भिक्षुओ, जिस प्रकार महान नदियां सागर में मिलकर एकाकार हो जाती हैं, उसी प्रकार चारो वर्णों के सदस्य तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म के अनुसार प्रव्रजित होकर यह भूल जाते हैं कि हमारा अमुक वर्ण था, अमुक वैश था, उनको एक मात्र सज्ञा रह जाती है श्रमण' (9/1/4) उक्त उद्धरणो से यह स्पष्ट है कि महात्मा बुद्ध ने कम से कम बौद्ध सघो में जातिवाद को पनपने नहीं दिया, यही कारण था कि नापित पुत्र होने पर भी उपालि बुद्ध के प्रिय शिष्यो मे थे और महात्मा बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् सघ के प्रधान होने का श्रेय भी प्राप्त कर सके।

308 चौधुरी, वही, पृ 13, इ ए भाग 32, पृ 233 36, बील रोमाटिक लिजेन्ड आफ शाक्य बुद्ध (लण्डन, 1875), पृ 159 60

309 विनय, 4, पृ 225 26

310. बु इडिया (प्रथम सस्करण), पृ 15

311. वही, पृ 14

312 विनय 2, 207 07

313 दीघ 51

314 बुद्धिस्ट इडिया (प्रथम सस्करण), पृ 15

315 रॉकहिल, द लाइफ आफ द बुद्ध (लण्डन, 1907) पृ 62, ज ए सो ब (1921), 17, पृ 266

316 ज ए सो, ब (1921), भाग 17, पृ 266 67

317 वही, दिवाकर, विहार द एजेज (1959), पृ 163

318 ज ए सो ब (1921), भाग 17, पृ 267

319. फिक, वही, पृ 286

320 वही, पृ 297

321. वही, पृ 294, 296 प्राचीन भारत में जादूगरी का खेल बहुत उच्च कोटि में पहुच गया था.

322. वही, पृ 296

323 दिवाकर, वही, पृ 173

324 महा वस्तु, भाग 1, वुद्धि सी पृ 248-49, ज ए सो ब, (1921), भाग 21, पृ 257, ओल्डन बर्ग, बुद्ध (लण्डन, 1882) पृ 148, मलालसेकेर, पृ 913, रॉकहिल, वही, पृ 63, बील, बुद्धिस्ट रिकार्ड्स (लण्डन, 1884) भाग 2, पृ 77

325 रॉकहिल, वही, पृ 73

326 मलालसेकेर, पृ 943, मुकर्जी, हिंदू सिविलाइजेशन, (बबई, 1927), पार्ट ii, पृ 239,

विनय रेक्स, से बु ई, पार्ट II, पृ 171
327 वैशाली इववेशन, 1950, पृ 1
328 लेग्ग, फाह्यान, आक्सफोर्ड, 1886, पृ 72, सुमगल विलासिनी, पा टे सो, भाग 1, पृ. 309, अगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3, पृ 76
329 ज ए.सो (1921), भाग, 17, पृ 268, अगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3, पृ 76
330 ज ए सो ब (1921), भाग 17, पृ 268, दिव्यावदान (सपा कावेल व वेल), पृ 136 चद्र मास के आठवें, चौदहवें व पद्रहवें दिन जानवरो का बध किया जाता था ला क्षत्रिय (कलकत्ता और शिमला 1922), पृ 73
331 महावस्तु बुद्धि सो भाग 1, पृ 215 16, मललसेकेर, पृ 779
332 अगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3, पृ 76, मललसेकेर, पृ 780, मुकर्जी, वही, पृ 24?
333. बु इडिया, पृ 34, 41
334 इको लाइफ, पृ 241, सुमगल विलासिनी (बरमेल एडीशन), पृ 103 05, चौधरी, हिस्ट्री आफ बिहार पटना, 1958), पृ 13
335. ब्रह्मजाल सत्त
336 जातक, 4, पृ 324
337 जातक, 1, पृ 430
338 वही, 2, पृ 267 3, पृ 198
339 वही, 2, पृ 253
340 वही, 3, पृ 160, 4, पृ 81 82, ८, पृ 277
341 वही, 3, पृ 46 49, 253 5, पृ 282 6, पृ 275
342 वही, 1, पृ 499
343 जैन सिद्धात भास्कर, भाग 3, पृ 50, टिप्पणी 2
344 द वूमन एण्ड ट्री या सलभनिजिक इन इडियन लिटरेचर एण्ड आर्ट, एकटा ओरियटलिया 6, पृ. 201
345 जातक, 1, पृ 489 ये भुञ्जन सुर पिवति सुराछयो येव किर सो
346 जातक, 2 पृ 46-49, 4, पृ 91, 5, पृ 286

9

धार्मिक दशा

भारतीय सस्कृति आदि काल से ही धर्म प्रधान रही है। ऋग्वेदकालीन धर्म व्यवहार में सरल होते हुए भी उत्कृष्ट था। वैदिक आर्यों ने प्रकृति की सजीवनी शक्ति से सपन्न वैभवो की आराधना की। सूर्य, पवन, जल, अग्नि, पृथ्वी आदि ही तो मानव जीवन के आधार हैं, अत उन्होंने सभी को देवपद प्रदान किया। उत्तर वैदिक काल मे आराध्य देवताओ की सख्या मे वृद्धि हो गई। अनेक यम, भूत, प्रेत आदि भी पूजा के पात्र बन गए। अथर्ववेद मे अनेक ऐसी धार्मिक विचारो तथा व्यवहारो को मान्यता मिली जो पूर्व काल मे अमान्य थे। उत्तर वैदिक युग मे अशिक्षित जनता वैदिक वाङ्मय से दूर होने लगी, ब्राह्मण धर्म के व्यवहार पक्ष मे जटिलता आने लगी और वैदिक सस्कृत तथा पुरोहित समुदाय के धार्मिक अनुष्ठान जनता के लिए दुर्बोध हो गए।[1]

इस प्रकार जहा एक ओर तो समाज के निम्न वर्ग के धर्मिक व्यवहार को मान्यता देकर धर्म को व्यापक रूप प्रदान किया गया, वही ब्राह्मण धर्म मे जटिलता को प्रश्रय मिलने के फलस्वरूप समाज मे एक सकुचित विचारधारा पनपने लगी। उपनिषद् काल मे अध्यात्मवाद पर विशेष चितन हुआ और धीरे-धीरे यह विचार प्रबल हो चला कि मोक्ष का मार्ग केवल वैदिक यज्ञो तथा धार्मिक अनुष्ठानो द्वारा ही प्रशस्त नही होता है, इसके लिए अन्य साधन भी अपनाए जा सकते हैं। इस युग के आध्यात्मिक चितन का ही यह सुफल था कि भविष्य मे अनेक धार्मिक मतो का जन्म हुआ।

प्राचीन पालि सूत्र मे भगवान बुद्ध के आविर्भाव के समय प्रचलित दर्शन के तिरसठ वादो का उल्लेख किया गया है, जिनमे अनेक ब्राह्मण विरोधी थे।[2] पालि सूत्रो मे बुद्ध के समकालीन प्रमुख वादो का उल्लेख है। इस युग के धर्म प्रवर्तको मे प्रमुख थे, गौतम बुद्ध, महावीर और मक्खलि गोसाल। इन तीनो मे नैसर्गिक प्रतिस्पर्धा थी। इनके अनुयायी आपस मे प्रायः झगडा कर बैठते थे। इन तीनो

का प्रभाव वैशाली के निवासियो पर काफी अधिक था, लेकिन इनमे भगवान बुद्ध का व्यक्तित्व अपने विरोधियो की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली था। उनके सामने सभी नतमस्तक हो गए और उनके प्रभाव से अन्य मतो के अनुयायी अपने धर्म को छोड कर बौद्ध सघ मे सम्मिलित हो जाते थे जिससे बौद्ध अनुयायियो की सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

वैशाली के लिच्छवि प्राय सभी धर्मों का सम्मान करते थे, लेकिन भगवान बुद्ध के प्रति उनकी सर्वाधिक श्रद्धा थी। पहले से चले आ रहे ब्राह्मण धर्म की जटिलता को त्याग कर लोग प्रगतिशील धर्मों के अनुयायी बनने लगे। यज्ञ, सावित्री सिद्धान्तो को प्रमुखता देना बद कर दिया, उसकी जगह सहज धम के अनुसरण को मोक्ष प्राप्ति का साधन बनाया। प्राचीन चैत्यो आदि को बौद्ध विहारो मे परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार वैशाली प्रगतिशील विचारो का प्रचार केंद्र बन गया। लेकिन साथ ही लिच्छवि प्राचीन धार्मिक मान्यताओ को आदर की दृष्टि से देखते थे जिसके लिए भगवान बुद्ध उनकी प्रशसा करते थे।[3]

ब्राह्मण मत

बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व तथा उनके समय म जो विवरण मिलता है उसके अनुसार ब्राह्मण मत के मानने वाले लोग वैशाली मे रहते थे। ईसवी 635 मे भारत-भ्रमण के लिए आया चीनी यात्री ह्वेन त्साग के विवरण से प्रतीत होता है कि वैशाली के लोग धार्मिक प्रवृति के थे। यहां बौद्ध एव बौद्धतर के धर्मों के लोग आपस मे मिलकर रहते थे। उसने वैशाली मे कई सौ सघाराम देखे जिनम से अधिकाश खण्डहर की स्थिति मे थे। केवल तीन पाच अभी ठीक अवस्था मे थे, कुछ मे पुजारी रहते थे। उसने दस बीस देवताओ के मदिर भी देखे जिनम अनेक मतानुयायी उपासना करते थे। निर्ग्रंथ के अनुयायियो की भी सख्या बहुत अधिक थी।[4]

वैशाली मे वैदिक देवता तथा ब्राह्मण या प्रजापति के अतिरिक्त यक्ष की पूजा होती थी।[5] कुछ लोग ब्राह्मण मत के देवी देवताओ मे विश्वास करते थे। देवा देवता की पूजा, यज्ञ तथा तपस्या आदि प्रथाए विद्यमान थी।[6] वैशाली मे हा ब्राह्मणो का एक गाव या मोहल्ला था जिस दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर के नाम से जाना जाता था।[7] बौद्ध साहित्य मे बहुत से साधु समाजो का विवरण मिलता है जो वैदिक परपरा के अनुसार यज्ञ तथा अग्निहोत्र करते थे।[8] बौद्ध साहित्य मे हमे अनेक ब्राह्मणो का उल्लेख मिलता है जिन्होने बाद मे ब्राह्मण मत को त्याग कर बौद्ध धर्म मे अपनी आस्था प्रगट की। लेकिन उनके अतिरिक्त अन्य बहुत से लोग ब्राह्मण मत के अनुयायी रहे होगे जिनका उल्लेख बौद्ध साहित्य मे नही

हुआ। लिच्छवि गणराज्य की एक प्रथा के अनुसार लिच्छवि राजाओ का 'मगल पोकरिणी' मे स्नान कराकर अभिषेक[9] किया जाता था, इस कार्य को सभवत ब्राह्मण के द्वारा ही सपन्न कराया जाता था।

इसी प्रकार आलार कालम नामक एक आचार्य का आश्रम, जिनसे भगवान बुद्ध ने गृह त्यागने के पश्चात सर्वप्रथम दीक्षा ली थी, ललितविस्तर के अनुसार, वैशाली म था। आलार कालाम साख्य दर्शन के आचार्य थे जिनके 300 शिष्य वैशाली के आश्रम मे ही रहते थे।[10] सुमगल विलासिनी के अनुसार लिच्छवि अपने प्राचीन धार्मिक कृत्यो को बहुत सम्मान से करते थे।[11] इसके अतिरिक्त और भी उदाहरण मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि लिच्छवि ब्राह्मण मत के कई देवी देवताओ की पूजा लिच्छवि करते थे। वैशाली मे एक बार भयकर अकाल पडा जिससे लोगो मे त्राहि त्राहि मच गई। सपूर्ण वज्जि प्रदेश मे महामारी फैल गई जिससे छुटकारा पाने के लिए लिच्छवियो ने कई देवी देवताओ की पूजा की।[12] वैशाली क्षेत्र मे ही गडक नदी के ऊपरी भाग मे वह प्रसिद्ध पूजनीय शालग्रामी तथा नरायणी पत्थर पाया जाता है जिसकी विष्णु के रूप मे पूजा ब्राह्मण मतालबी के लोग आज भी करते हैं। सभव है इन पवित्र पत्थरो की भी पूजा लिच्छवि करते रहे हो।[13]

वैशाली मे कई प्राचीन चैत्य थे। इनमे से उदेन चैत्य, चापालचैत्य, गौतमक चैत्य, सावक (सप्ताम्रक) चैत्य, बहुपुत्तक चैत्य, सारदद चैत्य आदि का विशेष रूप स बौद्ध ग्रथो म उल्लेख हुआ है।[14] इन चैत्यो मे किसी की पूजा होती थी, इस पर विद्वानो मे मतभेद है। बुद्धघोष[15] का मत है कि इन चैत्यो म यक्षो की पूजा होती थी। लेकिन सभवत सभी चैत्यो मे यक्ष पूजा नही होती थी। कुछ विद्वानो का मत है कि इसमे वृक्ष और हेंगी (मिट्टी का ढेला तोडने वाला लकडी का पाटा) की पूजा होती थी।[16] जैन ग्रथो के अनुसार चैत्य वह पवित्र स्थल होता था जिसमे बाग, उद्यान और सेवको के गृह होते थे।[17] राहुल साकृत्यायन के अनुसार यह उद्यान पुष्करिणी सहित देव स्थान होते थे।[18] नलिनाक्षदत्त के अनुसार वैशाली के आसपास के चैत्यों म देवियो की मूर्तिया सुरक्षित रखी थी। लिच्छवि इन चैत्यो मे नियमित रूप से पूजा करते थे।[19]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सभवत वृक्षो म देवता, अप्सरा, नाग, प्रेतात्मा, यक्ष आदि का निवास स्थान मानकर सतान, पशु, धन आदि की अभिलाषा के लिए वैशाली निवासी अनेक प्रकार के खाद्य एव पेय लेकर इन पवित्र स्थलो म पूजा के लिए आते थे। इस प्रकार सभवत वृक्षपूजा को चैत्यपूजा कहा जाता था। गावो म आज भी महिलाए पीपल तथा नीम के वृक्ष की पूजा करती हैं। वैशाली के चारो दिशाओ मे चौमुखी महादेव के चार मदिर बाद म कभी बनाए गए थे। जिनम से दो उत्खनन मे मिल चुके है। राहुल साकृत्यायन[20]

का मत है कि ये मदिर चैत्यो पर ही बनाए गए थे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैशाली म ब्राह्मण मत के मानने वालो की सख्या कम नही रही होगी। बौद्ध साहित्य मे वैशाली के ऐसे अनेक ब्राह्मणो का उल्लेख मिलता है जो भगवान बुद्ध के शिष्य बन गए थे। इनमे से कुछ का विवरण बौद्ध ग्रथो मे मिलता है। वैशाली म कारणपाली।[21] नामक एक ब्राह्मण था जो लिच्छवियो के धार्मिक कृत्यो को पूर्ण करवाता था। एक दिन सुबह ही सुबह कारणपाली को पिगियानी ने आकर बताया कि उसने भगवान बुद्ध को देख लिया है। कारणपाली पिगियानी के मुख से भगवान बुद्ध की प्रशसा सुनकर अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने भूमि पर घुटने टेक कर भगवान बुद्ध के प्रति सम्मान व्यक्त किया।[22] पिगियानी ब्राह्मण भी वैशाली का ही रहने वाला था। एक अन्य अवसर पर भगवान बुद्ध को सम्मान देने के लिए पाच सौ लिच्छवि भगवान बुद्ध के पास कूटागारशाला पहुचे। पिगियानी भी उन लिच्छवियो के मध्य बैठा था। उसने भगवान बुद्ध की प्रशसा की गाथा गीत मे सुनाई जिसे सुनकर पाच सौ लिच्छवियो ने पिगियानी को पाच सौ उत्तरीय वस्त्र भेंट किए। पिगियानी ने इन वस्त्रो को भगवान बुद्ध को अर्पित कर दिया।[23]

इस प्रकार वल्लिय थेर भी वैशाली के ब्राह्मण परिवार से सबध रखता था। भगवान बुद्ध के वैशाली आगमन पर उनसे प्रभावित होकर वह महा कच्चायन के नेतृत्व मे बौद्ध सघ मे सम्मिलित हो गया।[24] वैशाली का दासक थेर नामक ब्राह्मण विद्वान भी बौद्ध दर्शन का अध्ययन करने के लिए बौद्ध सघ मे सम्मिलित हो गया था।[25] इसी भाति पचशील समादानिय थेरा भी वैशाली के महाशाल ब्राह्मण के परिवार से सबधित था।[26] यह पाच वर्ष की अवस्था मे ही अर्हत हो गया था। रोहिणी थेरी भी वैशाली के एक सम्पन्न ब्राह्मण की पुत्री थी।[27] भगवान बुद्ध के वैशाली आने पर उसने उनका प्रवचन सुना जिससे प्रभावित होकर बौद्ध सघ म सम्मिलित हो गई।[28] इस प्रकार अनेक ब्राह्मण अपना प्राचीन मत छोडकर बौद्ध मत के अनुयायी हो गए थे। इससे आभास मिलता है कि भगवान बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व वैशाली मे ब्राह्मण मत के अनुयायी काफी सख्या म विद्यमान थे।

वैशाली के अतिरिक्त वैशाली क्षेत्र के आस पास अनेक धार्मिक सप्रदायो के साधु रहते थे। *अगुत्तर निकाय*।[29] *के विवरण से ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध* के समय आजीविक, निग्रठ, मुण्डसावक, जटिल, परिवाचक, मागदिक, तेदण्डिक, अविरुद्धक, देवधम्मिक, गोतमक आदि धार्मिक सप्रदाय के साधु वैशाली क्षेत्र के आसपास क्षेत्रो (मगध तथा उत्तरी बिहार) मे रहते थे।[30] कुछ विद्वानो के मत म इसम से आजीविक, निग्रठ तथा मुण्डवासक को छोडकर शेष सभी ब्राह्मण समुदाय के थे।[31] इनमे परिव्राजको का सबध वैशाली से अवश्य रहा था।[32]

परिव्राजको के संभवत. दो वर्ग थे · ब्राह्मण और अन्य तैथिक परिव्राजक। जातक कथाओं मे तापसो तथा परिव्राजको के जो विवरण उपलब्ध हैं उनके आधार पर उन्हें सन्यासी एव वानप्रस्थी माना जाता था।[33] तापस आचार्य का एक आश्रम उरुवेला (बोधगया) मे था जिसमे उरुवेल काश्यप के 500 तथा उनके दो भ्राताओं नदी काश्यप तथा गया काश्यप के क्रमश: 300 व 200 शिष्य थे।[34] जटाधारी होने के कारण इन्हें जटिल भी कहा गया है। इसी तरह राजगृह के निकट सजय परिव्राजक अपने 250 शिष्यो के साथ रहते थे। इन्ही मे सारिपुत्र व मोद्‌गलायन भी थे। भगवान बुद्ध के प्रभाव मे आकर सजय के अतिरिक्त उक्त परिव्राजक बौद्ध सघ मे सम्मिलित हो गए।[35] वैशाली मे परिव्राजको के कुछ सभी महत्वपूर्ण स्थलो का विवरण मिलता है।

1. **एकपुडरीक** · यह वच्छगोत्त नामक परिव्राजक का निवास स्थल था जो महावन के समीप स्थित था। एक बार भगवान बुद्ध वच्छगोत्त को देखने गए और इस अवसर पर तेविज्जवच्छ गोत्त सुत्त का प्रवचन किया।[36] मूलरूप से वच्छगोत्त राजगृह का रहने वाला था, परन्तु सभवत अधिकतर वह भ्रमणशील रहता था। भगवान बुद्ध को वह वैशाली, श्रावस्ती, नातिका तथा राजगृह मे मिला था।[37] बुद्ध घोष का मत है कि सफेद आम्रवृक्ष (सेतब रुक्ख) से घिरे होने के कारण इस स्थान को पुडरीक नाम दिया गया था।[38]

2 **पाटिका राम** पाटिक का पुत्र इसका उपयोग अपने रहने के लिए करता था। यह विचारको के वादविवाद (तर्क वितर्क) का केंद्र था।[39]

3 **तिन्दुखान परिव्राजकराम** यह पाटिक पुत्र तथा अन्य परिव्राजको का निवास स्थल था। जालिय नामक सन्यासी वैशाली मे भगवान बुद्ध तथा पाटिक पुत्र के मध्य वादविवाद का आयोजन करने के लिए इस स्थान को चुना था।[40]

इसके अतिरिक्त परिव्राजको ने वज्जि क्षेत्र के अन्य कई स्थलो का अपने लिए उपयोग किया। सयुक्त निकाय मे एक वादविवाद का विवरण मिलता है। यह वादविवाद भगवान बुद्ध के निर्माण के पश्चात भगवान बुद्ध के अस्तित्व को लेकर परिव्राजक समिय कच्चान और वच्छगोत्त के मध्य नातिका मे हुआ था।[41] सामदक उक्काचेला नामक पर सारिपुत्र से एक परिव्राजक 'निर्वाण' पर प्रश्न किया था।[42] एक जातक मे चार लिच्छवि बहन सच्चा, लोला, अववादका और पटाचारी की कहानी मिलती है इन लिच्छवि बहना ने परिव्राजक जीवन ग्रहण किया था। एक बार ये चारो श्रावस्ती मे सारिपुत्र से वादविवाद मे पराजित हुई थी।[43]

जटिल तपस्वी भी वज्जि क्षेत्र म थे। वैशाली के समीप कपिनच्चना मे एक कप्पिटर थेर रहता था।[44] जो पहले एक जटिल था।[45] इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैशाली मे ब्राह्मण मत के अनुयायियो तथा परिव्राजको की सख्या

काफी अधिक थी। यद्यपि इनमें से एक बडी सख्या मे बौद्ध मत के अनुयायी हो गए।[46] लेकिन इसपर भी वैशाली मे ब्राह्मण मत के अनुयायियो की सख्या में कोई विशेष कमी नही हुई। ब्राह्मण मत के अनुयायी भगवान बुद्ध के निर्वाण के पश्चात भी थे जिसका आभास ह्वेन त्साग के विवरण से मिलता है।[47]

जैन मत

जैन धर्म का वैशाली से बहुत निकट का सबध था, क्योकि चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर का जन्म वैशाली के कुण्डपुर[48] मे हुआ था। कुछ दिगबरी विद्वान कुण्डपुर की पहचान नालदा से दो किलोमीटर दूर स्थित 'कुण्डलपुर' से करत है[49], लेकिन यह समीचीन नही है, क्योकि 'महापरिनिब्बान' म दिए गए भगवान बुद्ध की अतिम यात्रा के विवरण म जो स्थान क्रम से आता है उसके अनुसार कुण्डपुर (क्षत्रिय कुण्ड) वज्जिदेश के अतर्गत वैशाली और कोटिग्राम (चेचर) के बीच यह स्थान था।[50] महापरिनिब्बान सुत के चीनी सस्करण के के अनुसार वैशाली से कुण्डपुर 7 ली पर स्थित था।[51] कनिंघम के अनुसार कुण्डपुर वैशाली से। 12/5 मील पर स्थित होना चाहिए।[52] अत आज का वासु-कुण्ड ही वर्धमान महावीर स्वामी का जन्म स्थान था।[53] महावीर के जन्म स्थान की तरह उनकी तिथि[54] को भी लेकर पर्याप्त मतभेद हैं। हम यहा उनका विस्तृत विवरण देना उचित नही समझते हैं, वे भगवान बुद्ध के समकालीन थे, यह सभी विद्वान स्वीकार करते हैं।

मज्झिमनिकाय[55] के अनुसार निग्रठ नातपुत्त (भगवान महावीर स्वामी) की मृत्यु की सूचना चुदकर्मापुत्र आनद को दी, जिसे भगवान बुद्ध तक पहुचाया गया। इसी तरह के सवाद का विवरण दीघ निकाय (पासादिक सुत्त, 3/6) तथा (सगीत परियाय सुत्त, 3/1) मे मिलता है।[56] तीनो प्रकरणो का मूल आत्मा एक है, केवल ऊपर का ढाचा कुछ भिन्न है। प्रथम प्रकरण म भगवान बुद्ध इस सवाद श्रमण के पश्चात आनन्द को उपदेश देते हैं और दूसरे मे चुन्द को तथा तीसरे प्रकरण मे सारिपुत्र पावा मे भिक्खुओ को महावीर स्वामी के निर्माण की बात कह कर उपदेश देते हैं।

अत यह निश्चित हो जाता है कि महावीर स्वामी का निर्वाण भगवान बुद्ध से पूर्व पावा[57] म हुआ था। लेकिन ये प्रकरण या घटना भगवान बुद्ध के निर्वाण समय के कितने निकट है कही स्पष्ट सूचना नही मिलती। के पी जायसवाल तथा अन्य विद्वानो ने इसे भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण से दो वर्ष पूर्व के लगभग की घटना मानते हैं।[58] इस आधार पर महावीर स्वामी का निर्वाण 483 ई पू से दो वर्ष पूर्व अर्थात 485 ई पू मे हुआ होगा। भगवान महावीर स्वामी 72 वर्ष

की आयु मे निर्वाण को प्राप्त हुए थे। इस प्रकार उनका जन्म 557 ई पू में हुआ होगा।

महावीर स्वामी ने भगवान बुद्ध की तरह सासारिक सुख वैभव को त्याग कर 30 वर्ष[59] की उम्र मे प्रव्रज्या ग्रहण की थी। ससार का त्याग कर वे कठोर तपश्चर्या करने लगे जिसका विस्तृत वर्णन आचारग सूत्र म मिलता है।[60] उन्हें 13 वें वर्ष मे कैवल्य की उपलब्धि हुई, अर्थात इस समय उनकी आयु बयालीस वर्ष की थी।[61] जिनत्व प्राप्त कर महावीर निगण्ठ सप्रदाय के प्रमुख हो गए। उन्होने जैन सघ को सुसगठित किया। कहा जाता है कि उनके अनुयायियो मे प्रमुख थे चौदह हजार जैन मुनि।[62] कल्पसूत्र के अनुसार उन्होने राजगृह, नालन्दा, चम्पा, वैशाली मिथिला तथा श्रावस्ती मे वास किया।[63] पालि सूत्रो के अनुसार महावीर तथा उनके अनुयायियो के प्रमुख कार्य क्षेत्र थे, राजगृह, नालन्दा, वैशाली, पावा और श्रावस्ती।[64]

वैशाली मे भगवान महावीर स्वामी का प्रचार तथा उनके अनुयायी के सबध पर कुछ विशद विचार आवश्यक हैं। महावीर स्वामी का कुल 'ज्ञातृक' वज्जि सघ मे सम्मिलित घटक[65] होने के कारण यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका प्रभाव लिच्छवियो पर काफी अधिक रहा होगा। इसके अतिरिक्त महावीर स्वामी की मा लिच्छवि राजा चेटक की बहन थी[66], इससे भी लिच्छवि लोग इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते होंगे, ऐसा अनुमान लगाया जाता है। भगवान महावीर स्वामी ने अपने श्रमण काल के बयालीस वर्ष मे से बारह वर्षाऋतु वैशाली तथा वाणिज्य ग्राम मे व्यतीत किया था।[67] इसस भी अनुमान लगा सकते हैं कि वैशाली म जैन अनुयायी काफी सख्या म थे। वैशाली के दो प्रमुख व्यक्ति राजा चेटक[68] तथा लिच्छवि सेनापति सिंह[69] महावीर स्वामी अनुयायी थे।

इन प्रभावशाली व्यक्तियो के कारण महावीर को अपने मत के प्रचार मे काफी सफलता तथा सुविधा मिली होगी। सिंह सेनापति बाद मे भगवान बुद्ध का उपासक बन गया।[70] वैशाली म अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति निर्ग्रन्थ सच्चक था जिसके 500 लिच्छवि अनुयायी थे। वह दो बार भगवान बुद्ध से वादविवाद करने के लिए गया जिसे भगवान बुद्ध ने चूलसच्चक तथा महासच्चक सुत्त का उपदेश दिया।[71] सच्चक जब पहली बार 500 लिच्छवि अनुयायियो के साथ भगवान बुद्ध को महावन म देखने गया तो भगवान बुद्ध की विशेष आदर भाव प्रदर्शित किए बिना उनमे से अधिकाश चुपचाप बैठ गए।[72] भगवान महावीर स्वामी का वैशाली म पर्याप्त प्रभाव था, यह इससे भी अनुमान लगाया जा सकता है कि भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण पर शोक प्रकट करने के लिए पावा मे 9 लिच्छवि 9 मल्ल तथा 18 काशी कोशल के गण राजाओ ने एकत्र होकर यह प्रस्ताव पास किया कि हमारे बीच से ज्ञान का प्रकाश चला गया। अब हम उनके आदर्शों का

जीवन मूल्यो को स्थायी बनाने के लिए दीपसज्जा करनी चाहिए।'[73]

आजीविक तथा अन्य वेद विरुद्ध मत

जैन धर्म के समान ही आजीविक मत बौद्ध धर्म से अधिक प्राचीन प्रतीत होता है, परतु इनका भगवान बुद्ध के समय के पूर्व का इतिहास अज्ञात है।[74] इस मत के प्रमुख प्रचारक मक्खलि गोसाल, भगवान बुद्ध तथा महावीर स्वामी के समकालीन थे, और उन दिनो उनको भी समाज मे आदर प्राप्त था।[75अ] वे प्राय श्रावस्ती मे वास करते थे, पर अपने मत के प्रचार के लिए भ्रमण किया करते थे।[75ब] वैशाली भी सभवत आजीविको के प्रचार का महत्वपूर्ण केंद्र था। यहा ये नग्न तपस्वी, मुक्त रूप से अपने मत की व्याख्या किया करते थे। यदि इन्हे मूलत आजीविक मत के सदस्य या मक्खलि गोसाल का अनुयायी न भी स्वीकार करें तो भी यह कहना उचित ही होगा कि इन्होने आजीविक मत के प्रचार प्रसार मे महत्वपूर्ण योगदान दिया।[76]

मक्खलि गोसाल के पूर्ववर्ती अज्जुण गोयम पुत्र, जो अपने वैशिष्ट्य के लिए अपने नाम के साथ गोत्र या पितृनाम भी लगाते थे, बाशम महोदय[77] के अनुसार वे एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे, जो गोसाल के लगभग समकालीन तथा अपने युग मे प्रसिद्ध भी थे। भगवती सूत्र[78] के अनुसार एक उपदेष्टा अपने शरीर से निकल कर वैशाली के बाहर कौडियायन चैत्य के निकट, अज्जुंण गोयम पुत्र के शरीर मे प्रविष्ट कर गया तथा उस शरीर मे वह आत्मा 97 वर्ष तक रही, तत्पश्चात् वह आजीविक धर्म के सस्थापक गोसाल मक्खलि पुत्र के शरीर मे प्रविष्ट कर गई जहा 16 वर्ष तक रही। बाशम महोदय अज्जुंण गोयम पुत्र का समीकरण कपिल-वस्तु के अर्जुन से करते हैं जिनका उल्लेख ललितविस्तर[79] मे भावी बुद्ध के गुरु के रूप मे किया गया है।[80] यह शाक्य गुरु, जो सभवत गौतम गोत्र[81] के थे, तथा उसका वशज बौद्ध परम्परा के अनुसार भगवान बुद्ध के पूर्ववर्ती थे, इस प्रकार वे मक्खलि गोसाल के भी पूर्ववर्ती हुए[82] सभवत यह शाक्य गुरु घुमक्कड प्रवृति के तपस्वी थे, जो अपने मत के प्रचार मे वैशाली आए जहा वे युवा गोसाल के सम्पर्क मे आए और अपने विचारो से प्रभावित किया।[83]

यह भी हो सकता है कि काशी, कोशल, मगध, विदेह (वैशाली सहित) तथा चपा का क्षेत्र गोसाल के समानधर्मी विचारकों का केंद्र रहा हो जहा वे जनसमूह का समर्थन प्राप्त करने के लिए घूमा करते थे, और समर्थन प्राय मिला भी।[84] एक जातक म गुणस्सप नामक आजीवक का उल्लेख मिलता है जो अपनी शिष्य मडली के साथ मिथिला स थोडी दूर मृगवन मे निवास करते थे। वहा की जनता उनका बड़ा सम्मान करती थी। एक दिन उन्होने विदेहराज अगीति को अपने सिद्धान्तो का उपदेश देते हुए कहा, 'हे राजन्, धर्म के आचरण से भला अथवा

बुरा कोई फल नही मिलता है, परलोक नाम की कोई वस्तु नही है, कौन व्यक्ति वहा से लौटकर यहा आया है ? सभी जीव समान हैं, न किसी स सत्कार लेना चाहिए, न किसी को देना चाहिए। शक्ति या साहस नाम की कोई चीज नही है, शौर्य अथवा वीर्य हो ही कैसे सकता है जबकि सभी नियति के वश मे हैं, जैसे कि नाव मे रस्सी। सभी प्राणियो को जो मिलना चाहिए वह मिल जाता है, फिर दान से क्या लाभ ? दान से कुछ लाभ नही होता —दाता असहाय तथा दुर्बल होता है, जो दाता है वह मूर्ख है, दान लेने वाला ही चतुर है।[85] भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण की सूचना महा कस्सप को एक आजीविक द्वारा मिली थी।[86]

विनय पिटक[87] की एक कहानी से वैशाली म आजीविको का अस्तित्व सिद्ध होता है। एक दिन भगवान बुद्ध के शिष्यो को वैशाली मे आवश्यक्ता से अधिक भोजन भिक्षा म मिल गया। उन्होने अतिरिक्त भिक्षा उन तपस्वियो को दे दी जो छोडा भोजन स्वीकार करते थे। वह आजीविक यह घटना जब अपने एक आजीविक साथी को सुना रहा था तो एक भिक्खु ने उन दोनो की बात सुन ली। उसने भगवान बुद्ध के पास जाकर इस बात की सूचना दी। इस पर भगवान बुद्ध ने एक नियम प्रतिपादित कर भिक्षा मे मिले अतिरिक्त भोजन को दूसरे मत के तपस्वियो को देने पर रोक लगा दी। इस घटना से प्रतीत होता है कि आजीविको तथा बौद्धो के आपसी सबधो मे कटुता पैदा होने लगी थी।[88] •

दीघ निकाय के पाटिक सुत्त[89] मे उल्लेख है कि कन्दरमसुक और पाटिकपुत्त नामक दो नग्न तपस्वी वैशाली में रहते थे। कदरमसुक सात आजीवन व्रत का पालन करता था जिसमे से प्रथम व्रत सगठित आजीविक समुदाय से लिया गया था। यह प्रथम व्रत था, 'जब तक मैं जीवित रहूगा, नग्न रहूगा और वस्त्र नही धारण करूगा' (यावज जीवन अचेलको) । यावज्जीवन सूत्र, जो सात व्रतो मे प्रथम है, बाशम[90] की राय में अभिव्यजक हैं। उनकी राय म आजीविक शब्द सभवत यावज्जीवन (जीवन-पर्यन्त) शब्द मे बना है।

इसी तरह पूरण कस्सप मक्खलि गोसाल के नियतिवाद के समर्थक थे।[91] इनका भी प्रभाव वैशाली म काफी था। लिच्छवि अभय[92] और महालि[93] तथा विचरण करने वाले वच्छगोत्र[94] उनसे परामर्श लिया करते थे।

बौद्ध मत

भगवान बुद्ध के प्रादुर्भाव के पूर्व तथा आरभिक काल मे वैशाली क्षेत्र मे ब्राह्मण, जैन, आजीवक आदि सभी मतो का प्रभुत्व था, लेकिन भगवान बुद्ध के वैशाली आगमन से उनके व्यक्तित्व तथा अत्यत व्यावहारिक एव प्रगतिशील मत के कारण लिच्छवि उनकी ओर आकृष्ट हुए, और अपने पूर्व धर्म को त्याग कर भगवान बुद्ध के अनुयायी होने लगे।[95] स्थिति यह हो गई कि वैशाली में भगवान

बुद्ध की उपस्थिति अन्य मतो के प्रचारकों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गई।[96] अन्य मतो के अनुयायियो तपस्वियो को भिक्षा तक मिलने मे कठिनाई होने लगी।[97] वैशाली का वैभव तथा लिच्छवियो का स्नेह देखकर बुद्ध का मन वैशाली छोडने का नही होता था।[98] अतिम बार वैशाली छोडते समय बीमार होते हुए भी भगवान बुद्ध ने वैशाली के सुदर चैत्यो का विहार किया।[99]

भगवान बुद्ध का कई बार वैशाली आगमन हुआ था।[100] प्रथम बार वैशाली आगमन तब हुआ, जब वैशाली म महामारी फैली थी जिससे वैशाली के निवासी बुरी तरह त्रस्त थे।[101] इस भयकर विपत्ति से मुक्ति पाने के लिए लिच्छवियो की सभा मे भगवान बुद्ध को वैशाली आमत्रित करने का निर्णय लिया गया। इस कार्य हेतु महालि नामक लिच्छवि, जो मगधराज बिंबसार का मित्र था, को राजगृह भेजा, जहा भगवान बुद्ध गिद्धकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। भगवान बुद्ध ने महालि का निमत्रण बिंबसार के अनुरोध पर स्वीकार किया, और 500 भिक्खुओ के साथ वैशाली के लिए प्रस्थान किया। मगधराज बिंबसार स्वय भगवान बुद्ध को गगा तट तक छोडने गया। गगा के उसपार लिच्छवि भगवान बुद्ध के स्वागत हेतु उपस्थित थे। उस पार उतरने पर लिच्छवियो ने उनका अपूर्व स्वागत किया। गगा से लेकर वैशाली नगर तक का मार्ग तोरणद्वारो से सुसज्जित किया गया था। भिक्खुओ की सुविधा के लिए मार्ग म विशेष प्रबध किया गया था। नाव स उतर कर जैसे ही भगवान बुद्ध ने वज्जि भूमि पर पदार्पण किया, आकाश मे जोर से गर्जना हुई और मूसलाधार वर्षा होने लगी।

भगवान बुद्ध के वैशाली नगर के निकट पहुचते ही वज्जि क्षेत्र से प्रेतात्माए भय से भाग गई और सपूर्ण प्रदेश से महामारी विदूरित हो गई। वैशाली नगरी मे सायकाल भगवान बुद्ध ने 'रतनसुत्त' का मुक्तकठ स उच्चारण किया। इसी 'रतनसुत्त' का उच्चारण करत हुए आनद ने अन्य लिच्छवि कुमारो के साथ नगर के चारों दिशाओ मे भ्रमण किया। 'रतनसुत्त' के पाठ से वैशाली नगरी से भी प्रेतात्माए तथा महामारी का प्रभाव समाप्त हो गया। इस के पश्चात वैशाली के निवासी भगवान बुद्ध के दर्शन हेतु सथागार म एकत्रित हुए। महावस्तु की कथा के अनुसार भगवान बुद्ध ने 84000 की विशाल भीड म 'रतनसुत' का प्रवचन किया।[102] यह सुत्त 'गगारोहण सुत्त' के रूप म भा जाना जाता है।[103] यह सुत्त महावस्तु[104] मे 'स्वस्त्ययन गाथा' के रूप मे वर्णित है। कहा जाता है।[105] कि भगवान बुद्ध लगातार सात दिन तक सुत्त का प्रवचन करते हुए दो सप्ताह वैशाली म ठहरे थे। प्रतिदिन 84000 लोग[106] सत्य का अनुभव करते थे। इसके बाद भगवान बुद्ध वैशाली से राजगृह लौट आए। राजगृह लौटने पर बिंबसार ने विशाल उत्सव का आयोजन किया।

भगवान बुद्ध ने इस यात्रा मे प्राप्त सम्मान का वर्णन करने के लिए शखजातक का पाठ भिक्खुओ के समक्ष किया।[107]

भगवान बुद्ध के इस प्रथम वैशाली दर्शन की निश्चित तिथि ज्ञात नही है। बुद्धवस अट्ठकथा[108] के अनुसार भगवान बुद्ध बोधि प्राप्त के पाचवें वर्ष वैशाली गए थे और वर्षाकाल व्यतीत किया था। लेकिन उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भगवान बुद्ध शीघ्र ही राजगृह लौट आए थे। सभवत बुद्धवस अट्ठकथा मे वर्णित वैशाली दर्शन के पूर्व बोधि प्राप्त के पश्चात् तीसरे वर्ष उक्त प्रथम वैशाली दर्शन किया था।[109] डिक्शनरी आफ पाली प्रापरनैम्स[110] के रचयिता का मत है कि यह घटना उस वर्ष की है जब राजा बिंबसार ने भगवान बुद्ध को वेणुवन दान मे दिया था, और भगवान बुद्ध वहा दो माह ठहरे थे वर्षाऋतु के प्रारम्भ मे लिच्छवियो के अनुरोध पर वैशाली दर्शन को गए और रतनसुत्त का प्रवचन किया। इसका अर्थ यह हुआ कि बोधि प्राप्ति के प्रथम वर्ष की यह घटना है। लेकिन यह सोचना अनुचित नही होगा कि भगवान बुद्ध को बोधि प्राप्ति के पश्चात लोकप्रिय होने मे कुछ समय अवश्य लगा होगा, जिसके पश्चात् लिच्छवि उनसे प्रभावित हुए होगे।[111]

इस प्रकार भगवान बुद्ध के प्रथम वैशाली दर्शन मे ही लिच्छवि उनसे बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। उनका प्रवचन सुनने के लिए अपार जनसमूह सथागार मे इकट्ठा होता था। भगवान बुद्ध के पदार्पण करते ही वैशाली क्षेत्र मे वर्षा हुई तथा अकाल के कारण फैली महामारी समाप्त हो गई, इससे लिच्छवियो को भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व मे तेज दिखाई पडा होगा जिससे वे उनके प्रशसक बन गए। भगवान बुद्ध भी लिच्छवियो की सपन्नता, सौंदर्य तथा गणतांत्रिक मूल्यो में दृढ आस्था आदि के कारण बहुत अधिक प्रेम करते थे तथा सर्वथा उन्नति की कामना रखते थे। लिच्छवियो की तुलना वे त्रयस्त्रिश (तैतिस) देवता से करते थे तथा उनके कल्याण के लिए सर्वथा सोचते रहते थे।[112] एक बार वैशाली के सारनद चैत्य पर विहार करते हुए वज्जियो के 'सात अपरिहानिया धम्मा' का उल्लेख करते हुए भगवान बुद्ध ने कहा कि वज्जि लोग जब तक इन सात अपरिहानिया धम्मा' का पालन करते रहेगे, उनका अपकर्ष नहीं होगा।

लिच्छवियो की इन्ही सात महत्त्वपूर्ण विशेषताओ को भगवान बुद्ध ने बौद्ध सघ क भिक्खुआ को सघ की निरतर प्रगति के लिए आवश्यक बताया। भगवान बुद्ध लिच्छवियो के कठिन परिश्रम को देखकर उनकी प्रशसा किया करते थे।[113] भगवान बुद्ध का लिच्छवियो पर इतना अधिक प्रभाव हो गया था कि दुष्ट तथा अनुत्तरदायी चरित्र के लिच्छवि युवक भी बुद्ध के समक्ष श्रद्धा से खडे रहते थे। एक बार भगवान बुद्ध वैशाली के निकट महावन मे एक वृक्ष के नीचे ध्यान मुद्रा

मे पद्मासन मे बैठे थे। कुछ उच्छृ खल लिच्छवि युवक हाथ मे धनुष लिए आखेट करते हुए उधर से निकले। भगवान बुद्ध को देखते ही उन युवको ने अपने धनुष फेंक दिए और कुत्तो के झुड को दूर भेजकर भगवान बुद्ध के समीप चुपचाप हाथ जोड कर बैठ गए। महानाम भगवान बुद्ध का प्रभाव देखकर आश्चर्यचकित रह गया।[114] भगवान बुद्ध का लिच्छवियो के प्रति अत्यधिक स्नेह था इसका आभास इससे भी मिलता है कि जब भगवान बुद्ध अंतिम बार वैशाली छोडने लगे तो उन्होंने अपना प्रिय भिक्षा पात्र स्मृति के रूप मे लिच्छवियो को भेंट कर दिया।[115]

लिच्छवि वैसे तो सभी धर्मों को आदर की दृष्टि से देखते तथा उनके प्रचारको के प्रवचन सुनते थे।[116] लेकिन भगवान बुद्ध जब वैशाली मे होते तो अन्य धर्म के विचारको के प्रवचन तथा तपस्वियो की उपेक्षा करके भगवान बुद्ध के पास प्रवचन सुनने के लिए एकत्र होते थे तथा बौद्ध भिक्खुओ को ही अधिकाश लिच्छवि भिक्षा देते थे। इससे कभी-कभी अन्य मतो के प्रचारक क्षुब्ध होकर लिच्छवियो को भडकाने के लिए भगवान बुद्ध के विरुद्ध झूठे प्रचार भी करने लगने थे। लेकिन उनका कोई विशेष प्रभाव नही होता था। इस तरह का उदाहरण सिंह सेनापति के सबध मे देखते हैं जो जैन अनुयायी था। बाद मे बौद्ध उपासक बन जाने पर निगथ नातपुत्त के प्रचार भगवान बुद्ध के विरुद्ध अफवाहे गढकर प्रचार करने लगे।[117] इसी तरह अन्य बहुत से विरोधी उनके विरुद्ध प्रचार[118] करते घूमा करते और भगवान बुद्ध को वादविवाद करने के लिए चुनौती दिया करते थे। लेकिन भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व तथा विद्वतापूर्ण तर्क के समक्ष नतमस्तक होकर बहुत से विरोधी उनके अनुयायी बन गए। इस तरह का उदाहरण हम निगथ पुत्त सच्चक के सबध मे देखते हैं जिसने 500 लिच्छवियो की एक सभा मे भगवान बुद्ध को तर्कवितर्क करने के लिए चुनौती दी, और तर्क मे पराजित होने पर भगवान बुद्ध का शिष्य बन गया।[119]

इस प्रकार भगवान बुद्ध वैशाली मे रहते हुए अनेक प्रवचन महालि सुत्त, महासीहनाद सुत्त, चुल्लसच्चक सुत्त, महासच्चक सुत्त, तेविज्ज सुत्त, वच्छगोत्त सुत्त, सुनक्खत्त सुत्त तथा रतन सुत्त किए।[120] परिणामस्वरूप बहुत से वैशाली के निवासी बौद्ध अनुयायी बनने लगे। जिज्ञासु लिच्छवि भगवान बुद्ध से प्रायः दर्शन सबंधी प्रश्न जैसे निर्वाण[121], निर्वाण प्राप्त करने का अर्थ,[122] दोस, मोह, अदोस, अमोह,[123] तथा शील तप[124] आदि की शुद्धता के प्रभाव पर प्रश्न करते और हृदय पर प्रभाव डालने वाला उत्तर पाकर बौद्ध धर्म के अनुयायी बन जाते थे। एक बार भगवान बुद्ध जब सारदद चैत्य पर विहार कर रहे थे, 500 लिच्छवि उनके दर्शन के लिए आए। उन्होने भगवान बुद्ध से दर्शन सबधी पाच प्रकार के दुर्लभ बहुमूल्य रत्न —हत्थि रतन, अस्स रतन, मणि रतन, इत्थि रतन

तथा गहपति रतन पर प्रश्न किया। भगवान बुद्ध ने इन पांच दुर्लभ रत्नों पर बोलते हुए अप्रत्याशित ढग से उनकी समस्या का समाधान किया।[125] एक अन्य अवसर पर विभिन्न रग के वस्त्र, आभूषण तथा साज-सामान से सुसज्जित अश्वों के साथ 500 लिच्छवियो ने भगवान बुद्ध की पूजा करने के लिए आए। इन्ही लिच्छवियो के बीच मे पिंगयानी नामक ब्राह्मण भी बैठा था। उसने भगवान बुद्ध की प्रशसा की गाथा सुनाई जिससे प्रभावित होकर पाच सौ लिच्छवियो ने उस पांच सौ उत्तरीय वस्त्र उपहार मे दिए। पिंगयानी ने इसे भगवान बुद्ध को अर्पित कर दिया भगवान बुद्ध इस उपहार को स्वीकार कर पाच दुर्लभ रत्नो पर प्रवचन किए।[126]

भगवान बुद्ध लिच्छवियों के चरित्र निर्माण मे भी सहयोग दिया करते थे। एक निर्दयी क्रूर तथा दुष्ट लिच्छवि कुमार जब अपने सगे सबधी मित्र के समझाने पर सही रास्ते पर नही आया तो वे उसे भगवान बुद्ध के पास ले गए। भगवान बुद्ध का उपदेश सुनकर उसका हृदय-परिवर्तन हो गया।[117]

बौद्ध धर्म के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण सशोधन भी वैशाली मे हुआ था। वह था, नारी को सघप्रवेश की अनुमति और भिक्खुणी सघ की स्थापना। यह घटना भगवान बुद्ध के बोधिप्राप्त के पांचवें वर्ष की है। भगवान बुद्ध कपिलवस्तु से वैशाली आकर महावन के कूटागार मे विहार कर रहे थे। एक दिन भगवान बुद्ध की सौतेली मां महाप्रजापति गोतमी 500 शाक्य नारियो के साथ कपिलवस्तु से वैशाली आई और बौद्ध सघ मे सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त की। भगवान बुद्ध बौद्ध सघ मे नारी प्रवेश को उचित नही मानते थे, लेकिन अपने प्रिय शिष्य आनद के अनुरोध पर उन्होंने नारियों को सघ प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी लेकिन इसके साथ ही भिक्खु नारियो को आठ कठिन शर्तों (अट्ठ गरुधम्मा) का पालन करने का आदेश दिया।[128] वैशाली मे ही विनय पिटक के अनेक प्रकार से नए नियमों का निर्माण तथा पूर्व नियमो मे सशोधन हुआ।[129] यह उस समय के पाच प्रमुख नगरो श्रावस्ती, राजगृह, कौशाबी, वैशाली तथा कपिलवस्तु मे एक था जहा विनय के नियम बनाए गए थे।[130]

बौद्ध ग्रथो म बौद्ध मत के माननेवाले प्रमुख लिच्छवियो के नाम मिलते हैं इससे भी लिच्छवियो पर भगवान बुद्ध के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है। इनमे पुरुष स्त्री दोनो थे।[131] इन के नाम इस प्रकार हैं नदक (लिच्छवियो का माहमात्र), अजित (लिच्छवि सेनापति), सीहा (लिच्छवियो का सेनापति सिंह), दुम्मुख (लिच्छवि प्रमुख,) महालि, महानाम (सभवत अंबपाली का पिता), भद्दिय, अम्बसक्खर (लिच्छवि प्रमुख), साल्ह, अभय, पडितकुमारक, अजन वनिय थेर (वज्जि पुत्र), रमणीय कुटिकथेर (वैशाली निवासी), वियजह थेर (वैशाली का नागरिक), वसभथेर (लिच्छवि राजा के परिवार का सदस्य), वज्जि पुत्र थेर (वैशाली के अमात्य परिवार से सबधित),

वज्जि पुत्र थेर (वज्जि का पुत्र लिच्छवि परिवार स सबधित), कुटि विहारी थेर (वज्जि क्षेत्र का निवासी), वड्ढमान थेर (वैशाली के लिच्छवि राजा के परिवार से सबधित), विमल कोण्डञ थेर (बिवसार से उत्पन्न अबपाली का पुत्र), सीवाली थेर (महालि का भाई), अबपाली (राजगणिका), सीहा थेरी (सिंह सेनापति की बहन), वासिट्ठी थेरी, जयती, सुप्पवासा कोलिय धीता (महालि की पत्नी), सच्चा, लोला, अववादका, पटाचारा (सच्चक की बहनें, डग्ग (वैशाली का गृहपति), किरपटिक (वैशाली गृहपति), कोसल विहारी थेर (वैशाली निवासी), वल्लिय थेर (वैशाली के ब्राह्मण परिवार से सबधित), सुयाम थेर (वैशाली के ब्राह्मण परिवार से सबधित), रोहिनी थेरी (वैशाली के ब्राह्मण की पुत्री), विमला थेरी (सभवत अबपाली की पुत्री), थेरिका (वैशाली के एक परिवार से सबधित) आदि।[132]

वैशाली क्षेत्र के प्रसिद्ध बौद्ध स्थल

वैशाली आने पर भगवान बुद्ध जहा ठहरते तथा प्रवचन करते थे वे स्थान कालातर मे पवित्र बौद्ध स्थल के रूप मे विख्यात हो गए। इनका उल्लेख बौद्ध ग्रथो मे हुआ है। कुछ स्थानो का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

बौद्ध स्थलो म सबसे अधिक प्रसिद्ध महावन था जो वैशाली सीमा स हिमालय तक फैला था।[133] इसी महावन मे शिखर युक्त स्तम्भो पर बना कूटागार था जिसका मुख उत्तर से दक्षिण की ओर था।[134] फाह्यान ने इसे दो गलियारे वाला भवन कहा है, जो विमान सदृश था।[135] कूटागार के समीप मर्कटह्रद (बदर पोखर) सरोवर था[136] जिसकी पहचान आधुनिक उकरौल गाव मे स्थित रामकुण्ड सरोवर से की जा चुकी है। मर्कटह्रद के समीप अशोक का बनवाया सिंह शीर्ष युक्त स्तभ है जिसके सन्निकट आनद के अर्द्धाग अवशेष पर बना स्तूप है।[137] स्तूप से थोडी दूर पर वह स्थान है जहा बदरो ने भगवान बुद्ध को शहद लाकर दिया था।[138] सरोवर के उत्तरपूर्व कोण पर ह्वेन त्साग को बदर की एक आकृति भी मिली थी।[139]

भगवान बुद्ध का दूसरा प्रिय स्थान वैशाली के चारो ओर स्थित चैत्य थे। बौद्ध ग्रथो मे उदेन चैत्य, चापाल, मर्कटह्रद चैत्य, गोतमक चैत्य, सप्तावरक चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य, सारदद चैत्य का उल्लेख हुआ है। इन चैत्यो की स्थित के विषय मे अप्रत्यक्ष सूचना बौद्ध ग्रथो मे मिलती है। वैशाली म कदरमसुक नामक एक नग्न तपस्वी रहता था, जो सात आजीवन व्रत का पालन करता था जिनमे से एक व्रत यह भी था कि वह पूर्व म उदेन चैत्य, दक्षिण मे गोतमक चैत्य, पश्चिम मे साप्तावक चैत्य तथा उत्तर मे बहुपुत्रक चैत्य के आगे कभी नही जाएगा।[140] राहुल साकृत्यायन का मत है कि ये चारो चैत्य वैशाली के चारो दिशा मे वहा

स्थित थे जहा बाद म चार चौमुखो महादेव मदिरो का निर्माण किया गया, जिनमे से एक चौमुखी महादेव का मदिर वाणिज्य ग्राम तथा कपनछपरा म प्राप्त हुए हैं।[141] सारदद तथा चापान चैत्य सभवत कटागार के थोडी दूर पर ही कही स्थित थे क्योकि भगवान बुद्ध कभी-कभी कूटागार से टहलते हुए सारदद।[142] तथा चापाल[143] चैत्य पहुच जाते थे। इन्ही दोनो के सन्निकट मर्कटह्द चैत्य भी था जो मर्कटह्द तीर[144] के किनारे स्थित था।

उपरोक्त प्रमुख स्थलो के अतिरिक्त अन्य कुछ महत्त्वपूर्ण स्थल वैशाली क्षेत्र मे थे जिनका सबध बौद्ध मत स था। इनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1 **अवपाली बन** यह अवपाली द्वारा भगवान बुद्ध को भेंट किया गया आम्रवन था।[145] इस उपवन मे भगवान बुद्ध ने कुछ सुत्रो का प्रवचन भी किया था।[146] सयुक्त निकाय मे अनिरुद्ध तथा सारिपुत्र के मध्य एक वार्तालाप का उल्लेख मिलता है जो इस बन मे हुआ था।[147] फाह्यान के विवरण के अनुसार यह नगर के दक्षिण तीन ली की दूरी पर स्थित था। पाटलिपुत्र से आने वाले मार्ग के पश्चिम म यह पडता था।[148]

2 **बालिका छवि या बालुकाराम** महावस्तु के अनुसार बौद्ध सघ म सम्मिलित होने वाली महिला के नाम पर इसका नाम बालिका छवि पडा।[149] विनय पिटक म इस स्थान का नाम वालिकाराम लिखा है।[150] जिसकी पहचान वालुकाराम से की जा सकती है। यहा भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के सौ वर्ष पश्चात द्वितीय महासगति का आयोजन हुआ था। ह्वेन त्साग के विवरण के अनुसार महासगीति के स्थान की याद म अशोक ने एक स्तूप बनवाया, जो सिंह स्तभ के समीप था।[151]

3 **बेलुवगामक** भगवान बुद्ध ने अतिम वर्षावास इसी गाँव म किया था।[152] यह सभवत वैशाली नगरी के दक्षिण द्वार के समीप था।[153]

4 **कोटिगाम** यह गगा से लगभग एक गव्यूति की दूरी पर[154] स्थित वज्जियो का गाव था। इसके बारे म पर्याप्त मतभेद है। भगवान बुद्ध की अतिम यात्रा मे यह स्थान गगा और वैशाली के मध्य प्रथम विश्राम स्थल था।[155] दूसरा विश्राम स्थल नादिक था। सभवत वतमान हाजीपुर म या उसके सन्निकट यह स्थान था।[156] भगवान बुद्ध ने यहा वज्जि सुत्त का प्रवचन भी किया था।[157]

5 **नादिक (ञातिक)** यह कोटिगाम (हाजीपुर) और वैशाली के मध्य स्थित था।[158] दीघ निकाय की टीका म बुद्ध घोष कहते है कि नादिका सरोवर के सन्निकट होने के कारण इसे नादिक कहा जाने लगा।[159] रिस डेविडस् के अनुसार नादिक (या ञातिक जिससे महावीर स्वामी सबधित थे) कुल के लोगो के रहने के कारण इसका नाम नादिक पडा।[160] स्मिथ के अनुसार नादिक गाम

लालगज (हाजीपुर से 12 मील) के समीप स्थित होना चाहिए।[161] महावीर स्वामी का जन्म कुण्डपुर मे हुआ था जो वैशाली के उत्तर मे स्थित था, जब कि लालगज वैशाली के दक्षिण मे है। अत यह सुझाव दिया जा सकता है कि सभवत कुछ ज्ञातृक क्षत्रिया का परिवार अन्य क्षत्रिय परिवारो के साथ क्षत्रिय कुण्डपुर मे भी रहता था। नादिक (ञातिक) गाव मे केवल ज्ञातक क्षत्रिय ही रहते थे जिससे इनका नाम नादिक पडा।

नादिक (ञातिक) म भगवान वुद्ध ने कई सत्ता का प्रवचन किया था।[162] ञातिक (नादिक) मे भगवान वुद्ध के कई अनुयायी थे।[163] नादिक के समीप ही गोसिग साल वन था जहा भगवान वुद्ध ने चूल गोसिग सुत्त तथा महा गोसिग सुत्त का प्रवचन किया।[164] सभवत यह वन वैशाली तक फैला था या महावन का एक भाग था।

उपरोक्त सभी स्थान लिच्छवियो के राज्य मे थे। इन स्थानो से वैशाली क्षेत्र मे बौद्ध धर्म के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है। इन स्थानो के अतिरिक्त वैशाली नगरी के बाहर कुछ गाव भी थ जहा भगवान वुद्ध अतिम यात्रा म गए थे। भगवान वुद्ध वैशाली नगरी के पश्चिम द्वार[165] स निकल कर यात्रा मे जब चले तब क्रमश भण्ड गाम, हत्थिगाम, अवगाम, जम्बुगाम तथा भोग नगर पडे थे।[166] आज इन स्थानो की पहचान करना कठिन है। सभवत यह सभी स्थान वैशाली नगरी के पश्चिम म स्थित थे। इन स्थानो क पश्चात भगवान वुद्ध पावा पहुचे थे। पावा नगर की पहचान म भी विद्वानो म पर्याप्त मतभेद है।[167]

वैशाली बौद्ध सगीति

भगवान वुद्ध के परिनिर्वाण क ढाई शताब्दिया के अदर ही बौद्ध ग्रथा म तीन बौद्ध सगीतिया के वणन मिलते हैं। बौद्ध ग्रथा को पढने से पता चलता है कि बौद्ध धर्म का जैसे जैसे विस्तार होता गया उसम नई नई समस्याए जन्म लेने लगी। बौद्ध सघ म धर्म क विरुद्ध आचरण करने वाले तथा बौद्धमत के विरोधी मता के अनुयायी भिक्खु बनकर प्रविष्ट हो गए, उन्हाने भगवान वुद्ध क द्वारा प्रतिपादित नियमा की अवहेलना कर अपनी सुविधानुसार सघ के नियमो को परिवर्तित कर लिया। इस प्रवृत्ति का बहुत ज्यादा विस्तार हो जाने पर बौद्ध भिक्खुओं का दो वर्ग हो जाता था। इन दो वर्गों के मतभेदा को समाप्त करने के लिए इन बौद्ध सगीतियो का आयोजन किया जाता था। वैशाली म भगवान वुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात द्वितीय सगीति का आयोजन इसी प्रकार के दो वर्गों के मतभेद के कारण हुआ था। भिक्खु सघ म ऐसे लोग, जिनमे आध्यात्मिक साधना की सच्ची लगन का अभाव था, तथा जो सघ के नियम एव उसकी आचार सहिता से सतुष्ट नही थे, भगवान वुद्ध द्वारा प्रतिपादित नियम की अवहेलना करनी शुरू

कर दी। ऐसे वर्ग के भिक्खुओ ने वैशाली की बौद्ध सगीति मे दस निषेधादेशो को रद्द करने का प्रयत्न किया।[168] यह भी कहा जाता है कि कुछ भिक्खु इन निषिद्ध कर्मों का प्रत्यक्ष रूप से आचरण करने लगे। इस बात के भी सकेत मिलते हैं कि कुछ भिक्खु भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट आदर्शों के पालन मे असमर्थ रहे। इसके दो प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम यह कि सभी भिक्खुओ मे चरित्र की दृढता का अभाव दूसरा, धर्मानुयायियो की अनिभवित जिसमें भिक्खुओ को सुखसुविधा की प्रचुर सामग्री अनायास मिलती रही। चुल्ल वग्ग[169] तथा जातको के विवरण मे प्रतीत होता है कि कुछ अर्थलोलुप भिक्खु धन सग्रह करने लगे। मच्छ उदान जातक (288) मे एक श्रामण द्वारा अपने उपज्झाय के एक सहस्र कर्षापणो को हडप लेने का उल्लेख मिलता है। कतिपय भिक्खु ऐश्वर्य सामग्री का उपभोग करने लगे,[170] जो भिक्खु जीवन के आदर्शों के विपरीत था। चुल्ल वग्ग[171] मे उल्लेख मिलता है कि कीटागिरी विहार के भिक्खु पुष्प मालाए बनाकर दर्शन के लिए प्रतिष्ठित कुलो मे आई महिलाओ तथा नवयुवतियो को देते थे। वे कुसमय भोजन तथा मद्यपान करते तथा नृत्य, गीत, वादन, खेलकूद, द्युत, रथ दौड, तीरदाजी, हाथी घोडे की सवारी, तलवार चलाना, मल्ल युद्ध तथा मुक्केबाजी आदि मे भाग लेते थे। इस विहार मे नर्तकियो को भी आमन्त्रित किया जाता था।

इस प्रकार भिक्खु सघ मे एक वर्ग सुखसुविधाओ को बढाने मे व्यस्त रहने लगा। जब सच्चे भाव से बने भिक्खुओ ने इसका विरोध किया तो मतभेद बढा, तब शायद तर्क वितर्क करने के लिए वैशाली मे द्वितीय महासगीति का आयोजन किया गया होगा।

बौद्ध परपरानुसार भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के अनतर सौ वर्षों तक तो बौद्ध धर्म का मूलरूप अपरिवर्तित रहा, परतु भिक्खुओ के एक वर्ग मे निरतर बढती जा रही अनियमितायो के कारण बौद्ध धर्म के मूलरूप को परिवर्तित करना पडा। चुल्लवग्ग तथा दीपवश के अनुसार वैशाली मे बारह हजार भिक्खुओ ने एकमत होकर घोषित किया कि थेरवाद (धर्म और विनय के नियमो का सग्रह) के दस निषेधो का उल्लघन धर्म सगत है। इस प्रकार के नियम विरुद्ध आचरण करने की प्रवृति के निवारण हेतु, वैशाली के कूटागार मे बडी सख्या मे एकत्र होकर भिक्खुओ ने नियम भग करने वाले वज्जिपुत्र भिक्खुओ को सघ से बहिष्कृत कर दिया। इस पर बहिष्कृत भिक्खुओ ने एक सगीति का आयोजन किया।[172] यह महासगीति वालुकाराम विहार (बालिका छवि) मे हुआ था जिसम 700 श्रेष्ठ बौद्ध भिक्खु समिलित हुए थे। इस सगीति की सपूर्ण व्यवस्था वैशाली निवासी 'अजित' नामक भिक्खु ने की थी। सगीति की अध्यक्षता भी वैशाली निवासी 'सर्वकामी' नामक भिक्खु ने ही की थी। इस सगीति मे वैशाली के भिक्खुओ ने धर्म साधना और विनय के नियम मे इन नई विधियो को लागू

करने का प्रयत्न किया । वैशाली के भिक्खुओ ने बहुमत से इन नई विधियो को प्रतिपादित किया । इन सगीति के पश्चात बौद्ध सघ मे भेद बढता गया और भविष्य मे नए मतो का प्रादुर्भाव हुआ । वैचारिक मतभेद की इस प्रवृति का अत करने के लिए अशोक ने अपने शासन मे कडे कदम उठाए। अशोक ने अपने राज्य-काल मे पाटलिपुत्र मे बौद्धो की तृतीय सगीति का आयोजन किया । सघ भेद को समाप्त करने के उद्देश्य से उसने अपने धर्मलेख के माध्यम से यह राजाज्ञा प्रसारित की कि भिक्खु अथवा भिक्खुणी जिसे सघ भेद का दोषी पाया जाएगा उसे सघ से निष्कासित कर दिया जाएगा ।[173]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लिच्छवि प्रगतिशील विचारो के थे। उन्होने प्राचीन काल से चली आ रही रूढियो को त्याग कर नए विचारो को ग्रहण किया । लेकिन इसके साथ ही प्राचीन धर्म के अनुयायियो, साधुओ तथा चैत्यो के प्रति आदर भाव रखा । किसी विशेष मत को मानने के लिए किसी शक्ति अथवा प्रभाव का प्रयोग नही किया गया । वैशाली मे विभिन्न मतो के अनुयायी प्रेमभाव से मिलते थे, तथा साथ साथ रहते थे । एक भी ऐसी घटना का उल्लेख नही मिलता जिससे विदित हो कि दो मतो के अनुयायियो या तपस्वियो के मध्य सघर्ष हुआ हो । लेकिन वे दूसरे मतो के प्रचारको से दर्शन सबधी प्रश्न पर तर्क वितक करते थे, और तर्क से पराजित हो जाने पर एक मत से दूसरे मत के सघ म समिलित हो जाते थे । बौद्ध सघ मे समिलित होने वालो मे एक बडी सख्या ऐसे ही लोगो की थी । इसी कारण वैशाली मे बौद्ध अनुयायियो की सख्या मे अप्रत्याशित ढग म वृद्धि हुई। वैशाली मे द्वितीय बौद्ध सगीति का आयोजिन इसी बात की पुष्टि करता है ।

संदर्भ तथा टिप्पणियां

1 बर्थ, रिलिजस आफ इडिया, पृ 40 41
2. कैब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया (कैब्रिज, 1935), भाग 1, पृ 150, रघुनाथ सिंह, बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ 98 और आगे
3 डायलाग्स, भाग 2, पृ. 79 85
4. बील, ट्रेवल आफ ह्वेन त्साग (कलकत्ता, 19*8) भाग 2, पृ. 308
5 डायलाग्स, पृ 80, ला, क्षत्रिय क्लान्स (1922), पृ 81.
6 नलिनाक्ष दत्त, अर्ली हिस्ट्री आफ द स्प्रेड आफ बुद्धिज्म, पृ 155
7. वैशाली, पृ. 243
8 रघुनाथ सिंह, बुद्ध कथा, पृ. 98
9. द्रष्टव्य, प्रशासन.

10 रघुनाथ सिंह बुद्ध कथा, पृ 50 तथा पृ. 53 टिप्पणी, योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 248
11 सुमगल विलासिनी (बर्मी सस्करण), पृ 103 105
12. नलिनाथ दत्त वही, पृ 156
13 वैशाली पृ 245
14 डायलाग्स पृ 110 रघुनाथ सिंह, बुद्ध कथा, पृ 820
15 डायलाग्स, पृ 80 टिप्पणी
16 वही, पृ 110, टिप्पणी
17 सै बु ई, भाग 155, पृ 36, 110, होर्न्ले, उवासगदसाओ, भाग 2, टिप्पणी 4.
18 वै अभि ग्र, पृ 25
19 नलिनाथ दत्त, वही, पृ 156
20 वै अभि ग्र, पृ 25
21 अ दत्त, वही, पृ 156
22 अगुत्तर निकाय, भाग, 3, पृ 236-239, वैशाली पृ 244
23 वही, पृ 239 240, दत्त, वही, पृ 156
24 थेर गाथा, अट्ठ कथा, भाग 1, पृ 292 और आगे वैशाली, पृ 244.
25 महावश, 5 104 और आगे, दीपवश, 4 28 और आगे, 5 77 और आगे (विशेष विवरण के लिए देखिए डि प्रा ने, भाग 1, पृ 1076).
26 अपादान, 1 76 और आगे
27 थेरी गाथा, श्लोक 271 290
28 वही
29 अगुत्तर निकाय, 3 पृ 276 277
30 डायलाग्स, 1, पृ 220 222, द बुक आफ किनड्रेड सेइग, 1 पृ 285-303
3 डायलाग्स 1 पृ 221
32 योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 246
33 बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ 148 (मदनमोहन सिंह)
34 महावग्ग, 1/15/1, सै बु ई, 13, पृ 118
35 महावग्ग, 1/23/1, रघुनाथ सिंह बुद्ध कथा, पृ 98
36 मज्झिम निकाय, 1, पृ 481 483
37 योगेंद्र मिश्र वैशाली, पृ 247, मज्झिम निकाय, 1, पृ 481, 483 489, सयुक्त निकाय 4, पृ 401
38 पचसूदनी (मज्झिम कमेंटरी) 2 पृ 673
39 पाटिक सत्त (डायलाग्स, 3 पृ 16 और आगे
40 वही, जालिय एक परिव्राजक था जिसे भगवान बुद्ध ने जालिय सुत्त का उपदेश दिया (डाय 1, पृ 159 160)
41 सयुक्त निकाय, 4 पृ 401 और आगे
42. व नि 4 पृ 261 और आगे
43 चुल्ल कालिंग जातक (301)
44 पेतवत्थु 50 पेतवत्थु अट्ठकथा, 229
45 समन्तपासादिका, 4 पृ 937 पेतवत्थु अट्ठकथा, 230.

46 द्रष्टव्य, पीछे देखिए
47 द्रष्टव्य, सदर्भ 4
48 विजेंद्र सूरि, तीर्थंकर महावीर, भाग 1, पृ 82, ला, सम जैन कैनोनिकल सूत्र (बम्बई, 1949), पृ 101, जे सी जैन, लाइफ इन एंशिएट इंडिया (बबई, 1947) पृ 297, राहुल सांकृत्यायन, दर्शन दिग्दर्शन, पृ 492, आवश्यक नियुक्त, पृ 42, श्लोक, 304 मे स्पष्ट रूप से महावीर स्वामी का जन्म स्थान कुण्डपुर' बताया गया है
49 के भुजबली शास्त्री जैन सिद्धात भास्कर, भाग 10, पृ 60 दिगबर जैनियो का आज भी यही मत है कुण्डलपुर के जैन मदिर मे बहुत सारी पुस्तकें रखी हैं, जो काफी बाद की लिखी हैं
50 हि पा. प्रा ने, भाग 1, पृ 976, 723
51 सिनो इडियन स्टडीज, भाग 1, खण्ड 4, पृ 195 (तीर्थंकर महावीर, भाग 1, पृ 85 पर उद्धृत)
52 एंशिएट ज्याग्रफी आफ इडिया पृ 658
53 विजेंद्र सूरि, तीर्थंकर महावीर, भाग 1, पृ 85, अन्य बहुत से भारतीय तथा पाश्चात् विद्वानों का भी यही मत है, विस्तृत विवरण के लिए देखिए, योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 214 235, वासुकुण्ड में जहां महावीर स्वामी ने चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को जन्म लिया और कुमार काल के 30 वर्ष व्यतीत किया था तथा वैराग्य उत्पन्न होने पर ज्ञातृवन खण्ड में प्रवज्या धारण की थी, वहा शिलाखण्ड स्वर्गवासी भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा राजेंद्र प्रसाद द्वारा रखा गया
54 विभिन्न विद्वानों के मत के लिए देखिए मुनिश्री नगराजजी, महावीर और बुद्ध की सम-सामयिकता (आत्माराम एण्ड सस नई दिल्ली, 1968) तथा योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 194 212 (द डेट आफ महावीर)
55 मज्झिम निकाय, साम गाम सुत्तत, 3 1 4
56 मुनिश्री नागराजजी, महावीर स्वामी और बुद्ध की समसामयिकता (दिल्ली, 1968) पृ. 51 54
57 वही, पृ 54 महावीर स्वामी के निर्वाण स्थान 'पावा' की पहचान के सबध में भी पर्याप्त मतभेद है जैनियों को पारपरिक मान्यता के अनुसार महावीर का निर्वाण पटना जिले के अतर्गत राजगृह के समीपस्थ पावा में हुआ था यह दक्षिण बिहार में है लेकिन राहुल सांकृत्यायन ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया कि पावा' उत्तरी बिहार मे स्थित होनी चाहिए, क्योंकि कल्पसूत्र, 128 के अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण के अवसर पर मल्लों और लिच्छवियो के अठारह गणराजा उपस्थित थे यदि दक्षिण बिहार की पावा उनका निर्वाण स्थल होता तो यह कैसे सभव होता कि मल्ल और लिच्छवि गणराजा अपने मूल प्रदेश में उपस्थित रहते, अत महावीर स्वामी का निर्वाण स्थल 'पावा गगा के उत्तर में होना चाहिए राहुल सांकृत्यायन के अनुसार वर्तमान गोरखपुर जिले के अतर्गत 'पपहुर' नामक ग्राम, प्राचीन 'पावा' हो सकता है क्योंकि लिच्छवियो, मल्लो का क्षेत्र उत्तरी बिहार रहा था जैन लोगो ने प्राचीन परपरा को भूलकर पटना जिलातर्गत पावा को मान लिया है (वही, पृ 15-16)
58 ज बि रि सो, भाग 13, पृ 240 246 राधाकुमुद मुकर्जी ने भी काल निर्णय में जायसवाल के मत को अक्षरश अपनाया (हिंदू सभ्यता, पृ 216, 223, 224), जिसके

अनुसार महावीर का निर्वाण काल 546 ई पू तथा भगवान बुद्ध का निर्वाण काल 544 ई पू माना है (मुनिश्री नागराज जी, वही, पृ 30 पर उद्धृत)
59 द्रष्टव्य, टिप्पणी, 53
60 सै बु ई भाग 22, पृ 79 87
61 वही, पृ 263
62 मदनमोहनसिंह, वही, पृ 112
63 सै बु ई, भाग 22, पृ 264
64 ला महावीर हिज लाईफ एण्ड टीचिंग, पृ 7
65 द्रष्टव्य प्रारंभिक इतिहास का अध्ययन सूत्रकृताग 1 13 10 (सै बु ई, 45 पृ 321) में वैशाली क्षेत्र में 6 क्षत्रिय कुलो का उल्लेख हुआ है जिनमे ज्ञातृक भी एक था
66 वैशाली पृ 238
67 ला, सम जैन कनोनिकल सूत्र (बबई 1949), पृ 102 वैशाली, पृ 239 बुद्ध ने केवल दो वर्षाऋतु वैशाली में व्यतीत किए थे
68 बौद्ध चेटक के बारे में कुछ नहीं सोचते थे क्योंकि उनका प्रभाव महावीर स्वामी के हित में प्रयोग किया जाता था (जैकोबी, सै बु ई भाग 22, पृ 13)
69 रिज डेविड्स एण्ड ओल्डनबर्ग विनय टेक्स (अनु) सै बु ई, भाग 17 पृ 108 और आगे
70 जकोबी, जैन सूत्र, पृ. 11
71 मज्झिम निकाय 1, पृ 227-251
72 वही
73 कल्पसूत्र, 128 (सै बु ई, भाग 22 पृ 266)
74 शाह सी जे, जैनिज्म इन नार्दन इंडिया पृ 23
75 अ मदन मोहन सिंह बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ 118
ब वही, पृ 118 बाशम, हिस्ट्री एण्ड डाक्ट्रिन आफ द आजीविक्स, पृ 95.
76 योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 241, बाशम, आजिविकाज (लदन 1951) पृ 103, 107
77. योगेंद्र मिश्र वही पृ 241 बाशम वही, पृ 23 33
78 भगवती सूत्र, 15 550 तथा 674
79 लेफमैन (सपा), ललितविस्तर, पृ 146
80 बाशम, वही, पृ 27 33
81 डि पा प्रा नेम एम, बी गौतम
82 योगेंद्र मिश्र वैशाली पृ 242
83 बाशम, द आजिविकाज, पृ 38 तथा 44
84 वही, पृ 95
85 जातक, 6, पृ 222 225
86 चुल्लवग्ग 11/1/1
87 विनय पिटक, 4, पृ 91
88 आजविकाज, पृ 137
89 दायलाग 3 पृ 14 और आग

90 आजिविकाज, पृ 103
91 दीघ निकाय, 1, पृ 52-53 (समगफल सुत्त), मदनमोहन सिंह, वही, पृ 120 तमिल-साहित्य में इसका संबंध आजिविक मत से बतलाया गया है
92 संयुक्त निकाय, 5, पृ 126
93 वही, 3 पृ 68
94 वही, 4, पृ 398
95 रधुनाथसिंह, बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ 95, 103, 105
96 इस तरह का उदाहरण हम सिंह सेनापति के संबंध में देखते हैं जो पहले जैन मत का अनुयायी था, बाद में जब भगवान बुद्ध का अनुयायी हो गया तो निगन्थ नाथ सुत्त के अनुयायी भगवान बुद्ध के विरुद्ध झूठे प्रचार करने लगे (दत्त, अर्ली हिस्ट्री आफ द स्प्रेड आफ बुद्धिज्म, पृ 158) विनय टेक्स, सैं बु ई, भाग 17, पृ 116.
97 इस तरह का उदाहरण एक आजीविक भिक्षु के संबंध में मिलता है जिसे आवश्यकतानुसार भिक्षा न मिलने पर बौद्ध भिक्षु को अतिरिक्त प्राप्त भिक्षा में से भिक्षा ग्रहण की (विनय पिटक, 4, पृ 91).
98 डायलाग्स, 2, पृ 110.
99 वही, पृ 110
100 डि पा प्रा नेम, पृ 942
101 जोन्स (अनु) महावस्तु भाग 1, पृ 253 300, वैं अभि ग्र, पृ 126
102 महावस्तु में वर्णित भगवान बुद्ध का वैशाली दर्शन के सारांश के लिए देखिए, वि च ला क्षत्रिय क्लान्स पृ 45 48
103 चलवंश, पा टें सो, 37 191
104 महावस्तु, 1, पृ 290 और आगे
105 धम्मपद अट्ठकथा (धम्मपद टीका), 3, पृ 196
106 प्रतिदिन इतनी ही संख्या में लोगों का इकट्ठा होना अतिश्योक्ति लगता है इसका आशय केवल यही लिया जाना चाहिए कि वैशाली के अधिकांश लोगों ने 'वतनसुत्त' का प्रवचन सुना
107 वि च ला, क्षत्रिय क्लान्स, पृ 48
108 डि पा प्रा नो, 2 पृ 940 पर उद्धृत
109 *ओ सी गांगुली, वैं अभि ग्र, पृ 14, बुद्ध चर्या, पृ 66-77, योगेंद्र मिश्र, वैशाली,* पृ 155
110 डि पा प्रा ने, 1, पृ 795 और टिप्पणी
111 यू एन घोषाल, वैं अभि ग्र, पृ 14, योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 148
112 राहुल सांकृत्यायन, वैं अभि ग्र, पृ 21, ओल्डनबर्ग, बुद्ध पृ 14
113 डायलाग्स पृ 79 80, झा, लिच्छवि, पृ 40
114 अंगुत्तर निकाय, पा टे सो, भाग 3, पृ 76
115 ज स इ अ रि (1880-81), भाग 16, पृ 8, वैं अभि ग्र, 146.
116 द्रष्टव्य, टिप्पणी, 19, इसके अतिरिक्त ह्वेनसांग भी लिखता है कि वैशाली में बौद्ध तथा बौद्धेतर दोनों मिलकर रहते हैं, विभिन्न धर्मानुयायियों के 10 20 देव मंदिर भी हैं

आदि ··(बील, ट्रैवेल आफ ह्वेनत्सांग (कलकत्ता, 1958), भाग 3, पृ 308)

117. दत्त, अर्ली हि आफ द स्प्रेड आफ बु , पृ 158, विनय टेक्स, से बु ई, भाग 17, पृ 116 : वैशाली की सड़कों पर कई निगंठ झूठा प्रचार किया करते थे कि सिंह सेनापति ने आज एक बड़ा सा बैल मार कर उसका भोजन श्रमण गौतम के लिए बनवाया है, श्रमण गौतम जानबूझकर मारे गए जानवरों का भोजन ग्रहण करते हैं

118. भगवान बुद्ध के प्रमुख प्रतिस्पर्धी महावीर तथा मक्खलि गोसाल थे इनके अनुयायी तथा प्रचारक भगवान बुद्ध के विरुद्ध तरह-तरह की अफवाह फैलाया करते थे जिनका विस्तृत विवरण बौद्ध ग्रंथों में मिलता है

119 चूलसच्चक सुत्तान, मज्झिम निकाय, भाग 1, पृ 227-237

120 हि पा प्रा ने , 2, पृ 943

121 संयुत्त निकाय, 4, पृ. 261 62

122. अंगुत्तर निकाय, 1, पृ. 220 222.

123 वही, 2, पृ 190-191

124 वही, 2, पृ 200-202

125. वही, 3, पृ 167-168

126 वही, 3, पृ 239-240

127 एकपण्ण जातक (कावेल) भाग 1, प 316, दि. च ला., वही, पृ. 96-98

128 वै अमि य , पृ 14, विनय पिटक (राहुल सांकृत्यायन द्वारा हिंदी में अनु , बनारस, 1935), पृ. 519-525

129 हि पा प्रा नेम, 2, प 942, विस्तृत विवरण के लिए देखिए, योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 156-157.

130 योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 156

131 इन व्यक्तियों के व्यक्तिगत परिचय के लिए देखिए, योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 159-172

132. वही, पृ 159,172

133 सुमंगल विलासिनी 'दीघ कमेंटरी पा टे सो , भाग 1, पृ 309, पपंचसूदनी (मज्झिम कमेंटरी) भाग 1, पृ 298

134 सुमंगल विलासिनी पा टे सो , भाग 1, पृ 311, दायलाग्स 1, पृ 197, टिप्पणी

135 बील, भाग 1, पृ 52

136. दिव्यावदान, पृ. 136, 200, महावस्तु, 1, 300; अवदान शतक (स्पेयर द्वारा सपा) पृ 8.

137 बील, बुद्धिस्ट रिकार्ड, भाग 2, पृ 67-68.

138 बन्दर द्वारा शहद निकालने का दृश्य सांची के एक स्तम्भ (प्लेट 26, चित्र 2, ट्री एंड सर्पेंट वर्शिप). बील का मत है कि संभवतः यह स्तम्भ वैशाली निवासियों की ओर से बनवाया गया था या दान में दिया गया था (बील, वही, पृ 68, टिप्पणी 74) इसी तरह नालंदा के संग्रहालय में रखी भगवान बुद्ध की एक मूर्ति के नीचे पाद (आधार) में बन्दर द्वारा एक कुएं से शहद निकालने का दृश्यांकन हुआ है, जिसका संबंध इसी अनुश्रुति से है

139. बील, वही, पृ 68

140. [illegible], 3, पृ 14.

141 द्रष्टव्य, टिप्पणी, 27
142 अंगुत्तर निकाय, 3, पृ 167-168
143 संयुत्त निकाय, 5, पृ 258, अंगुत्तर निकाय, 6, पृ, 308, 309, 311, डायलाग्स, 110-11, 125-126
144 महावस्तु 1, पृ 300
145 विनय पिटक, 1, पृ 231-233, लेकिन महावस्तु (1, पृ 300) के अनुसार यह भगवान बुद्ध के प्रथम वैशाली आगमन पर भेंट किया गया था
146 संयुत्त निकाय 5, पृ 141-148, अंगुत्तर निकाय, 4, पृ 100 106, महावस्तु, 2, पृ 293
147 संयुत्त निकाय, 5 पृ 301
148 विसेंट आर्थर स्मिथ, ज रा ए सो (1902), पृ 280-281 तथा 279
149 महावस्तु 1, पृ 300
150 विनय टेक्स, 3, पृ 408
151 वि आ स्मिथ, ज रा ए सो (1902), पृ. 281
152 यह भगवान बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति के दसवें वर्ष का था, सारत्थप्पकासिनी, (संयुक्त कमेंटरी) 3, पृ 198, उदान-अट्ठकथा, 322 तथा संयुक्त कमेंटरी, 3, पृ 172 के अनुसार भगवान बुद्ध वेलुव से वैशाली से सीधे रास्ते नहीं गए थे, बल्कि वापस सावत्थी को मुड़ गए थे
153 पपंचसूदनी (मज्झिम कमेंटरी), 2, पृ 571.
154 महावंश टीका, पा टे सो पृ 560
155 महापरिनिब्बाण सुत्त (डाय, 2, पृ 94 96 97, 100)
156 स्मिथ, ज रा ए सो (1902), पृ 269
157 संयुत्त निकाय, 5, पृ 431
158 महापरिनिब्बाण सुत्त
159 पपंचसूदनी (मज्झिम कमेंटरी), 2, पृ 424 निश्चित रूप से विवरण देता है कि तालाब का नाम नादिका था
160 डायलाग्स, 2, पृ 97, टिप्पणी 1, ग्रेडअलसेइंग, 3, पृ 217 टिप्पणी 4
161 स्मिथ, ज रा ए सो (1902) पृ 269
162. मज्झिम निकाय, 1, पृ 205 211, विनय, 1, पृ 350 और आगे, डाय 2 पृ 200 और आगे, गिंजकावसथ सुत्त संयुत्त निकाय, 2, पृ 153, 5 पृ 356 और आगे) ञातिक सुत्त (संयुक्त निकाय, 2 पृ 71 तथा 4 पृ 90), अंगुत्तर निकाय, 4 पृ 316 और आगे
163 योगेंद्र मिश्र वैशाली, पृ 188
164 मज्झिम निकाय, 1, पृ 205-211
165 बील वही, पृ 66-67, तीर्थंकर महावीर, पृ 77
166 योगेंद्र मिश्र, वैशाली पृ 190, डाय 2, पृ 130
167 वही पृ 126 पावा की पहचान भी संदिग्ध है जैन धर्मानुयायी पटना जिला के अंतर्गत राजगृह के समीप स्थित पावा को मानते हैं लेकिन यह दक्षिणी विहार है और अजातशत्रु के राज्य में था जबकि भगवान बुद्ध ने लिच्छवियों के पड़ोसी मल्लों के पावा में विहार

किया था राहुल सांकृत्यायन के अनुसार यह पावा गोरखपुर जिले के अंतर्गत 'पपुहर' नामक गांव हो सकता है क्योंकि यही मल्लों का स्रोत था (मुनि श्री नागराजजी महावीर तथा बुद्ध की समसामयिकता, पृ. 15-16 पर उद्धृत).

168. चुल्लवग्ग 12/1/1; दीपवंश 4/47-49, 5/16-18.
169 चुल्लवग्ग, 12/1/1.
170 महावग्ग, 5/10; चुल्लवग्ग, 6/2/3-5.
171 चुल्लवग्ग, 1/13
172. सं अभि. ग्र , पृ 15, वैशाली के लिच्छवि, पृ 12
173 मदनमोहन सिंह, बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ 107.

141 द्रष्टव्य टिप्पणी 27
142 अगुत्तर निकाय 3 पृ 167 168
143 सयुत्त निकाय 5 प 258, अगुत्तर निकाय, 6 पृ 308 309 311 डायलाग्स 110-11 125 126
144 महावस्तु 1 पृ 300
145 विनय पिटक 1 पृ 231 233 लेकिन महावस्तु (1 पृ 300) के अनुसार यह भगवान बुद्ध के प्रथम वैशाली आगमन पर भेंट किया गया था
146 सयुत्त निकाय 5 पृ 141 148 अगुत्तर निकाय 4 पृ 100 106 महावस्तु 2, पृ 293
147 सयुत्त निकाय 5 पृ 301
148 विसेंट आथर स्मिथ ज रा ए सो (1902) पृ 280 281 तथा 279
149 महावस्तु 1, पृ 300
150 विनय टक्स 3 पृ 408
151 वि आ स्मिथ ज रा ए सो (1902), पृ 281
152 यह भगवान बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति के दसवें वर्ष का था, साररयप्पकासिनी, (सयुक्त कमेंटरी) 3 पृ 198 उदान-अटठकथा 322 तथा सयुक्त कमेंटरी 3 पृ 172 के अनुसार भगवान बुद्ध वेलुव से वैशाली से सीधे रास्ते नही गए थे बल्कि वापस सावत्थी को मुड गए थ
153 पपचसूदनी (मज्झिम कमेंटरी) 2, पृ 571
154 महावश टीका पा टे सो पृ 560
155 महापरिनिब्बाण सुत्त (डाय 2 पृ 94 96 97 100)
156 स्मिथ ज रा ए सो (1902) पृ 269
157 सयुत्त निकाय 5 पृ 431
158 महापरिनिब्बाण सुत्त
159 पपचसूदनी (मज्झिम कमेंटरी) 2, पृ 424 निश्चित रूप से विवरण देता है कि तालाब का नाम मार्दिका था
160 डायलाग्स, 2 पृ 97 टिप्पणी 1 प्रडअलसेइग 3 पृ 217 टिप्पणी 4.
161 स्मिथ ज रा ए सो (1902) पृ 269
162 मज्झिम निकाय 1 पृ 205 211 विनय 1, पृ 350 और आग डाय 2 पृ 200 और आग गिजकावसथ सुत्त सयुत्त निकाय 2 पृ 153 5 पृ 356 और आग) आतिक सुत्त (सयुक्त निकाय 2 पृ 71 तथा 4 पृ 90) अगुत्तर निकाय 4 पृ 316 और आग
163 योगेंद्र मिश्र वैशाली पृ 188
164 मज्झिम निकाय 1 पृ 205-211
165 लील वही पृ 66-67 तीथकर महावीर पृ 77
166 योगेंद्र मिश्र वैशाली पृ 190 डाय 2 पृ 130
167 वही पृ 126 पावा की पहचान भी सदिग्ध है जैन धर्मानुयायी पटना जिला के अतगत राजगृह के समीप स्थित पावा को मानते हैं लेकिन यह दक्षिणी बिहार है और अजातशत्रु के राज्य में था जबकि भगवान बुद्ध न लिच्छवियों के पडोसी मल्लों के पावा में विहार

किया या राहुल सांकृत्यायन के अनुसार यह पावा गोरखपुर जिले के अ तर्गत 'पपुहर' नामक गाव हो सकता है क्योंकि यही मल्लों का क्षेत्र था (मुनि श्री नागराजजी महावीर तथा बुद्ध की समसामयिकता, पृ. 15-16 पर उद्धृत)

168 चुल्लवग्ग 12/1/1, दीपवश 4/47-49, 5/16 18
169 चुल्लवग्ग, 12/1/1
170 महावग्ग, 5/10, चुल्लवग्ग, 6/2/3-5.
171 चुल्लवग्ग 1/13
172 वें अभि ग्र , पृ 15, वैशाली के लिच्छवि, पृ 12
173 मदनमोहन सिंह, बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ 107.

10

प्रशासन

राज्य और क्षेत्र

बौद्ध साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी ई पू. वर्तमान गोरखपुर से से दरभगा तक के मध्य और उत्तर मे हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण मे गगा के मध्य तक के विस्तृत क्षेत्र मे अनेक गणराज्य फैले हुए थे जिनका विस्तार लबाई मे तीन सौ मील तथा चौडाई मे सौ मील से अधिक नही था।[1] इसमे लिच्छवियो के वज्जि-गणराज्य का क्षेत्रफल सबसे अधिक था। परमत्थजोतिका की कथा के अनुसार वज्जियो का राज्य तीन सौ योजन भूमि पर था।[2] ह्वेन-त्साग के विवरण के अनुसार वज्जि-देश का क्षेत्रफल पाच हजार ली (लगभग एक हजार मील) था, तथा वैशाली नगरी के दो प्राकारो (दीवारो) के मध्य की दूरी (नीव के आधार पर) साठ से सत्तर ली (लगभग बारह-तेरह मील) थी।[3] रायचौधुरी के अनुसार वज्जि-क्षेत्र की सीमा सभवत: गगा के उत्तर मे नेपाल की पहाडी तक फैली थी। पश्चिम मे गडक नदी इसे मल्ल तथा कोशल से अलग करती थी। पूर्व मे इसकी सीमा कोसी तथा महानदा नदी तक थी।[4]

वज्जि राज्य का स्वरूप

वज्जि राज्य का स्वरूप सघ राज्य[5] था, यद्यपि कही-कही इसे गणराज्य[6] भी कहा गया है। लिच्छवियों की प्रमुखता होने के कारण यह लिच्छवि गणराज्य[7] के रूप मे भी जाना जाता था। गिलिगट मैन्युस्क्रिप्ट[8] मे इसे गणाधीन राज्य माना गया है।

वज्जियो का राज्य सामान्यतया सघ-राज्य के रूप मे जाना जाता था जिसमे सभवत आठ कुल सम्मिलित थे जिनमें लिच्छवि, वज्जि तथा विदेह प्रमुख थे।[9] समय-समय पर अपनी स्थिति दृढ करने के लिए वज्जि-सघ अपने पडोसी गण-

राज्यो स मित्रता करके विशाल सघ-राज्य बना लेते थे । ऐसा उन्होने मगधराज अजातशत्रु की साम्राज्यवादिता का विरोध करने के लिए पडोसी मल्लो तथा काशी कोशल से मित्रता कर विशाल सघ का निर्माण किया, जिसमे नौ लिच्छवि, नौ मल्ल तथा काशी कोशल के अठारह राजा सदस्य थे।[10] इस सघ मे सदस्य राजाओ की सख्या से प्रतीत होता है कि नवनिर्मित सघ का निर्माण समानता के सिद्धात पर किया गया था । इसमे छोटे बडे राज्य का भेद नही किया गया। प्रत्येक गणराज्य के नौ-नौ सदस्य (वज्जि सघ के नौ, मल्ल गणराज्य के नौ तथा काशी व कोशल के नौ नौ=छत्तीस सदस्य)[11] थे । इस सघ मे गण-राज्यो को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त था । इस तरह यह आज के सघीय राज्य के सिद्धात के सदृश्य था।[12]

प्रशासन मे भाग लेने का अधिकार

वज्जि गणराज्य मे प्रशासन मे भाग लेने का अधिकार राज्य के सभी नागरिको या केवल कुलीन या धनिक या क्षत्रिय वर्ग को था, यह बात विवादास्पद है। एक जातक[13] मे इसका वर्णन है कि एक नगर के रिक्त सिंहासन के लिए राजा का चुनाव हुआ जिसम सब मत्रियो और राजनगर की सभा के सदस्यो अथवा राजनगर के निवासियो या नागरिको ने छद (आजकल जिसे वोट कहा जाता है) द्वारा एक मत होकर (एक छदाहुत्वा) अपने नए राजा का निर्वाचन किया। जायसवाल का मत है कि इसमे नगर के सभी निवासियो की सम्मति ली गई थी, न कि केवल सभा के सदस्यो की।[14] यू एन घोषाल ने इस मत की आलोचना करते हुए कहा कि जायसवाल ने 'नगर' शब्द का अर्थ 'नागरिक' लिया है जो अशुद्ध है। इसका अर्थ नगर सभा होना चाहिए। इसी तरह 'छद' का अर्थ प्रस्ताव या इरादा होता है, जबकि जायसवाल ने इसका अर्थ विशेष निर्वाचन विधि माना है।[15] सभव है, वज्जि गणराज्य मे गण प्रमुख राजा (चेटक) का निर्वाचन समिति के सदस्यो द्वारा हुआ हो एव उसका अनुमोदन जनता से कराया गया हो। इस तरह की सभावना राजतात्रिक राजा के निर्वाचन के सबध मे अल्तेकर महोदय करते हैं।[16]अ उनका मत है कि सभवत वैदिक काल मे राजा का निर्वाचन कुलपति या विशपति ही करते रहे हो जिसम साधारण जनता अधिक मे अधिक प्राचीन रोम की 'क्यूरिया' (जनसाधारण) की भाति उनके निर्णय पर केवल अपनी सहमति देती रही हो। दूसरा प्रश्न उठता है कि केंद्रीय समिति (व्यवस्थापिका सभा) के सदस्यो (एकपण जातक के अनुसार जिनकी सख्या सात हजार सात सौ सात थी) का चुनाव किस प्रकार होता था ? इसमे आम लोगो को मत देने तथा उम्मीदवार बनने का अधिकार प्राप्त था या ये सात

हजार सात सौ सात सदस्य कुलीन वर्ग या क्षत्रिय वर्ग से मनोनीत कुल वृद्ध होते थे, स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नही होती। अल्तेकर[16]ब का मत है कि लिच्छवि गणराज्य के सात हजार सात सौ सात सदस्य सभवत क्षत्रिय थे, इसीलिए राजा कहे जाते थे। शबर[17] ने स्पष्ट लिखा है कि क्षत्रिय और 'राजा' पर्यायवाची है। अमरकोष[18] मे 'राजन्यक' का अर्थ क्षत्रियो का गणराज्य बताया गया है। अस्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन गणराज्यो मे शासकवर्ग प्राय क्षत्रिय होता था।[19] *शासक वर्ग के अतिरिक्त साधारण प्रजा मे कृषक, भृत्य, दास, कारीगर (शिल्पी)* आदि भी होते थे, जिन्हें सभवत मत देने का अधिकार नही प्राप्त था।[20] सभवत स्त्रिया भी शासन मे भाग लेने तथा मताधिकार से वचित थी।[21]

लिच्छवि गणराज्य मे प्रशासन के लिए केवल कुलीन या क्षत्रिय वर्ग से सदस्य चुनकर आते थे। इसका अनुमान हम इससे लगा सकते हैं कि एक बार भगवान बुद्ध ने लिच्छवि पुत्रो को उपदेश देते हुए कहा कि कुलपुत्र उन्नति करके किसी राज्य के शासक हो सकते हैं, राष्ट्रीय या पैत्रनिक हो सकते हैं, सेनापति हो सकते हैं या किसी नगर के निर्वाचित राजा या सभापति (ग्राम ग्रामणिक) या शिल्प सबधी गण या सघ के सभापति (पूग गामणिक) हो सकते हैं।[22] इसका तात्पर्य यह है कि उक्त सभी पदो के लिए निर्वाचन होता था, लेकिन उक्त पदो के लिए उम्मीदवार केवल कुलपुत्र ही हो सकता था।[23]

इस प्रकार वज्जि गणराज्य कुल प्रजातत्र था जिसमे केवल क्षत्रिय कुल के लोग सदस्य हो सकते थे। धर्मशास्त्रकार कात्यायन[24] का भी कथन है कि गण कुलो का समूह है और कुल राज्यो या कुल प्रजातत्रो मे राजनीतिक अधिकारो आदि का आधार कुल या वश ही था।[25] डागे[26] का भी यही मत है। महाभारत[27] म भी कहा गया है कि गण सघ के सभी सदस्य कुल और जाति में समान होते थे। महाभारत के अनुसार इन गण सघ मे रक्त सबध को तोडना महान अपराध माना जाता था।[28]

बाहरी व्यक्ति को नागरिकता

लिच्छवि बाहरी व्यक्ति को भी उसकी कुलीनता तथा योग्यता देखकर नागरिकता प्रदान कर देते थे। 'खण्ड' के सबध म हम जानते हैं कि वह वैशाली म शरण के लिए बाहर से आया था, जिसकी योग्यता और कुलीनता को देखकर उसे न केवल नागरिकता प्रदान की गई, बल्कि उसे रहने के लिए प्रथम श्रेणी या वर्ग वाले भाग मे घर तथा सेनापति का पद दिया गया।[29] इसी तरह मगधराज ब्राह्मण मत्री वस्सकार जब मगध छोडकर वैशाली मे शरणार्थी बन कर आया तो उसे भी उच्च सम्मान देकर प्रधान धमाधिकारी का पद दिया गया।[30] लिच्छवि लोग

बाहर के व्यक्ति को भी नागरिकता देते थे, इसकी पुष्टि कात्यायन भी करते हैं। उन्होने पाणिनि के एक नियम (अष्ट, 4 . 100) का सशोधन करते हुए बतलाया कि जो व्यक्ति वृजि के प्रति भक्ति रखेगा, वह वृजिक कहा जाएगा।[31] यहा भक्ति का अभिप्राय राजभक्ति या राजकीय दृष्टि स प्रमुख की स्वीकृति है।[32] सभवत उन दिनो कृत्रिम नागरिकता का भी भाव होता था। वृजिक कहलाने के लिए जन्म स ही वृजि हो, यह आवश्यक नही होता था।[33] यहा यह ध्यान देने योग्य है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र म 'वृजिक' रूप का ही व्यवहार हुआ है।[34] जैन सूत्र मे भी लेच्छविक रूप आए हैं।[35] वृजिको म वृजि और अवृजि दोनो होते थे, पर दोनों वर्ग वृजि के प्रति भक्ति (राज्य भक्ति) रखते थे।[36] अ-वृजियो मे वे लोग या कुल हो सकते हैं जिनपर आरभ मे वृजियो ने विजय प्राप्त की अथवा जो लोग या कुल स्वेच्छापूर्वक वज्जिसघ मे सम्मिलित हुए थे।[37]

इस प्रकार लिच्छवि बाहर के व्यक्ति को नागरिकता प्रदान कर अपनी सख्या मे वृद्धि कर लेते थे। इससे यह भी कहा जा सकता है कि वज्जि या लिच्छवि गणराज्य कबीला समाज नहीं था[38], क्योकि कबीलाई समाज मे प्रात बाहर के व्यक्ति को नागरिकता नही प्रदान की जाती है, उच्च पद पर आसीन करने का तो प्रश्न ही नही उठता है। महावस्तु[39] के अनुसार वैशाली मे कुल एक लाख अरसठ हजार नागरिक थे जिसमे आधे बाह्य क्षेत्र तथा आधे आतरिक मे रहते थे। इसम वृजियो तथा अ वृजियों की सख्या कितनी थी, कहा नही जा सकता है

लिच्छवि गणतत्र को दिशा निर्देश करने वाले सिद्धात

लिच्छवि गणराज्य को उच्च स्तर पर पहुचाने क लिए कुछ ऐसी विशिष्ट बातें थी जो किसी भी गणतत्र को दीर्घ कालीन बनाने के लिए आवश्यक हैं। वे आवश्यक बातें वही है जिन्हें भगवान बुद्ध ने गृद्ध पर्वत (राजगृह) पर निवास करते हुए मगध राज व ब्राह्मण मत्री वस्सकार को लिच्छवियो की प्रशसा करते हुए बतलाई थी।[40] वे आवश्यक बातें या दिशा निर्देश करन वाले सिद्धात निम्नलिखित हैं :

1. वज्जि लोग बहुधा पूर्ण सभाए करते हैं।
2. वे एक मत होकर मिलते हैं, एक साथ मिलकर उन्नति करते हैं और वज्जियों का कार्य एक मत होकर करते हैं।
3. वे उचित विधि के बिना कोई नया नियम नही लागू करते, विधिपूर्वक बनाए नियम का उल्लघन कर कोई कार्य नहीं करते हैं, तथा प्राचीन समय मे विधि पूर्वक बने नियम क अनुसार कार्य करते हैं।
4. वे वृद्धो की प्रतिष्ठा, आदर, भक्ति तथा सहायता करते हैं तथा उनकी बातो

था। यदि ये क्षत्रिय 'राजन' के रूप मे जाने जाते थे तो स्वभाविक है कि उनके पुत्र युवराजन या युवराज कहे जाएगे।[54]

प्रत्येक सदस्य को अपनी जमीदारी चलाने के लिए छोटी सी सेना भी रखनी होती होगी। जब ये राजा स्वयं इस छोटी सी सेना का सचालन करने योग्य नही रह गए तो उन्होंने सेनापति की नियुक्ति की। इस प्रकार सात हजार सात सौ सात राजाओ को सिद्धात रूप म केंद्रीय समिति (व्यवस्थापिका सभा) मे भाग लेने का अधिकार प्राप्त था। अत इस प्रकार वज्जि गण या सघ राज्य मे सात हजार सात सौ सात राजा, सात हजार सात सौ सात युवराज, सात हजार सात सौ सात सेनापति तथा सात हजार सात सौ सात भाण्डागारिक रहे होंगे जिनमे से सभवत कुछ राजा राजधानी मे विभिन्न पदों पर थे, कुछ गावो मे ही रहते थे।[55] देवी दत्त शुक्ल[56] का मत है कि अपनी जमीदारी के प्रबध के निमित्त यह सेना सभवत. गणराज्य की रक्षा के लिए भी देते रहे हो। प्रत्येक सामत अपनी जमींदारी का अन्न एकत्रित करने के लिए एक भाण्डागारिक पास रखता था। प्रत्येक सामत अपने जीवन काल मे ही उत्तराधिकारी घोषित करता था। जिसे युवराज कहते थे।[57] इस प्रकार सारा राज्य सामतो मे बटा हुआ था और प्रत्येक सामत राज्य सभा (केन्द्रीय समिति) का सदस्य था। यद्यपि उपर्युक्त जातक के अनुसार वे सब सामत ही थे, परतु ललित विस्तर (3,21) से विदित होता है कि वे अपने को राजा स कम नही समझते थे। एक जातक[58] मे कहा गया है कि 'वैशाली नगरे गण राज कुलान अभिषेक मगल पोक्खरणी। इससे स्पष्ट है कि लिच्छवि राज्य एक गणराज्य था जिसके सदस्य अपने कुलो के अभिषेक कुलपति होते थे। अत हम उनको सामत पर्यायी गणराज्य मानते हैं।[59]

इस प्रकार यह तथ्य प्राय सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि लिच्छवि गण-राज्य एक कुलीन गणराज्य था जिसके सभी सदस्य क्षत्रिय हुआ करते थे। लेकिन इसका समुचित उत्तर अभी तक नही दिया जा सका है कि ये सदस्य कुल या परिवार के सदस्यो द्वारा चुनकर आते थे या मनोनीत कुलवृद्ध या गृहपति होते थे। जो कुछ प्रमाण मिला है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि लिच्छवियो की केंद्रीय समिति मे छोटे बडे सभी उम्र के सदस्य होते थे। इसकी पुष्टि ललित विस्तर के इस कथन से होता है लिच्छवियो की सभा मे छोटा मध्य-वृद्ध ज्येष्ठ का कोई विचार नहीं था, सभी अपने को 'मैं राजा हू', मैं राजा हू' कहते थे।[60] अगुत्तर निकाय (1-134, 142) मे लिच्छवियो मे ज्येष्ठो के सम्मान का सकेत भगवान बुद्ध करते हैं।[61] इससे विदित होता है कि केंद्रीय समिति मे युवक और वृद्ध सभी अवस्थाओ के व्यक्ति सदस्य थे। ये सदस्य परिवार या कुल के सदस्यो द्वारा मनोनीत या निर्वाचित योग्य व्यक्ति होते थे, उसमे उम्र का विचार नही किया जाता था। इन सदस्यो की सात हजार सात सौ सात सख्या देखकर विद्वान

भ्रम में पड़ गए और अनेकानेक कल्पनाएं करके मत प्रतिपादित कर डाले। अगर हम इन विद्वानो के मतानुसार सात हजार सात सौ सात सदस्य राजा को सामत या सामत परिवार के कुल का प्रमुख (जिनके पास अपने प्रशासन के लिए एक अलग सेना तथा कर आदि का हिसाब किताब रखने के लिए एक भाण्डागारिक भी होता था) मान लें तो इसका अभिप्राय होगा कि वैशाली क्षेत्र बहुत विस्तृत था। अल्तेकर [62]अ के अनुसार शाक्य, मल्ल, लिच्छवि तथा विदेह आदि सभी को मिलाकर भी इनके राज्यो का विस्तार लबाई मे दो सौ तथा चौडाई मे सौ मील से अधिक नही था। इसमे से लिच्छवि गणराज्य का कितने क्षेत्र पर अधिकार था, कहना कठिन है। ह्वेन-त्साग के विवरण के अनुसार वज्जि देश का कुल क्षेत्रफल पाच हजार ली (एक हजार मील के लगभग) था। इस छोटे से क्षेत्र मे सात हजार सात सौ सात सामतों या जमीदारो (छोटा या बडा) के अस्तित्व का होना सदिग्ध लगता है। अतः इन सदस्यो को सामत या जमीदार परिवार का प्रमुख मान लेना समीचीन नही है। अस्तु यह सोचना अधिक तर्कसगत होगा कि वज्जि सघ के ये सात हजार सात सौ सात सदस्य वज्जि सघ मे सम्मिलित आठ कुलो से सबधित परिवार के मनोनीत सदस्य रहे होगे जिन्हे केंद्रीय समिति म भाग लेने का अधिकार प्राप्त था। महावस्तु [62]ब मे दी वैशाली क्षेत्र मे रहने वाले सोलह हजार आठ सौ या एक लाख अरसठ हजार ? राजाओ की सख्या को अल्तेकर ने शासन वर्ग के परिवार की सभवत कुल सदस्यो की सख्या माना है। इन क्षत्रिय परिवारो का मुख्य व्यवसाय कृषि था जिसे ये स्वय भी करते थे तथा दास या कृषि भृतक (खेतिहर मजदूर) से भी कराते थे। इन्ही क्षत्रिय परिवारो के सदस्य ही सभवत. राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण पदो (गाम गामणिक सहित) के उम्मीदवार हो सकते थे।

2 **सथागार** राहुल साकृत्यायन के अनुसार वैशाली की व्यवस्थापिका सभा (केंद्रीय समिति) को सस्था[63] कहा जाता था और जहा सदस्य आपस मे मिलकर किसी समस्या पर विचार विमर्श करते थे उस सथागार[64]अ (सस्कृत का सथागार) कहा जाता था। यह सथागार अधिवेशन के लिए खुलता था जिसका अध्यक्ष कुर्सी (या ऊचे आसन) पर बैठता था।[64]ब अट्ठकथा मे उल्लेख है कि शाली वाले जब अपने वैसथागार मे आते थे, उस समय उनके सथागार मे घडियाल (निमत्रण का घटा) बजाया जाता था।[65] सथागार मे राजनीतिक व सैनिक विषयो के अतिरिक्त कृषि, व्यापारिक तथा धार्मिक विषयों पर भी वाद-विवाद हुआ करता था।[66] यह अपना एक दूतक भी नियुक्त करता था जिसे महात्मक कहते थे जो लिच्छवियो की तरफ से सदेश भी पहुचाया करता था।[67] ऐसा ही एक सदेश महालि नामक लिच्छवि राजगृह के बिबसार के पास लेकर पहुचा था जिसमे भगवान बुद्ध को वैशाली आने का निमत्रण था।[68] लिच्छवि

गणराज्य की सर्वोच्च सत्ता थी जो समस्त जनता की ओर से कार्य करती थी।[69]

3 अध्यक्ष तथा कार्यपालिका के अन्य अधिकारी सभवत केंद्रीय समिति के सदस्य ही अध्यक्ष तथा कार्यपालिका के अन्य सदस्यो का चुनाव करते थे।[70] वज्जि या लिच्छवि राज्य के मत्रिमण्डल मे नौ सदस्य थे।[71] मत्रियो का चुनाव कुछ प्रतिष्ठित कुल के प्रमुखो मे से ही होता था, या कोई भी इस पद के लिए खड़ा हो सकता था, ठीक ज्ञात नही है। लेकिन इतना विदित है कि प्राचीन भारत के गणराज्य अपनी समर शूरता के लिए प्रख्यात थे। अत उनके मत्रिमण्डल के सभासद अवश्य ही सकट से अपने गण के उद्धार की शक्ति रखने वाले धीरवीर सेनानी रहे होगे। महाभारत[72] मे भी इस बात का उल्लेख है कि गण के नेता के लिए प्रजा, पौरुष, उत्साह अनुभव, शास्त्र और गण परपरा का ज्ञान आदि गुणो का समावेश होना आवश्यक था। गणाध्यक्ष ही मत्रिमण्डल का प्रधान और समिति का अध्यक्ष हुआ करता था। शासन कार्य की देख रेख के साथ ही उसका मुख्य कार्य गण की एकता बनाए रखना और झगडे तथा फूट का निवारण करना था जो बहुधा गणराज्यो के अध्यक्ष के कारण होते थे।[73] एक मत्री के पास पर-राष्ट्र विभाग रहता था जो गुप्तचरो के विवरण सुनता था और अपने तथा दूसरे राज्यो के छिद्रादि पर आख रखता था।[74] कोष विभाग एक अन्य मत्री के हाथ मे रहता था उस राज्य के धन को बाजार मे विनियोग करने और राज्य का ऋण वसूल करने का अधिकार था।[75] तीसरा विभाग न्याय का था, इसके अध्यक्ष का कार्य सभवत अपने अधीन न्यायालयो के विचारो की अपील सुनकर व्यवहार और धर्म के *नियमानुसार अतिम निर्णय करना था।[76] अन्य विभागो म दण्ड* (पुलिस), कर, व्यापार और उद्योग के विभाग भी थे। कुछ गणतत्र व्यापार म भी उतन ही उन्नत थे जितने वे युद्ध मे विख्यात थे।[77]

प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष के अधीन विभिन्न श्रेणी के अधिकारी काम करते थे। शाक्य, कोलिय आदि छोटे-छोटे राज्यो के अधीन अधिकारी सीधे विभागाध्यक्ष से सबध रखते थे, बडे राज्यो के बीच की कई श्रेणिया होती थी।[78]

दलीय पद्धति

वज्जि या लिच्छवि गणराज्य की केंद्रीय समिति या व्यवस्थापिका सभा में विभिन्न दलो का महत्त्व था, परतु वे आज की तरह किसी राजनीतिक दल या विचारधारा से प्रेरित नही थे, बल्कि ये दल किसी विशिष्ट प्रभावशाली व्यक्ति के प्रति निष्ठा रखते थे, जो राजनीतिक दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखते थे।[79] केंद्रीय समिति या व्यवस्थापिका सभा मे किसी सामाजिक या धार्मिक अवसरो पर भले ही शाति रहती हो, पर महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विषयो पर चर्चा के समय शहर मे यह शाति नही रहती थी। बौद्ध ग्रथो, अर्थशास्त्र तथा महाभारत

मे गणतत्रो मे आपस का ईर्ष्या द्वेष और दल बदी की प्रबलता ही इनकी सबसे बडी दुर्बलता बतलाई गई है।[80] कौटिल्य गणतत्र व्यवस्था के विरोधी थे, अत उन्होने बहुत से अनुचित उपाय बताए है जिनसे गणतत्रो मे भेद पैदाकर उनका विनाश किया जा सके।[81] दलबदी का कारण प्राय सदस्यो की आपसी ईर्ष्या तथा अधिकार लोलुपता थी। आजकल की भाति उस काल मे भी सघ के सदस्य अधिकार प्राप्ति के लिए गुट बनाया करते थे। दौडधूप करने वाले, गुटबदी तथा भाषण कला मे पटु व्यक्ति अधिकार प्राप्त करने मे सफल हो जाते थे।[82] लेकिन आजकल की भाति उस समय भी सत्तारूढ गुट को सत्ता से अपदस्य करना कठिन काम था।[83] समिति म दलबदी तीव्र होने पर बेचारे सघ मुख्य की स्थिति बहुत नाजुक और दयनीय होती थी। वह स्वार्थ के लिए झगडने वाले दोनो पक्षो के रोष का लक्ष्य बनता था।[84]

समिति का सचालन तथा वादविवाद सबधी नियम

समिति के सचालन और वादविवाद के नियत्रण सबधी कुछ नियम तो अवश्य ही बने होंगे पर किसी राज्यशास्त्र के लेखक ने उनका वर्णन नही किया है। यदि यह मान लिया जाए कि बौद्ध सघ के नियम तत्कालीन गण या सघ राज्यो के नियम के आधार पर बनाए जाते थे तो इस सबध में हमे कुछ जानकारी अवश्य मिल जाती है।[85] बौद्ध सघ की गणपूर्ति (कोरम) के लिए बीस सदस्यो की उपस्थिति आवश्यक थी। सभव है कि इस प्रकार का कोई नियम गणतत्र की समिति म भी रहा होगा, विशेषकर जब विभिन्न दलो मे अधिकार प्राप्ति के लिए इतनी होड रहती थी।[86] सदस्यो के बैठने का स्थान निर्धारित करने के लिए भी एक कर्मचारी नियुक्त था। सभवत गण मुख्य मच पर बैठते थे और शेष अपने दलो के साथ उनके सामने रहते थे।[87] गण मुख्य अधिवेशन का अध्यक्ष होता था और मत्रणा का नियत्रण करता था। थोडा-सा भी पक्षपात करने पर उसकी कटु आलोचना होती थी।[88]

सर्वप्रथम किसी विषय पर विचार करने के लिए तत्सबधित विज्ञप्ति या सूचना सबके सामने प्रस्तुत की जाती थी। तदोपरांत प्रस्तावक औपचारिक रूप स प्रस्ताव प्रस्तुत करता था, तत्पश्चात् उसपर वादविवाद होता था।[89] बौद्ध सघ मे यह प्रथा थी कि जो लोग प्रस्ताव के पक्ष म होते थे, वे चुप रहते थे, केवल विरोधी ही असहमति प्रकट करते थे। परतु गणतत्र की समितियो मे तो जोरो का विवाद बराबर होता रहा होगा। आजकल की भाति बौद्ध सघ म तीन बार लोगो के समक्ष प्रस्तुत और स्वीकृति किया जाता था, लेकिन गणतत्रो की समितिया मे सभवत यह परिपाटी नही बरती जाती थी। जब मतभेद दिखाई देता था तब मत लिए जाते थे और बहुमत का निर्णय मान्य होता था। जब

शाक्यो को कोशल की सेना द्वारा अपनी राजधानी घिर जाने पर कोशल नरेश की अंतिम चेतावनी मिली तब उनकी समिति ने यह निर्णय करने के लिए सभा बुलाई कि दुर्ग का फाटक खोल दिया जाए या नही। कुछ लोग इसके पक्ष मे तथा कुछ विपक्ष मे थे। अत मे मत सग्रह करके बहुमत द्वारा आत्मसमर्पण करने का निर्णय किया गया।[90] इसी तरह लिच्छवियो की समिति मे खण्ड की मृत्यु के पश्चात् सेनापति पद के लिए उसके दोनो पुत्र गोप तथा सिंह के पक्ष विपक्ष मे मत सग्रह हुआ तथा बहुमत के आधार पर सिंह को सेनापति चुना गया।[91]

मतगणना के लिए बौद्ध सघो मे शलाका (एक चीनी लेख के अनुसार ये शलाकाए लकडी की बनी होती थी) पद्धति अपनाई जाती थी। सम्मति जानने को शलाका ग्रहण कहते थे तथा इस सग्रह करने वाले व्यक्ति को शलाका ग्राहक कहते थे। वह यह बतलाता था कि किस रग से क्या सूचित होता है। सग्रह करने का कार्य गुप्त तथा खुले दोनो रूप मे होता था।[92] किसी प्रस्ताव के समय यदि कोई सदस्य उपस्थित नही होता था तो उसके मत या छद बहुत सावधानी के साथ गुप्त रूप से एकत्र किए जाते थे। परतु उन मतों या छदो को गिनना या न गिनना उपस्थित सदस्यो की इच्छा पर निर्भर होता था।[93]

समिति मे वादविवाद के समय यदि कोई सदस्य परस्पर विरोधी, भद्दा अथवा अश्लील वचन बोल देता था तो उसके विरुद्ध निंदा प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया जाता था।[94] जिस प्रश्न का एक बार निराकरण हो जाता था, उसे पुन. उठाना भी उचित नही समझा जाता था।[95]

समिति की कार्यवाही लिखने के लिए लेखक भी होते थे जो अधिवेशन के समय अपना स्थान कभी नही छोड़ते थे और सब प्रकार की प्रतिज्ञाए तथा निर्णय लिखा करते थे।[96] कुछ कार्यवाही जो एक दिन मे पूर्ण नही हो पाती थी उन पर विचार कुछ समय तक नही हो पाता था।

स्थानीय शासन

लिच्छवि गणराज्य म नगर तथा ग्राम दोनो अस्तित्व मे थे, लेकिन इनके प्रशासनप्रणाली के सबध मे कोई विशेष सामग्री नही मिलती है। केवल कुछ सदर्भों के आधार पर हम कुछ कह सकते हैं। अगुत्तर निकाय[97] मे एक सदर्भ आता है, जब भगवान बुद्ध लिच्छवि-पुत्रो को उपदेश देते हुए कहते हैं कि वे भी उन्नति करके किसी राज्य का शासक हो सकते हैं, राष्ट्रिक या पैत्रनिक हो सकते हैं, या किसी के निर्वाचित राजा या ग्राम का सभापति या मुखिया (गाम गामणिक) या शिल्प सबधी किसी गण या सघ क सभापति (पूग गामणिक) हो सकते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह सभी पद किसी प्रशासनिक ढांचे के प्रमुख का है, जो नगर तथा ग्रामो की व्यवस्था के अतर्गत आते थे तथा कुलपुत्र

ही इन सब पदो के उम्मीदवार हो सकते थे।

1. नगर शासन : लिच्छवि या वज्जि गणराज्य की राजधानी वैशाली मे स्थानीय प्रशासन हेतु स्वायत्त परिषदें अवश्य होती रही होगी।[98] इन स्वायत्त परिषदो मे शासक उच्च श्रेणी के अतिरिक्त जनसाधारण श्रेणी के विविध वर्गों का भी प्रतिनिधित्व रहता था, जैसा कि नृपतन्त्र मे नगरो मे होता था।[99] इन परिषदो के निर्वाचन और कार्य प्रणाली के सबध में विशेष सामग्री उपलब्ध नही है। इस लिए यह जानना सभव नही है कि इन परिषदो पर केंद्रीय शक्ति का नियत्रण कैसे और किस रूप मे रहता था तथा केंद्रीय समिति मे इनके प्रतिनिधि जाते थे या नही।[100]

2 ग्राम शासन . वैशाली नगरी के चारो ओर बहुत सारे ग्राम थे जिनमे कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रामो का उल्लेख बौद्ध ग्रथो मे हुआ है, जैसे वेलुवग्राम (वेणुग्राम), कालदकगाम, कोटिगाम, नदिका यावनिका, भण्ड गाम, हथिगाम, अम्बगाम, अम्बुगाम, भोग नगर आदि[101] इन सभी ग्रामो मे भगवान बुद्ध भ्रमण किया करते थे। इन ग्रामो मे वज्जि राज्य या सघ में सम्मलित कुल के लोग निवास करते थे। कोटिग्राम तथा भोगनगर मे क्रमश. वज्जि तथा भोग कुल के लोग निवास करते थे।[102] इन महत्वपूर्ण ग्रामो में पचायतें अवश्य रही होगी, उनके अधिकार भी राजतत्रातर्गत ग्राम पचायतो से कम न रहे होंगे।[103] यह भी सभव नही प्रतीत होता कि इनकी सदस्यता केवल उच्च या शासक वर्ग तक ही सीमित रही हो, क्योंकि इस वर्ग के अधिकाश लोग वैशाली मे ही रहते थे तथा केंद्रीय राजनीति मे ही अधिक रुचि लेते थे। सभवत: पचायत मे किसान, व्यापारी, कारीगर (शिल्पी) आदि सभी ग्रामीण वर्गों के प्रतिनिधि होते थे।[104] लेकिन सभवत ग्राम प्रधान या मुखिया के पद के लिए उम्मीदवार कुलपुत्र ही हो सकता था जैसा कि भगवान बुद्ध के मुख से लिच्छवि पुत्रो को दिए उपदेश मे ध्वनित होता है।[105]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लिच्छवि गणराज्य का केंद्रीय तथा स्थानीय प्रशासन काफी सुदृढ रहा होगा, और इसी कारण वे दीर्घकाल तक अपनी गणतांत्रिक परपरा को सुरक्षित रख सके थे। यह आश्चर्य ही कहा जाएगा कि इस लबे काल मे हमे कोई एसी घटना का उल्लेख नही मिलता है जिसमे विशेष अधिकार प्राप्त लिच्छवि तथा आम जनता के मध्य किसी प्रकार का सघर्ष हुआ हो।

न्यायव्यवस्था

लिच्छवियो की न्यायव्यवस्था बहुत उन्नतिशील थी, जिसका अन्यत्र उदाहरण प्राचीन भारत के गणराज्यो मे नहीं मिलता है। अट्ठकथा मे दी गई कथा से

विदित होता है कि यदि व्यक्ति अपराधी नही है तो उसे अपराधी सिद्ध करना बहुत कठिन था। क्योंकि अभियुक्तों की सुनवाई क्रमशः सात न्यायालयो मे होती थी। किसी भी न्यायालय मे यदि कोई अभियुक्त निर्दोष सिद्ध कर दिया जाता था तो वह अभियोग से मुक्त कर दिया जाता था। लेकिन यदि एक न्यायालय में उसे दोषी सिद्ध कर दिया जाता था तो भी न्यायधीश उसे दण्ड नही दे सकते थे। उस मुकदमे की सुनवाई उससे ऊपर के न्यायालय मे होती थी। इस तरह क्रमश सात न्यायालयों में उसकी सुनवाई होती थी। केवल अतिम न्यायालय, जिसका न्यायाधीश (न्यायाध्यक्ष) स्वय गणप्रमुख राजा होता था, उसे अपराधी घोषित कर सकता था तथा दण्ड दे सकता था।[106]

न्यायिक शक्ति लिच्छवि गणराज्य मे न्याय देने की सर्वोच्च शक्ति राज्याध्यक्ष मे निहित थी। इसी के समक्ष मुकदमे की अतिम सुनवाई होती थी तथा दण्ड पर विचार किया जाता था।[107] वह उचित न्याय देने के लिए विधि मत्री की सहायता भी लेता था।

धर्माधिकारी . न्यायाध्यक्ष के अतिरिक्त केंद्रीय मन्त्रिमडल मे एक मत्री न्याय विभाग संभालता था। इस पद पर बाहरी या दूसरे देश के व्यक्ति को भी आसीन किया जा सकता था जिसे वेतन दिया जाता था।[108] अल्तेकर का मत है कि न्यायाध्यक्ष का कार्य सभवत अधीनस्थ न्यायालयो की अपील सुनकर व्यवहार और धर्म के अनुसार अतिम निर्णय देना था।[109]

न्यायालयो का वर्गीकरण राज्य की न्यायपालिका सात न्यायालयो[110] मे विभाजित थी जिसका क्रम इस प्रकार था। सर्वप्रथम मुकदमा प्रारभिक जाच के लिए विनिश्चय महामात्र के पास आता था। सभवत इन्ही न्यायाधीशो के अतर्गत साधारण तथा फौजदारी के मुक्दमो की सुनवाई होती थी। इसके उपरात मुक्दमो की सुनवाई वोहारिक (न्यायकर्ता) के न्यायालय मे होती थी। वोहारिक (व्यावहारिक) सभवत व्यवहार या विधि के ज्ञाता होते थे। इसके पश्चात मुकदमे की सुनवाई प्रधान न्यायालय अथवा हाई कोर्ट मे होती थी जिसके न्यायाधीश को 'सूत्रधर' कहते थे, जो व्यवहारशास्त्र का आचार्य होता था।

इन सबके ऊपर एक काउसिल होती थी जिसे अष्ट-कुलक कहते थे, जिसमे आठ न्यायकर्ता (जूरी व्यवस्था) होते थे।[111] राईस डेविड ने अष्टकुलक का अर्थ आठ वर्गो या उपजातियो के प्रतिनिधि से लिया है।[112] लेकिन यह समीचीन नही लगता। कात्यायन ने 'कुल' शब्द का व्यवहार जूरी के अर्थ मे किया है।[113] जायसवाल अष्ट-कुलक का अर्थ 'आठ सदस्यो की न्यायकारी काउसिल' से लेते है।[114] सभव है, वज्जि सघ म आठ कुल सम्मिलित होने के कारण प्रतीक रूप मे इस न्यायालय के जूरी सदस्यो की सख्या आठ रखी गई हो। इस न्यायालय से नीचे न्यायालयो को किसी व्यक्ति को निर्दोष पाने पर मुक्त करने का अधिकार

उनके पास नही था। दोषी ठहराए गए व्यक्तियो के मुकदमों की सुनवाई तत्पश्चात अष्टकुलक के न्यायालय मे होती थी। संभवत इसी न्यायालय के जूरी सदस्य उसपर विचार करके उचित निर्णय देते थे। लेकिन इन सदस्यो को भी सभवत अभियुक्तो को दोषी पाने पर दण्ड देने का अधिकार नही प्राप्त था।[115] उपरोक्त न्यायालयो म भी यह अभियुक्त दोषी सिद्ध हो जाता था तो उसकी अतिम सुनवाई सभवत केंद्रीय समिति के मत्रिमण्डल म क्रमश सेनापति, उपराजा तथा राजा के पास होती थी। उसे दोषी पाने पर अतिम रूप से राजा ही नियमानुसार दण्ड देता था।[116]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था मे कुलक या कुल न्यायालय का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह न्यायालय छोटे व बडे न्यायालयो के मध्य एक कडी थे। सस्कृत साहित्य म वर्णित गणतत्रात्मक न्याय-व्यवस्था भी कुछ सीमा तक अट्ठकथा में वर्णित न्यायव्यवस्था स मेल खाती है। महाभारत के रचयिता की सम्मति मे किसी गणराज्य मे अभियुक्तो के अपराधो पर दण्ड का विचार अथवा न्याय मुख्यतया पडितो के द्वारा शीघ्र (निग्रह पडितै कार्य क्षिप्रमेव प्रधानत) होना चाहिए।[117] कुल न्यायालय अथवा कुल के वृद्धो से निष्पक्ष और शीघ्र न्याय की अपेक्षा रहती थी और उनसे यह आशा नही की जाती थी कि किसी व्यक्ति को अपराध करता देखकर वे उसकी उपेक्षा करें अथवा चुपचाप बैठे रहेगे।[118] भृगु ने भी भिन्न भिन्न न्यायाधीशो का जिस प्रकार उल्लेख किया है, उससे यही संकेत मिलता है कि प्राचीन भारत के गण-राज्यो म निर्णय करने वाली सस्था कुलिक और कुल कहलाती थी।[119]

न्याय निर्देशिका अतिम न्यायालय का न्यायाध्यक्ष (गण प्रमुख राजा) अभियुक्त को दण्ड देने के लिए पवेनिपत्थक या प्रवेणि पुस्तक (न्याय निर्देशिका) की सहायता लेता था जिसमें पूर्व निर्णित मुकदमो का विवरण सग्रहीत रहता था।[120]

व्यक्तिगत स्वतत्रता लिच्छवि गणराज्य म इस प्रकार की उन्नतिशील न्यायव्यवस्था देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय नागरिको की स्वतत्रता की रक्षा बहुत सावधानी से की जाती थी।[121] रमेशचद्र मजूमदार ने कहा है कि नागरिक सुरक्षा की इतनी अच्छी व्यवस्था ससार म बहुत कम देखने को मिलती है।[122] लेकिन यू एन घोषाल[123] ने इस व्यवस्था म सदेह व्यक्त करते हुए कहा कि न्यायव्यवस्था का इतना लबा क्रम होने के कारण इसके व्यवहार मे बाधा होती है। पुनश्च इसम अपराधी अनुचित रूप से लाभ उठा सकता है। इस व्यवस्था स यह भी भाव निकलता है कि राजा को अपने पदाधिकारियो की योग्यता तथा ईमानदारी पर विश्वास नही था। अत सभव है कि बाद म लोगो ने इस न्यायालय की सूची म उन सभी पदाधिकारियो के नाम जोड दिए जो

उन्हें ज्ञात थे, क्योकि बुद्ध घोष ने वज्जिसघ के लोप जाने के लगभग आठ शताब्दी पश्चात महा-परिनिब्बान सुत्त की यह व्याख्या सुमगल विलासिनी मे लिखी थी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं लिच्छवि गणराज्य मे एक व्यक्ति न्याय पाने के लिए अतिम न्यायालय तक बिना किसी असुविधा के पहुच सकता था। आज की भाति उसे उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय तथा राष्ट्रपति के पास अपील करने के लिए किसी विशेष विधि या शर्त का पालन नही करना पड़ता था। मुकदमो की सुनवाई स्वत ही अगले न्यायालय म विचारार्थ पहुच जाती थी। निर्दोष व्यक्ति को अपनी सफाई प्रस्तुत करने का समुचित अवसर मिलता था जसमे उसके हित की रक्षा होती थी।

सदर्भ तथा टिप्पणिया

1 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति (प्रथम सस्करण), पृ 77
2 स्मिथ (सपा), परमत्थजोतिका आन द खुद्दकपाठ पा टे सो, पृ 158 59 वि च ला, क्षत्रिय क्लान्स पृ 17 21 (यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण है इससे केवल यह आभास मिलता है कि वज्जि गणराज्य सबसे अधिक क्षेत्र पर था
3 बील, बुद्धिस्ट रिकार्ड आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग 2 पृ 65-67
4 पा हिस्ट्री (छठा सस्करण), पृ 118
5 मज्झिम निकाय, भाग 1 पृ 231 (इसे सम नि हि भो गोतम सघानम् गणनम) वज्जिनम् मल्लानम् देवीदत्त शुक्ल, प्राचीन भारत में जनतत्र (प्रथम स, 1966), पृ 29 शुक्ल के विचार में गण तथा सघ शब्द पर्यायवाची नही है सघ शब्द का सामान्य अथ समूह यथा नरों, गायकों, व्यापारियो का सघ धार्मिक सघ, जैसे बौद्ध सघ आदि मे यह अलग अथ रखता है सघ शब्द का पारिभाषिक अथ में सघ राज्य के लिए होता है, जिनमें एकाधिक गणराज्य सगठित हाते थे, जैसे अ धक वृष्णि सघ यद्यपि पाणिनी सूत्र (3 3 86) 'सघोद्घौ गण प्रशसयो' म सघ और गण समान अर्थ में ही प्रयोग हुआ है जिसके आधार पर बहुत से विद्वानों ने राज्यशास्त्र में गण और सघ को एक ही मान लिया लेकिन सभवत सघ शब्द को सामान्याथ में गण कहा जाता था क्योंकि दोनों शब्द समूह के लिए प्रयुक्त होते थे पाणिनी के ही सूत्र 5 2.52 'बहुपूगण सघस्य तिथुक्' से स्पष्ट होता है कि गण तथा सघ को विशेष अथ में लिया है और दोनो को भिन्न भिन्न माना है क्योकि उक्त सूत्र में पूग, गण व सघ नामक सस्थाओ की काय प्रणाली की ओर सकेत किया गया है लेकिन इससे स्पष्ट नहीं होता कि पाणिनी न गण और सघ को राजनीतिक सस्थाओ के अर्थ में प्रयुक्त किया है (वही, पृ 25) बौद्ध साहित्य में गण बहुधा गणराज्य के लिए ही प्रयुक्त हुआ है बौद्ध सघ में सघ की इकाइयों को वग कहा है और कात्यायन ने (बौर मित्रोदय, पृ 12) वर्गिन शब्द का व्याख्या करते हुए वग का गण कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि सघ की इकाई को गण कहते थे (वही पृ 27)

इस प्रकार गण और सघ के अर्थों में अतर दखते हैं अत कहा जा सकता है कि

सघ की इकाई क गण कहते थे, वज्जिराज्य को वज्जिसघ समवत इसलिए कहा जाता था, क्योंकि उसमें विदेह, लिच्छवि, वज्जि तथा ज्ञातिक आदि सम्मिलित थे.

6. महावस्तु भाग 1, पृ 254 (गण), पृ 225 (लिच्छवि गण)
7. महावस्तु भाग 1, पृ 254 (गण), पृ 225 (लिच्छवि गण), विनय पिटक (ओल्डनबर्ग द्वारा सपा), भाग 4 पृ. 225 (वि च ला द्वारा सपा , क्षत्रिय क्लान्स, पृ 71 72 पर उद्धृत) में भी लिच्छवि गण का उल्लेख है
8. गिलगिट मैन्युस्क्रिप्ट, भाग 3, खण्ड 2, पृ 3, वै अभि ग्र ,पृ 131
9. प्रथम अध्याय देखिए
10. ब कल्पसूत्र, 128 (सै बु ई , भाग 22 पृ 266).
    ब वै अभि ग्रं, पृ 22.
11. योगेंद्र मिश्र (वैशाली, पृ 144) सुझाव देते हैं कि नौ गण राजा काशी तथा नौ गण राजा कोशल से सबधित थे.
12. हिंदू पालिटी (तृतीय सस्क), पृ 48
13. फाउस बाल (सपा), जातक, भाग 1, पृ 399 (जायसवाल द्वारा हिंदू राज्य (हिंदी अनुवाद) पृ 156 पर उद्धृत), जायसवाल का मत है कि आजकल जिसे वोट कहते हैं, वह उन दिनों छद कहलाता था छद शब्द का अर्थ है, स्वतंत्र, स्वतंत्रता या स्वाधीनता इससे यह सूचित होता है कि किसी विषय पर सम्मति देते समय सम्मति देने वाला बिलकुल स्वतंत्रता पूर्वक और अपनी इच्छा से कार्य करता रहा है (वही)
14. जायसवाल, वही, पृ 157
15. घोषाल, स्टडीज इन एंशिएट हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ 27 ? 7?
16. अ अल्तेकर प्राचीन भारतीय शासन पद्धति (प्रथम सस्क) पृ 48
    ब वही, पृ 72.
17. पूर्व मीमांसा, 6.7 3 ऋग्वेद (10 9 12), यजुर्वेद (31 11), अथर्वेद (19 6 9) में क्षत्रिय वर्ग के लिए राजन्य शब्द प्रयुक्त हुआ है
18. अमरकोष, 2 8.9 3 अथ राजकम्, राजन्यक व नृपतिक्षत्रियाणां गणे क्रमात
19. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति (प्रथम सस्क) पृ 72!
20. वही, पृ 79, अल्तेकर, वै अभि ग्र , पृ 69
21. हितनारायण झा, लिच्छवि, पृ 80.
22. अगुत्तर निकाय, भाग 3 पृ 76
23. जायसवाल, हिंदू राज्यतंत्र (हिंदी अनु) पृ 161
24. कुलानां हि समूहस्तु गण सम्प्रकीर्तित 1, वीरमित्रोदय, पृ 426 (जायसवाल, हिंदू राज्य तंत्र, पृ 161 पर उद्धृत)
25. जायसवाल, वही, पृ 161
26. थीराद शर्मा भारत आदिम साम्यवाद से दास व्यवस्था तक (तृतीय संस्क , 1978) पृ 69.
27. महाभारत, शान्तिपर्व, 107 30 आत्मा च सदृशा सर्वे कुलेन सदृशास्तथा
28. महाभारत, शान्तिपर्व 58 59 . स्वराष्ट्रे मन्त्र ... कार्याकार्ये
29. हितनारायण झा, लिच्छवि, पृ 76 इ हि क्वा . भाग 22, 1947, पृ 59 'खण्ड' मगध राज में 500 अमात्यों का प्रमुख था, वहां से वह अन्य मंत्रियों की ईर्ष्या के कारण मगध

77 अर्थशास्त्र, अ 11 'वार्ता शस्त्रोपजीविन, अल्तेकर प्रा भा शा पद्धति (प्रथम संस्त), पृ 87
78 अल्तेकर, प्रा भा शा पद्धति (प्रथम संस्त) पृ 87
79 एस एन मिश्रा, एंशिएंट इंडिया रिपब्लिक, पृ. 122
80 अल्तेकर, प्रा भा शा पद्धति (प्रथम संस्त) पृ 83 डायलाग्स आफ बुद्ध, भाग 2, पृ *80 महाभारत, 12 91 5*
81 अल्तेकर, वही, पृ. 83 (अर्थशास्त्र, 11)
82 अल्तेकर, वही, पृ 83, महाभारत, 12 81 8 9
83 अल्तेकर, वही, पृ. 84
84 वही, पृ. 84
85 वही, पृ 84
86 वही, पृ 84
87 वही, पृ 84
88. वही, पृ 84
89 वही. पृ 84
90 वही, पृ 85, रॉकहिल, लाईफ आफ बुद्ध, पृ 118 19
91. रॉकहिल वही पृ 63 64
92 जायसवाल हिंदी अनु), पृ 154
93 सं बु ई, भाग 17, पृ 266
94 चुल्लवग्ग, 4 14 9, जायसवाल हि रा पृ 154
95 जायसवाल वही, पृ 154
96 *अल्तेकर, वही पृ 85, जायसवाल हि रा (हिंदी) पृ 155, राइस डेविड्स डायलाग्स* आफ बुद्ध भाग 2 पृ 263 टिप्पणी 4
97 अगुत्तर निकाय, भाग 3 पृ 76
98 अल्तेकर, प्रा भा शा पद्धति (प्रथम संस्त) पृ 87
99 वही, पृ. 87
100 वही, पृ 88
101 योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 182 192 (इन ग्रामो की स्थित तथा पूर्ण विवरण के लिए)
102 वही पृ 184 तथा 192
103. अल्तेकर, प्रा भा शा पद्धति (प्रथम संस्त) पृ 88
104 वही, पृ 88
105 अगुत्तर निकाय, भाग 3 पृ 76, जायसवाल हिंदू राज्यतंत्र (हिंदी अनु) पृ 161
106 *सुमगलविलासिनी (दीघ कमेंट्री) भाग 2 पृ 519*
107 शोभा मुकर्जी, द रिपब्लिकन ट्रेंड इन एंशिएंट इंडिया, पृ 93
108 काशी प्रसाद जायसवाल हि रा (हिंदी अनु) पृ 69
109 द्रष्टव्य, टिप्पणी 76
110 का प्र जायसवाल हि रा (हिंदी अनु) पृ 70
111 वही, पृ 71

112. राइस डेविड्स बुद्धिस्ट इंडिया (कलकत्ता, 1959) xı पृ 22 ज ए सो, भाग 7, पृ. 993, टर्नर के लेख की टिप्पणी.
113 वणिका स्यात् कतिपयै कुल भूर्तरधिष्ठितम् (जायसवाल, हिंदू राज्यतंत्र, पृ. 70 पर उद्धत)
114 वही, पृ. 71
115 वही, प. 70
116 हितनारायण झा, लिच्छवि, पृ 85, वैशाली, प 149
117. महाभारत, शांतिपव, अध्याय 107 27 और 1 9 (जायसवाल हिंदू राज्यतंत्र, पृ 70 पर उद्धत)
118. जायसवाल, वही, पृ 70
119 वही, पृ. 70
120 झा, लिच्छवि, पृ 85, योगेंद्र मिश्र, वही, 149, जायसवाल, हिंदू राज्यतंत्र (हिंदी अनु) पृ. 69.
121 जायसवाल, हिंदू राज्यतंत्र (हिंदी अनु), पृ. 69 हिंदू पालिटी (तृतीय संस्क), पृ 46.
122. र च मजूमदार, एंशिएंट इंडिया (बनारस, 1952) पृ. 165.
123. यू एन घोषाल, स्टडीज इन एंशिएंट हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ. 386-87, इ. हि. क्वा, भाग 20-4 (1944), पृ. 340.

11

आर्थिक दशा

लिच्छवि नगर व ग्रामो मे रहते थे। अल्तेकर का मत है कि लिच्छवि गणराज्य के सात हजार सात सौ सात सदस्य राजाओं मे कुछ सदस्य राजधानी मे विभिन्न पदों पर थे तथा कुछ ग्रामो मे ही रहते थे।[1] बौद्ध ग्रंथो मे वैशाली क्षेत्र के कुछ ग्रामो का उल्लेख मिलता है। भगवान बुद्ध ने अन्तिम वर्षावास वैशाली के वेलुवग्राम (वेणुगाम) मे किया था वहीं वे भयकर रूप से बीमार पड गए। यहा से भगवान बुद्ध ने अतिम बार वैशाली का भ्रमण किया। वैशाली भ्रमण के उपरांत भगवान बुद्ध भण्डगाम, अवगाम होते हुए जबूगाम गए, तत्पश्चात् 'भोगनगर' पहुचे जहा उन्होने आनद चैत्य मे विहार किया था। यहा से पावा के लिए प्रस्थान किया था।[2] इसी तरह वैशाली क्षेत्र के अन्य ग्रामों का उल्लेख भी बौद्ध ग्रंथों मे मिलता है, जैसे हत्थिगाम, कालदगाम, कोटि गाम।[3] इससे पता चलता है कि लिच्छवि गणराज्य मे नगर तथा ग्रामो दोनो का अस्तित्व था।

बौद्ध ग्रंथो[4] से पता लगता है कि वैशाली नगर धनवान व्यक्तियो से परिपूर्ण था। वैशाली क्षेत्र मे अच्छी उपज होने के कारण खाद्य सामग्री का यहा कभी अभाव नही हो पाता था। भिक्षु आसानी से अपनी इच्छानुसार भिक्षा पा जाते थे। वैशाली मे एक व्यक्ति अच्छी आय अर्जित कर सकता था, और दूसरा उसकी कृपा पर निर्भर रहकर जीवन व्यतीत कर सकता था।[5]

नगर तथा ग्राम

बौद्ध तथा जैन ग्रंथो से पता चलता है कि ईसा से छठी शताब्दी पूर्व कई नगर *अस्तित्व मे आ गए थे। नगर साधारणतया चारो ओर दीवारो तथा गुबजो*[6] *से* घिरे रहते थे। बाहरी आक्रमणो से सुरक्षा हेतु गुबजो पर आवश्यक सैन्य दल[7] हमेशा पहरा दिया करता था। दीवारो के चारो ओर पानी से भरी खाइयो तथा उसके चारो ओर एक और दीवार[8] (परकोटा) होती थी। नगर मे प्रवेश करने

लिए बडे-बडे प्रवेश द्वार होते थे जो रात्रि के समय बद रहते थे तथा प्रवेश निकास निषेध[9] होता था।

नगर के भीतर भिन्न-भिन्न व्यवसाय मे लगे लोग अलग-अलग घरो मे रहते । जैन ग्रथो[10] से सूचना मिलती है कि कुण्डग्राम तथा वाणिज्यग्राम मे क्रमश. ह्मण तथा वैश्य निवास करते थे। धनी तथा कुमार वर्ग के लोग अनेक भूमिक वनो मे रहते थे जिनमे उद्यान, मनोरजन के लिए मैदान तथा सरोवर भी होते । महावग्ग[11] के अनुसार वैशाली मे सात हजार सात सौ सात अनेक भूमिक वन, सात हजार सात सौ सात गुबजनुमान भवन, सात हजार सात सौ सात आराम या सात हजार सात सौ सात कमल सरोवर थे। इनके अतिरिक्त साधारण ोगो के लिए साधारण घर भी थे। भवन लकडी तथा ईंटो[12] से बनाए जाते थे। नय पिटक मे पत्थरो से भवन निर्माण करने वाले राज की कला पर विशेष काश डाला गया है। भवन के भीतर बाहर अच्छे किस्म के चूने से पलस्तर या दीवारो को खूबसूरत भित्ति चित्रो से सजाया जाता था।[13] बडे भवनो मे बा-चौडा प्रवेश द्वार होता था जिसके दाए कोष तथा बाए अन्न भण्डार होता ा। इस प्रवेश द्वार से सीधे भीतर के आगन तक पहुचते थे। आगन के चारो ओर कमरे बने होते थे। इन कमरो के ऊपर समतल छत होती थी जिसे 'उपरि ासाद तल' कहते थे, जहा प्राय मण्डप के नीचे गृहस्वामी बैठा करता था। यही उसका बैठक कार्यालय तथा भोजनगृह होता था।[14]

विनय पिटक मे गर्म पानी से स्नान करने की व्यवस्था वाले स्नानागार (गर्म हमाम) का विवरण पढकर राइस डेविड्स[15] चकित रह गए थे। दीघ निकाय[16] मे एक खुले मैदान मे बने एक ऐसे जलाशय का उल्लेख है जिसमे पानी तक नीचे जाने के लिए सीढिया बनी थी। ये सीढिया पूर्णतया पत्थरो से बनाई गई थी जिसके दोनो ओर पत्थर की छोटी सी दीवार भी बनी थी। इन दीवारो पर फूल-पत्ती आदि उत्कीर्ण थे। यह सार्वजनिक जलाशय था। धनी व्यक्तियो के अपने उपयोग के लिए बने जलाशय तो निश्चय ही अत्यत सुदर होते रहे होंगे। स्वर्गिक नगरी वैशाली के लिच्छवि इन सबसे अवश्य परिचित रहे होंगे।

लिच्छवियो की एक बडी सख्या ग्रामो मे बसती थी। गाव के लोग बहुत सादे और स्वाभिमानी होते थे। सुदर नगर तथा सुदर भवनो को देखकर लालायित नहीं होते थे। वे अपने साधारण जीवन से सतुष्ट थे। गाव में घर *प्राय मिट्टी तथा छप्परो से बने होते थे। जिन्हें मोरडी[17] कहते थे।* झोपडियों के चारो ओर खेत[18] हुआ करते थे। झोपडिया प्राय सटी हुई होती थी।[19] उनके बीच मे सकरी गलिया होती थी। ये झोंपडिया साधारण होते हुए भी कभी कभी बहुत आकर्षक लगती थीं। वज्जि क्षेत्र मे इसे रमणीय कुटिक[20] कहा गया है। इस झोंपडी के फर्श और दीवारें बहुत अच्छी बनाई गई थीं। इसके चारों ओर

बगीचा तथा सरोवर था।

गाव प्राय दो प्रकार के होते थे। प्रथम प्रकार म प्राय कृपक परिवार तथा ग्राम भतृक (खेतिहर मजदूर) बसते थे।[21] इनमे उद्योग करने वाले व्यापारी तथा शिल्पियो की सख्या न्यून होती थी। दूसरे प्रकार के गावो म एक ही वर्ग के शिल्पिक[22] रहते थे। जातको मे बढइयो (वँदेहक)[23], लुहारो (कम्मकारो या घमकारो)[24], कुम्हारो (कुभकारो)[25] तथा अन्य तरह के कार्य करने वाले शिल्पियो के गावो का उल्लेख मिलता है।

ग्रामवासी जनसुविधा के कार्यों, जैसे सडक निर्माण[26] कुए की खुदाई[27], बाघ का निर्माण[28], मदिर बनाने[29], पाठशाला खोलने तथा देखभाल करने[30], शिक्षक के लिए झोपडी[31] बनाने आदि श्रमदान[32] द्वारा करते थे। गाव में बहुधा सभा[33] आदि का भी आयोजन किया जाता था मतभेद होने पर उसका निर्णय बहुमत द्वारा होता था।[34] प्रत्येक गाव मे एक मुखिया होता था जो सभवत ग्रामवासियो द्वारा चुना जाता था। ऐसा लगता है कि मुखिया पद के लिए उम्मीदवार कुलीन व्यक्ति ही हो सकता था। अगुत्तर निकाय[35] मे भगवान बुद्ध लिच्छवि पुत्रो को उपदेश देते हुए कहते हैं कि वे भी उन्नति करके राष्ट्रिक, पेत्तनिक गाम गामणिक तथा पूग गामणिक (व्यावसायिक या शिल्प सबधी सघा के प्रधान) आदि बन सकते हैं। यद्यपि ग्राम मुखिया के कार्यों का विवरण नही मिलता है, लेकिन हम अनुमान लगा सकते हैं कि गाव के सभी महत्त्वपूर्ण कार्य उसकी सलाह से क्रियान्वित होते रहे होंगे।

कृपि व्यवस्था

गाव के लोगो का प्रमुख व्यवसाय कृपि था। छोटे कृपक अपने खेतो मे स्वय कार्य करते थे। बडे किसान खेतिहर मजदूरो (ग्राम भतृक)[36] और दासो[37] से यह कार्य कराते थे। कृपि कार्य किसी विशेष जाति के लोग ही नही, बल्कि सभी जातियो के लोग करते थे। यहा तक कि ब्राह्मणो को भी कृपि मे रुचि लेते पाते हैं। सोमदत्त[38] व वग जातक[39] मे ब्राह्मणो को स्वय कृपि कार्य करते बताया गया है। सुत्त निपात[40] मे एक ब्राह्मण द्वारा पाच सौ हलो से अपने खेत जोतने का उल्लेख मिलता है। विनय पिटक[41] मे एक ब्राह्मण के जौ (याव) के खेतो का उल्लेख है। महासत सोम जातक[42] मे एक ब्राह्मण के द्वारा पाच सौ बैलगाडी अन्न पूर्व से पश्चिम भजने का वर्णन प्राप्त होता है। फिक् के अनुसार 'ब्राह्मण स्वय हल चलाते थे तथा दासो और खेतिहर मजदूरो से भी खेती कराते थे।[43]

धार्मिक क्रियाओं म अपना जीवन यापन करने वाले मुनि आदि कृपि का महत्त्व स्वीकारते थे। कालिदास[44] उन ऋषियो के विषय मे लिखते हैं जो अपने आश्रमो के खेतो मे विभिन्न प्रकार की फसल उगाते थे। राजा रघु[45] कौत्स से पूछते हैं कि क्या किसी के पशुओ ने धान के खेत की क्षति की है ? खेतो मे सुरक्षा

के लिए लोग बाड़ो[46] से खेत को घेर देते थे। यदि कोई पशु किसी के खेत को क्षति पहुंचाता तो पशु के मालिक को दण्ड दिया जाता था।[47] दण्ड में जुर्माना[48] भी किया जा सकता था।

लोगों का मुख्य भोजन चावल था। विभिन्न प्रकार के चावल पैदा किए जाते थे। सामान्य चावल को 'वृहि'[49] तथा अच्छे चावल को शालि[50] कहते थे। शालि कई प्रकार[51] की होती थी, जैसे महाशालि, गंध शालि और कमन शालि आदि। चावल के अतिरिक्त जौ(याव), गेहू (गोधूम) की भी अच्छी पैदावार होती थी।[52] किताक, श्यामाक, प्रियगु (बाजरा), कोद्रव से भी लोग परिचित थे।[53] अधिकतर समाज का निर्धन वर्ग इसका प्रयोग करता था। माष, मसूर, मुद्ग, कुलुत्य (घोड़े का चना) आड्ढकि, कलाय (मटर की फली) और अन्य प्रकार की दालें उगाई जाती थी।[53] सब्जी, फूल, फलों के पेड तथा गन्ने की खेती मे भी लोग काफी रुचि लेते थे। सब्जियों मे बैंगन, मूली, लौकी, ककडी और पुदीना भी लोगों में काफी लोकप्रिय थी।[54] कमल का डठल तथा जड और सरसों का साग भी सब्जी के रूप मे खाया जाता था।[56] फलो मे आम और केला लोगों को प्रिय था जो प्रचुर मात्रा मे पैदा होता था। ह्वेनत्साग[57] कहता है कि वैशाली मे आम्र और केलों के पेड प्रचुर मात्रा में थे। इसके अतिरिक्त[58] आमलक, बेदाना, गुलाबी सेव तथा शृगाटक की भी काफी अच्छी पैदावार होती थी।[59] इसके अतिरिक्त बहुत अधिक मात्रा मे सुगधित पौधो, मसालो, नीलरग का पौधा तथा गूलर की भी खेती की जाती थी।[60]

भूमि का स्वामित्व

वैशाली क्षेत्र मे भूमि व्यवस्था किस प्रकार की जाती थी, इसकी कोई प्रत्यक्ष जानकारी नही मिलती है। राइस डेविड्स का मत है कि गाव मे जितने परिवार होते थे सामान्त सपूर्ण खेत उतने भागो में बटा होता था और प्रत्येक परिवार अपने हिस्से की उपज पाता था। भूमि पर लोगो का स्वतन्त्र स्वामित्व नही था। सारे खेतों मे एक साथ ही खेती होती थी। सिंचाई के लिए गाव की ओर से नहरें होती थी और जल वितरण की व्यवस्था मुखिया की देखरेख मे नियमानुसार होती थी। सारे खेतो का एक आड होता था। समूचे खेत अपने मेड़ो के कारण, जो नहरों का भी काम करती, बौद्ध भिक्षुओं के पैबन्द लगे चीवर सरीखे जान पडते थे।[61अ] ऐसा कोई उल्लेख नही मिलता जब इस काल मे किसी हिस्सेदार ने अपने गाव के खेत के हिस्से को बाहरी आदमी को बेचा हो या बधक रखा हो। व्यक्ति को वसीयत करने यहा तक कि अपने परिवार का हिस्सा भी निर्धारित करने का अधिकार नही था। ये सभी मामले पूर्व परपरा के आधार पर तथा समाज के प्रतिष्ठित लोगो की राय से निश्चित किए जाते थे।[61ब] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उन दिनो व्यक्तिगत स्वामित्व[62] का

अधिकार तो था लेकिन भूमि बेचने तथा हिस्से पर देने का अधिकार नही था। सभवतः भूमि का सरक्षण करने तथा अन्य व्यक्ति को भूमि हस्तातरित करने का अधिकार केवल राज्य को था जो मुखिया के माध्यम से होता था।[63]

सार्वजनिक अन्न भण्डार[64] भी होते थे जहा राज्य को उपज या हिस्सा देने के लिए ले जाया जाता था। उसके पश्चात शेष उपज खेत के मालिक को मिल जाता था। आपात काल जैसे सूखा या बाढ के समय के लिए अन्न भण्डारो मे अन्न सुरक्षित[65] रखा जाता था जो गरीबो को भोजन तथा बीज आदि के लिए सहायता के रूप मे दिया जाता था।[66]

पशु पालन

कृषि के अतिरिक्त लोग पशु पालन भी करते थे। मनु[67], कामदक[68] तथा अन्य विचारक कहते हैं कि ईश्वर ने पशुओ के पालन के लिए ही वैश्य को पैदा किया था। लेकिन व्यवहार मे पशु पालन हर वर्ग का व्यक्ति करता था। खेती करने वाले प्राय सभी लोग दुग्ध उत्पादन तथा यातायात के लिए पशु पालन करते थे। यहा तक कि राजा भी पशु पालते थे। राजा विराट[69] के पास बहुत बडी सख्या मे गायें थी।

गाय, घोडा, भैंस, ऊट, हाथी, बकरा, भेडा, कुत्ता तथा सुअर आदि विभिन्न कार्यों मे प्रयोग के लिए पाले जाते थे।[70] दूध तथा दूध से बनने वाले भोज्य पदार्थ जैसे दही, मक्खन तथा मक्खन वाले दूध के लिए गायो का महत्व बहुत अधिक था।[71] इसके अतिरिक्त जानवरो के मास और हड्डियो से खाद भी बनती थी।[72] खाद तथा उपले बनाने के कार्य मे गोबर का प्रयोग होता था।[73]

जुताई तथा यातायात के लिए बैल का प्रयोग किया जाता था।[74] घोडे तथा हाथी युद्ध आदि मे बहुत सहायता करते थे।[75] उन्हें यातायात के लिए भी प्रयोग किया जाता था। गाव मे जानवरो को चराने के लिए सार्वजनिक घास का मैदान (गोप्रकार)[76] भी होता था। जानवरो को चराने के लिए चरवाहे (गोपालक)[77] भी होते थे। मनु स्मृति[78] मे राय दी गई है कि प्रत्येक गाव के समीप लगभग सौ धनुष या चार सौ हाथ के क्षेत्रफल का चरागाह अवश्य होना चाहिए। शहर के चरागाह गाव के चरागाह से तीन गुना बडा होना चाहिए।[79] चरागाह क्षेत्र के भीतर उगे धानो को यदि कोई जानवर नुकसान भी पहुचा देता था तब भी चरवाहे दण्ड के भागी नही होते थे।[80]

गोपालको (चरवाहो) तथा पशुओ के मालिको के हित की सुरक्षा हेतु सविधान बनाए गए थे। मनु स्मृति[81] के अनुसार यदि कोई गोपालक दस गायो को चराता है तो वह अपनी इच्छानुसार किसी एक गाय का दूध ले सकता था।

गोपालक का कार्य सुबह पशुओ को चराने के लिए ले जाना तथा शाम को

वापस लाना होता था।[82] इसके साथ ही उसे जगली जानवरो तथा डाकुओ से बचाने के लिए सभी सभव उपाय करना भी होता था यदि वह किसी कारण जानवरो की रक्षा नही कर पाता था तो क्षति की सूचना शीघ्रातिशीघ्र मालिको तक पहुचा देता था[83] यदि जानवरो की क्षति उसकी लापरवाही के कारण हो जाती तो प्रतिज्ञापूर्ण करने के लिए वह वचनबद्ध होता था।[84]

व्यवसाय

लिच्छवि अपनी जाति पर गर्व करते थे,[85] लेकिन यह गर्व विशेष व्यवसाय को चुनने मे बाधा नही उत्पन्न करता था। वे अपनी रुचि के अनुसार कोई भी कार्य करने को तैयार रहते थे। फनद[86] जातक मे एक ब्राह्मण को चार पहियो वाली गाडी बनाने के व्यवसाय मे लगा हुआ देखते हैं। चूलनदिय जातक[87] मे एक ब्राह्मण अपनी जीविका शिकार किए जानवर बेचकर करता है। जातको मे कुछ ब्राह्मण व्यापारी, काफिले की पहरेदारी, बकरिया चराने, धनुष बनाने आदि के व्यवसाय मे लगे पाए जाते हैं।[88] लेकिन कुछ आदिवासी वर्ग अपने आनुवशिक व्यवसाय को ही चलाते थे। इस प्रकार मनु स्मृति के अनुसार चाण्डाल, पुक्कस, निषाद, वेण तथा रथकार निम्न वर्ग के समझे जाते थे।[89] उन्हे शहर के भीतर बसने की अनुमति नही थी।[90] उद्योगो मे विकास होने से शहरो मे नौकरी आदि की सुविधा म वृद्धि हुई तो बहुत से भूमिहीन मजदूर शहरा की ओर आकृष्ट होने लगे लेकिन वे गाव के प्रति मोह[91] नही छोड पाते थे।

उद्योग-धन्धे

प्राचीन काल मे दस्तकार गाव से ही जुडे होते थे।[92] वे गाव वालो की हर छोटी-छोटी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। गावो मे उनका अलग गाव भी होता था जो उनके नाम से जाना जाता था। जातको मे हम बढइयो (वँड्ढका), लुहारो (कम्मार), कुम्हारो (कुलाल, कुभकार) के अलग अलग गावो का उल्लेख मिलता है,[93] जहा उनकी अपनी समितिया भी थी, जिसे पूगया[94] श्रेणी[95] कहते थे। जातको म इन समितियो के प्रमुख को जेट्ठक[96] कहा गया है। कुछ दस्तकार शहरो मे आकर बस गए। यहा भी वे गाव की भाति एक अलग मोहल्ले मे इकट्ठे रहते थे जिससे उस मोहल्ले का नाम उनके नाम से जाना जाने लगा। एक जातक मे 'दतकार वीथि'[97] का उल्लेख है। इसी प्रकार बुनकरो (दाय)[98] तथा वैश्यो (वाणिज्य ग्राम)[99] के मोहल्लो का उल्लेख है। नगरो के उत्कर्ष होने पर कई तरह के शिल्पकारा ने जिनके व्यवसाय आनुवशिक[100] थे, एक मोहल्ले में इकट्ठे रहना प्रारभ किया। नागरिको के पहनने ओढने के शौक मे पर्याप्त वृद्धि हुई जिससे कपडा (वसन, वस्त्र)[101] तथा धातु[102] का महत्व बढ गया। कुछ

शिल्पकार कबल[103] और पेशकारी[104] (वेल-बूटा) का कार्य करते थे, तथा कुछ धातु की अनेक प्रकार की वस्तुए जैसे धनुष, तीर, तलवार, चाकू, आरी तथा खेत जोतने के उपकरण आदि तैयार करते थे।[105] भगवान बुद्ध के समय मे सूती कपडा (कार्पास), सन का वस्त्र (क्षौम) तथा रेशमी वस्त्र (कौषेय) का उत्पादन भी होने लगा था। इसके अतिरिक्त ऊन (लोमन, उरण) का उत्पादन बहुत बडी मात्रा मे होता था।[106] सूती कपडो का एक बहुत बडा केंद्र बनारस था।[107] गलीचा (कुट्टकम)[108] तथा सन (पण)[109] से आम लोग भी अच्छी तरह परिचित थे। इन वस्तुओ का अधिक मात्रा मे निर्माण होने की पुष्टि इस बात से होती है कि लोग घोडो और हाथियो पर भी बारीक ऊन का कबल डालते थे।[110] लिच्छवि लोग स्वर्ण तथा बहुमूल्य पत्थरो से बनी वस्तुओ को पहनने के शौकीन[111] थे जिससे स्वर्णकारो[112] तथा बहुमूल्य पत्थरो पर कार्य करने वाले मणिकारो[113] की आवश्यकता अधिक रहती थी। कभी कभी वे इन वस्तुओ का निर्यात[114] भी करते थे। कम्मार (कर्मकार)[115] हाथी, घोडो, गाडी तथा पालकी को सजाने का सामान तैयार करते थे। नगरो के विकास के साथ साथ दक्ष बढइयो (महा-वड्ढकी) की माग मे भी वृद्धि हुई, क्योकि नगरो मे बडी सख्या मे लकडी के कलात्मक मकान बनने प्रारभ हुए।[116] लकडी के घरेलू सामान बनाने के अतिरिक्त वे रथ, नाव तथा व्यापारिक कार्यों के लिए जहाज भी बनाते थे।[117] इसके साथ ही नगरो मे कुम्हारो (कुभकार, कुलाल, कौलाल) चर्मकारो (चर्मण), पत्थरो पर कार्य करने वाले राजगीरो (पाषाण कोट्टाक), ईंटो पर कार्य करने वाले राजगीरो (इठका वड्ढकी) तथा अन्य कारीगरो की माग मे भी वृद्धि हुई।[118] मदिरा[119] बनाने का कार्य भी पर्याप्त मात्रा मे होता था। लिच्छवियो मे इसका सेवन सामान्य रूप से होता था।[120]

एक और महत्वपूर्ण उद्योग तेल तैयार करने का था। प्राचीन काल मे तेल सरसो के बीज, तिल, कुसुब, मधूक, इगुदी तथा अलसी से निकाला जाता था।[121] इगुदी का तेल शिर मे लगाने, सब्जी बनाने तथा दीया जलाने के काम आता था।[122]

नारी और पुरुष दोनो सौंदर्य प्रसाधन, इत्र, धूप तथा लेप सेवन करने के शौकीन हुआ करते थे। कालिदास[123] ऐसे बहुत से सौंदर्य प्रसाधनो की सूची देते हैं—कालागुरु (काला अगरू), शुक्ल गुरु (सफेद अगरू), कालेयक, हरी चदन, हरीताल, धूप कुकुम, आलक्तक (पैर के नाखून तथा होठो को लाल करने के लिए) और गोरोचना आदि। अधिकतर लोग चदन[124] प्रयोग करते थे।

वैशाली मे तालाबो तथा नदियो की अधिकता होने के कारण मछली पकडने का काम भी एक उद्योग बन गया था। लोग सूखी मछली[125] भी खाते थे जिसे धीवर लोग मौसम मे पकड कर सचित करते थे। इसके अतिरिक्त धोबियो

(रजचित्), पत्थरो पर नक्काशी करने वाले (प्रकरित), रस्सी बनाने वाले (रज्जुकार), टोकरी बनाने वाले (विदलकार) तथा ईंटें बनाने वाले लोग भी थे।[126]

विनिमय तथा व्यापार

भगवान बुद्ध के समय सिक्को का चलन होने लगा था। जातको से हमे कई प्रकार के सिक्कों की जानकारी मिलती है। इनमे सुवण्ण, हिरण्य, निक्ख, कहापण, कंस, मासक, पाड तथा काकनिक आदि किस्म उल्लेखनीय है[127] जातकों से पता चलता है कि कहापण सिक्के का प्रचलन बहुत अधिक था।[128] मनु स्मृति के अनुसार यह एक ताम्र सिक्का था।[129]

यद्यपि विनिमय का मुख्य माध्यम मुद्रा थी लेकिन वस्तु विनिमय भी उस समय विशेषकर गावो मे काफी प्रचलित था। जो आज भी देखने को मिलता है।[130]

उस समय व्यापार बहुत उन्नतशील हो चुका था। व्यापारी देश के एक कोने से दूसरे कोने तक व्यापार के लिए जाता था। सुत्त निपात[131] म विवरण मिलता है कि व्यापार का एक मार्ग सावत्थी या श्रावस्ती से दक्षिण पच्छिम की ओर प्रतिष्ठान (या पैठण) तक जाता था इस मार्ग मे छ पडाव पडते थे। दूसरा मार्ग सावत्थी स राजागह (राजगृह) तक जाता था।[132] यह मार्ग सीधा नही था, बल्कि पहाडो के नीचे से होता हुआ वैशाली[133] के उत्तर को छूता दक्षिण को मुडता गगा की ओर जाता था। सभवत यह मार्ग अतत गया को जाता था जहां यह उस मार्ग से जुडता था जो ताम्रलिप्ति से वाराणसी को आता था।[134] मार्ग मे सेतब्या, कपिलवस्तु, कुशीनाय, पावा, हत्थिगाम, भण्डगाम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालदा विराम स्थल पडते थे।[135अ] भगवान बुद्ध इसी मार्ग से राजगृह से वैशाली आए, फिर वैशाली से श्रावस्ती का रास्ता पकडकर मल्लो के शालकुज म पहुचे थे।[135ब]

एक तीसरा मार्ग बडी नदियो के किनारे चलता था। इन नदियो म भाडे पर नावें चलती थी।[136] विनय पिटक म विवरण मिलता है कि वज्जिपुत्तक वैशाली स सहजाति[137] तक नावो से जाते थे। वैशाली राजगृह जाने के लिए गगा नदी एक महत्वपूर्ण साधन थी।[138] विनय पिटक मे उल्लेख है कि वैशाली से राजगृह जाने के लिए एक स्थल मार्ग भी था।[139] दिव्यावदान[140] से पता चलता है कि श्रावस्ती से राजगृह जाते हुए गगा नदी पार करना पडता था। अगुत्तर निकाय[141] और जातक म एक और लघु मार्ग का उल्लेख मिलता है जो सेतव्या से वैशाली जाने वाले मार्ग से हिमालय के निकट उक्कट्ठा नामक स्थान पर जुड़ता है।

एक लबा मार्ग पच्छिम की ओर सिंधु तक जाता था।[142] जो सौ वीर तथा

उसके समुद्रपत्तन तक जाता था।[143] स्थल मार्ग से भी सार्थ जाते थे।[144] राजपूताने के पार भी व्यापारी आगे बढते थे। धूप की गर्मी से बचने के लिए रात मे यात्रा की जाती थी। रास्ते का अनुमान तारो को देखकर लगाया जाता था।[145] समुद्र मार्ग से बवेरू (बेबिलोन) तक व्यापारी यात्रा करते थे।[146] ऐसा भी एक स्थल मार्ग था जो मध्य एशिया के साथ पश्चिम को मिलाता था जिसमे तक्षशिला पडता था और साकेत, सावत्थी (श्रावस्ती), वाराणसी और राजगृह जैसे महानगर पडते थे।[147] पाणिनि ने इस मार्ग को उत्तरापथ कहा है।[148] इस मार्ग पर व्यापारियो तथा यात्रियो का पर्याप्त आवागमन रहने से कोई खतरा नही रहता था। व्यापारी तथा दूसरे लोग आराम से आते जाते थे। बहुत से विद्यार्थी बिना किसी विशेष सुरक्षा व्यवस्था के यहा शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे।[149]

कुछ स्थल मार्ग पूर्ण रूप से सुरक्षित नही थे। सगठित डाकुओ के बहुत से दल वीरानो तथा जगलो मे रहते थे। सतपत्त जातक[150] मे पाच सौ डाकुओ का एक गाव का वर्णन मिलता है, जो एक सगठन के रूप मे सगठित थे। ये डाकू किसी गुप्त जगह मे छिप कर रहते थे और उचित अवसर देखकर व्यापारियो के सार्थ (काफिले) को लूट लेते थे।[151] बहुत से सार्थ अपने माल की सुरक्षा के लिए हथियारबद[152] रक्षको को साथ लेकर चलते थे। ये हथियारबद रक्षक दल सामान्यत जगल तथा खतरनाक इलाको को पार करते समय साथ चलते थे।[153]

लिच्छवि[154] आतरिक तथा बाह्य दोनो व्यापार मे गहरी रुचि लेते थे। अतर्देशीय व्यापार अधिक होता था। वह विदेह से गधार तक, जिसकी दूरी लगभग बारह सौ मील थी, होता था।[155]

ये व्यापारी बहुत साहसी होते थे। वे पाच सौ से एक हजार तक बैलगाडियो का काफिला लेकर चलते थे।[156] इस काफिले का एक नेता होता था जिसे सार्थवाह[157] कहते थे। बडे काफिले मुख्यत धातु, बर्तन, अस्त्रशस्त्र, बनारस के बारीक मलमल, हाथी दात तथा इससे बनी वस्तुए, दैनिक उपभोग की वस्तुए जैसे मसाला, नमक तथा अन्य स्थानीय उत्पादित वस्तुए लेकर व्यापार के लिए दूर दूर तक जाते थे।[158] सिंध (सैंधव) के अश्व बहुत प्रसिद्ध थे।[159] पूर्व के लोग इन अश्वो को बहुत पसद करते थे। जातको मे 'उत्तरापथका अस्सवाणिजा (उत्तर से आने वाले अश्वो के व्यापारी) का उल्लेख मिलता है जो अपने घोडो को पूर्व म विक्रय के लिए लाते थे।[160] व्यापारी वर्ग व्यापार के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागो के लोगो मे आपसी प्रेम, सद्भावना बढाता था। गाधार-जातक मे विदेह राजा[161] एव व्यापारी से कश्मीर तथा गधार के राजा का हालचाल पूछता है।

स्थानीय उत्पादन नगर के बाजार मे वितरण के लिए तथा विशेषकर निर्यात

के लिए भेजा जाता था। नगरो मे अपनी उपज की बिक्री के लिए आपरण या दुकानें होती थी। गावो मे छोटे दुकानदार अपना माल बैलगाडियो तथा गधो पर रखकर ढोते व बेचते थे।[162] इन पर वे कपडे, अनाज, किराना तथा आम उपभोग की वस्तुए रखते थे।[163] नगरो तथा कस्बो मे होटल[164] तथा चिकमण्डी[165] (मास बेचने की दुकानें) भी हुआ करती थी जहा लोग मास भक्षण तथा उसका क्रय कर सकते थे। सब्जी विक्रेता, शिकारी तथा मछली मारनेवाले (धीवर) अपना माल बेचने के लिए द्वार द्वार जाते थे या नगर के बाहर मुख्य द्वार पर खड़े होकर उसे बेचते थे।[166]

देश मे नदियो की भरमार होने के कारण आतरिक व्यापार इनके माध्यम से पर्याप्त मात्रा मे देश में होता था। गगा नदी के द्वारा व्यापारी देश के विभिन्न भागो मे तथा समुद्र तक जाते थे।[167] रास्ते मे विनिमय के बाजार होते थे[168] जहा वे अपने माल की बिक्री तथा अदला-बदली करते थे। ये बाजार विश्राम स्थल का भी काम करते थे। इस स्थान से माल भीतरी भाग मे भेजा जाता था, जहा स्थानीय उपज के विनिमय तथा विक्रय केंद्र होते थे।[169]

इस प्रकार उस समय भारतवर्ष के समृद्ध व्यापारिक केंद्रो मे चपा, वाराणसी, तथा वैशाली काफी प्रसिद्ध थे। वैशाली गगा नदी के माध्यम से ताम्रलिप्ति (एक महत्वपूर्ण बदरगाह) मे जुडा हुआ था। जिसके द्वारा रोम तक व्यापार होता था इसकी पुष्टि जातक तथा रामायण महाभारत से भी होती है।[170]

सदर्भ तथा टिप्पणिया

1 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति (प्रथम सस्क), पृ 79, वै अभि ग्र 69,
2 रघुनाथ सिंह, बुद्धकथा (वाराणसी, 1969) पृ 820-821, योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 182 91
3 रघुनाथ सिंह, बुद्धकथा (वाराणसी, 1969), पृ 505 वैशाली, पृ. 190, 183, 184
4 महावग्ग, viii 1 1 1 (विनय पिटक मे) तथा ललित विस्तार, पाठ 3, पृ 21.
5 चीनी यात्री, जो काफी समय पश्चात् इस क्षेत्र में आया था, भूमि की उत्पादित शक्ति का साक्षी देता है
6 जातक, 94 (लोमहस जातक), जातक, 149 (एक पण्ण जातक), बुद्धिस्ट इडिया, पृ 33
7 इको लाइफ पृ 223
8 वही
9 वही पृ 223 24
10 हार्न्ले (अनु), उवासगदसाव, भाग 2 पृ 4, टिप्पणी 8, अर्थशास्त्र, पृ 51 55 विभिन्न व्यवसाय के आदमियो के लिए अलग अलग घर थे, फिक्, पृ 279 ज रा ए सो (1901) पृ 860 62

11. महावग्ग, बुद्धिस्ट सीरीज, भाग 17, पृ 171, गिलगिट मैनुस्क्रिप्ट भाग 3, खण्ड 2, पृ. 6
12. बुद्धि इंडिया, पृ 31 इको लाईफ पृ 223 (एन सी बंद्योपाध्याय राय देते हैं कि धन वानों के भवन पत्थरों से बनाए जाते हैं)
13 विनय-टेक्स (अनु), 3, 170 72, 2.67, 4 47
14 बुद्धिस्ट इंडिया, पृ 34, बौद्ध भारत (हिंदी अनु) पृ 55
15 राइस डेविड्स बौद्ध भारत (हिंदी अनु), पृ 56-57 विनय पिटक (3, 105, 110, 297) में एक तप्त वायु स्नानागार का उल्लेख है, यह ईंट या पत्थर का बना एक चबूतरा होता था जो सम्भवत सरोवर के अंदर बना होता था जो वस्तुत शृंगार मण्डप का फर्श होता है जो लकड़ी के खंभों पर आधारित रहा होगा उसे ठण्डा रखने के लिए चबूतरे के एक ओर विशेष तौर पर एक छोटा सा जलाशय बनाया जाता था (राइस डेविड्स बौद्ध भारत (हिंदी अनु इलाहाबाद, 1958 पृ 57) पर बनाया जाता था ऊपर जाने के लिए पत्थर की सीढ़ियां होती थीं और बरामदे के चारों ओर बारजा (रेलिंग) बना होता था, इसकी छत और दीवारें लकड़ी की होती थीं उन पर खाल (छिलका) मढ़ा होता था, और बाद में पलस्तर चढ़ा दिया जाता था, दीवार के केवल निचले भाग में ईंट लगाई जाती थी उसके अंदर एक कमरा, एक तप्त (गर्म) कक्ष और एक स्नान के निमित्त जलाशय होता था तप्त कक्ष के मध्य में अग्नि रहती थी जिसके चारों ओर बैठने का प्रबंध होता था स्नान के पूर्व वे अपने शरीर में खूब पसीना पैदा करते थे जिसके लिए उन पर गर्म पानी डाला जाता था उनके मुख पर बढ़िया सुगंधित खड़िया (चुनम्) पुती होती गर्म पानी से स्नान करने के बाद वे तेल मालिश करते, तब जलाशय में डुबकी लगाकर स्नान करते थे (वही)
16 से बु ई , पृ 262 और आगे, बौद्ध भारत (हिंदी अनुवाद), पृ 57
17. इको लाईफ, पृ 232
18 अर्थशास्त्र (कौटिल्य द्वारा अनु) पृ 45-48
19 बुद्धि इंडिया, पृ 23,
20 साम आफ द ब्रेद्रेन, पृ 59
21 अर्थशास्त्र (कौटिल्य द्वारा अनु), पृ 45 48, इको लाईफ पृ 230-31
22 जातक, 159, 281
23 जातक, 159
24 जातक, 181
25 जातक, 178
26 इको लाईफ, पृ 234
27 वही
28 वही
29 वही
30 लोसक जा , 41
31 वही
32 महा उम्मग्ग जा , 546
33 सुनिला जा, 163, कासव जा , 221

34 वही
35. अगुत्तर निकाय, 3, पृ 76
36 अथशास्त्र (कांग्ले द्वारा अनु), पृ 45-48, फिक्, पृ 305
37 वही.
38 जातक, 211
39 वही, 3°4
40 फसबाल (सपा) सुत्त निपात, पृ 12.
41 ओल्डन बर्ग (सपा), विनय पिटक, भाग 4 पृ. 47, 266
42 जातक, 471.
43 फिक पृ 243
44 रघुवश, 1 52, 5 8,
45 वही, 5 9
46 मनुस्मृति, 8, 238-40
47 वही.
38 वही
49 जातक, 115, 340, 543.
50 रघुवश, 4 20 37
51 वृहत सहिता (वराहमिर), 19 4 6, 24 2
5८ अर्थशास्त्र, पृ 128
53 ओमप्रकाश, वही, पृ 60, अर्थशास्त्र (कांग्ले), पृ 111, 102
54 अर्थशास्त्र, पृ 102, 128, ओमप्रकाश, 61
55 ओमप्रकाश, वही, पृ 73
56 वही
57 बील, ट्रेवल आफ ह्वेन त्साग, भाग 3 पृ 308
58 ओमप्रकाश, वही, पृ 71
59 अर्थशास्त्र, पृ 102, अमरकोश, 9 17, 19,20
60 इको लाईफ, पृ 236 39
61अ रिस डेविडस, बौद्ध भारत (हिंदी) पृ 38, विनय पिटक, 2/287, जातक, 2/185, 4/276
ब रिस डेविडस, बौद्ध भारत (हिंदी अनु) पृ 38
62 मनुस्मृति, 9 44 भूमि का स्वामी वह है जो भूमि को ठीक कर खेती योग्य बनाता है
63 रिस डेविडस, बौद्ध भारत (हिंदी अनु.), पृ 40
64 कुदग्रम्म जा 276
65 इ ए, 1896, पृ 261
66 इको लाइफ, पृ 233
67 मनु , 9327 28
68 कामदक नीतिसार 2.20
69 महाभारत, विराट पव, 10 9 15
70 अमरकोश, 9 64, अथशास्त्र, पृ 143-46

71 अमरकोश, 9 51 54 अर्थशास्त्र, पृ. 143 46
72. अर्थशास्त्र, पृ 130, मैती, इकोनामिक लाइफ आफ नार्दन इंडिया, पृ 93
73 वही
74 अमरकोश, 9 64
75 नोलो, अभिलेख 1
76 जातक, 1 94, अर्थशास्त्र, पृ 143, मनु, 8 230-242
77 वही
78 मनु, 8.237 धनु शतं परिहारो ग्रामस्य स्यात समन्ततः
शम्यापातास्त्रयो वा' त्रिगुणो नगरस्य तु।
79 वही
80 वही, 8 238
81 वही, 8 231
82 अर्थशास्त्र, पृ 142 46, मैती, वही, पृ 93 94
83 मनु 8 233
84 वही, 8 232, मैती, वही, पृ 93 94
85 लिच्छवियों को अपनी जाति पर इतना गर्व था कि अपनी पुत्री का हाथ किसी बाहरी व्यक्ति को नही देते थे (इ हि, क्वा, 1947, भाग 23, पृ 58-59)
86 जातक, 4/207
87 वही, 2/200
88 जातक, 471, 495, 413, 495, 522.
89 मनु. 10 47-53
90 वही 10.51-52
91 आज भी गांव वाले शहर में बसना पसंद नहीं करते हैं,
92 पाणिनि, 6 2 62 पाणिनि में 'ग्राम शिल्पिनि' तथा 'ग्राम कौटाभ्य च लक्षण' का उल्लेख यह दर्शाता है कि प्राचीन काल मे शिल्पकार तथा दस्तकार गांव मे ही जुड़े थे
93 जातक, 149 2 1, इको लाइफ, पृ 230
94 भगवान बुद्ध के समय में इन समितियों को बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था अंगुत्तर निकाय (पा. टे भाग 3, पृ 76) में 'पूग गामणिक' (सहकारी समिति का प्रमुख) तथा जातको (सुचि जा, कुलमास जा) में प्रमुख के लिए 'जेट्ठक' शब्द प्रयोग हुआ है जिससे विदित होता है कि दस्तकार, शिल्पकार अपने को समितियों में संगठित कर लेते थे लेकिन सम्भवत खेतिहर मजदूरो (मजदूरी पर काम करने वाले भूमिहीन किसान वर्ग) का अपना कोई संगठन या सहकारी समिति नहीं थी.
95 अर्थशास्त्र, पृ 407
96 सुचि जातक, 387, कुलमास जातक, 415, समुद्द-वाणिज जातक, 467, जरुदपान जातक, 256
97 सीलवनाग जातक, 72
98. इको लाइफ पृ 253
99 वै अभि ग्रंथ, पृ 30, योगेंद्र मिश्र, वैशाली, पृ 131

100 मनु (10 48-56) में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि लोगो का पेशा आनुवंशिक होता था इसकी पुष्टि जातको से भी होती है जब हम जातकों में 'धन्न वाणिजकुल (जा 198), पणिकुल (जा 312), कम्मार पुत्र, कुम्भकारकुल (जा 79) आदि का उल्लेख पाते हैं
101 तुडिल जातक, 388, मच्छक जा , 390.
102 पाणिनी, 4 3 168, 5 1 25, सुचि जा 387, ज रा ए सो , 1901, पृ 864, इको लाइफ, पृ 243
103 अर्थशास्त्र, पृ 81 82, दीघ निकाय, 1/7 बुनकर लोग न सिर्फ पहनने ओढ़ने के वस्त्र बनाते थे, बल्कि वे निर्यात के लिए बारीक मलमल, भडकीले कपडे तथा जानवरों के बालों से लोई, कबल, तथा कालीन भी बनाते थे
104 इको , लाइफ पृ 165 ऋग्वेद से भी बेलबूटे बने हुए वस्त्रो का संदर्भ मिलता है जब एक स्थान पर (5 55 6) स्वर्ण तार से कसा वस्त्र पहने एक धनी कन्या का वर्णन देखते हैं
105 ज रा ए सो , 1901, पृ , 864, इको लाइफ, पृ 243, बुद्धि , इंडिया, पृ 40
106 इको लाइफ, 242 बुद्धिस्ट इंडिया पृ 40 राइस डेविड्स सोचते हैं कि बुनकर केवल वही वस्त्र नहीं बनाते थे जिसे केवल आम आदमी पहनते थे, वरन् वे निर्यात के लिए बढ़िया मलमल, खूबसूरत कीमती काम किया हुआ रेशमी वस्त्र तथा रोयेंदार महीन ऊन का कबल, चादरें तथा दरी भी बनाते थे
107 तुडिल जा 388, मच्छक जा 390
108 इको लाइफ पृ 242 बु इंडिया, पृ 40
109 अथर्व वेद, 2 45
110 इको लाइफ, पृ 242
111 पाद्दे सामाजिक इतिहास' का अध्याय देखें
112 अर्थशास्त्र (पृ 988 और आगे) में स्वर्ण के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख है
113 अर्थशास्त्र पृ 75 79 जातक 72 211, मैती, इको लाइफ आफ नार्दन इंडिया पृ 105 112
114 रिस डेविड्स, (बु इंडिया, 40) की राय उचित है हस्ति दंत कर्मकार' आम प्रयोग के लिए हाथीदात की छोटी छोटी वस्तुओं को बनाने के साथ साथ कीमती वस्तुए तथा गहने बनाते थे जिसके लिए भारत आज भी काफी प्रसिद्ध है
115 वै अमि ग्र , पृ 38
116. हितनारायण झा, लिच्छवि, पृ 63
117 बु इंडिया, पृ 40, मैती इको लाइफ आफ नार्दन इंडिया, पृ 114, जातक, 41, 190, 384 झा, लिच्छवि, पृ 63
1 8 बु इंडिया, पृ 39-40, मैती, वही, 107 11 इको लाइफ, पृ 245, बब्बु जातक, 137
119 मदिरा निकालने वाले को सुराकार कहा जाता था (इको लाइफ, पृ 165)
120 पीछे, 'खानपान' अध्याय देखिए
121 मैती, इको लाइफ आफ नार्दन इंडिया, पृ 116 अर्थशास्त्र पृ 102
122. रघुवंश 1 181 अभिज्ञान शाकुंतलम् ıı, 343 ıv, 903
123 रघुवंश, 6 60, 14 12, 16 50, कुमारसभव, 5 34, 7 9 14-15, 17 21 33 ऋतुसंहार, 1 5, ıı 21, 4 2, 5, 5, 5, 9 12 6, 13

124 अर्थशास्त्र, पृ 79 ऋतुसंहार, 1 2 4 6, ii, 21 iii 20, v 3. vi 6, 12.
125 अर्थशास्त्र (पृ 101, 103) में हम पढ़ते हैं कि लोग सूखी मछली बड़े चाव से खाते थे
126 बु इंडिया, प 40, इको लाइफ, पृ 244, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ 104, झा, लिच्छवि पृ 64 65
127 सुसभत्ता जा, 402, गामणिकण्ड जा, 257 कण्हू जा, 29 में हिरण्य, निक्ख, कहापण का उल्लेख हुआ है इसके अतिरिक्त विनय पिटक (iii 219) में सुवण्ण सिक्के का उल्लेख हुआ है अर्थशास्त्र (पृ 95) में भी सुवर्ण, कार्षण तथा पण सिक्कों का उल्लेख मिलता है
128 नन्द जातक, 39 दुराजान जा, 64 गामणी काण्ड जा 257
129 मनुस्मृति, 8 136
130 हितनारायण झा (लिच्छवि, पृ 69) लिखते हैं कि वस्तु विनिमय आज भी उत्तर पूर्व बिहार तथा नेपाल की तराई म प्रचलित हैं
131 सुत्त निपात 1011 1013 इसके पड़ने वाले 6 पड़ाव थे—माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनार्द, विदिशा, कौशांबी और साकेत
132 सुत्त निपात, वही, जातक 1/92 348 यह मार्ग 300 मील लंबा था
133 बुद्धिस्ट इंडिया, पृ 44 तथा बौद्ध भारत (हिंदी) पृ 71
131 वही, पृ 44 तथा वही, पृ 71 हम विनय पिटक (1/81) में भी इसका उल्लेख पाते हैं.
135 सुत्त निपात, 1011 1015, बौद्ध भारत, पृ 71 मोतीचंद सार्थवाह, पृ 18.
136 बौद्ध भारत, पृ 71
137 विनय पिटक, 3/401, विनय पिटक (II, पृ 299-301), महावग्ग 4, 23-28
138 विनय पिटक, II पृ 210-11
139 वही
140 दिव्यावदान (कावेल तथा नील), पृ 55 56
141 अगुत्तर निकाय, पा टे सो भाग 3 पृ 37
142 जातक, 1/124, 178, 181, 2/31, 287 आदि
143 विमान वत्थु टीका 336. जातक, 3/470 दीर्घ निकाय, 2/235 अ दि
144 जातक, 1/98
145 जातक, 1/108
146 जातक, 3/126, 3/189
147 विनय पिटक, 2/174 महावग्ग, 8 1 6
148 पाणिनि, 5/1/77.
149 जातक, 2/277 तथा
150 सतपत्त जा, 279 इको लाइफ, पृ 259, फिक्, पृ, 274
151 वही, दिव्यावदान (पृ 94-95) मे भी हम पढ़ते हैं कि श्रावस्ती से राजगृह का मार्ग डाकुओं से भरा था जो व्यापारियों को लूट लिया करते थे
152 दस ब्राह्मण जा, 495, फिक 274
153 जातक 84
154 ललित विस्तर अध्याय 3, पृ 21, बसाढ़ मे प्राप्त एक मुहर (वै अभि ग्र, पृ. 159 62) से सिद्ध होता है कि लिच्छवि व्यापार में काफी रुचि लेते थे

155 जातक, 3/365, इको लाइफ, पृ 258
156 अर्पणक जा 1/98, इको लाइफ पृ 258
157 वही
158 भा लिच्छवि, पृ 72
159 वही.
160 जातक, 2/288, फिक्, पृ. 273
161 गघार जा, 365
162 ज. रा ए सो, 1901, पृ 873
163 इको लाइफ, पृ 261.
164 विनय पिटक, 1 20, 11 267, अर्थशास्त्र, पृ 135 36, 161-62
165 वही
166 इको लाइफ, पृ. 261
167 जातक, 4/15-17, 6/32 35
168. इको लाइफ पृ 259 60
169 भा, लिच्छवि, पृ 73
170 मैती, द इकोनोमिक लाइफ आफ नार्दर्न इंडिया (विस्तृत विवरण के लिए).

12

भाषा एवं वाङ्मय

भारतवर्ष के प्राचीन वाङ्मय में छठी शताब्दी का काल अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस युग में तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों, तथा अंधविश्वासों का प्रतिकार किया गया। वेदों तथा ब्राह्मणों की प्रभुता को चुनौती दी गई। यज्ञों तथा जातिप्रथा की रूढ़ियों तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई गई। इससे विभिन्न मतों का प्रादुर्भाव हुआ। एक प्राचीन पालि सूत्र के अनुसार भगवान बुद्ध के आविर्भाव के समय दर्शन के 63 वादों का प्रचलन था, जिनमें अनेक दर्शन ब्राह्मण विरोधी थे।[1] इन विभिन्न मतों के अनुयायियों में साहित्य की अनेक पद्धतियां स्वतंत्र रूप से विकसित हुई होंगी किंतु किसी भी शाखा ने अपने साहित्य को सुरक्षित नहीं रखा (अर्थात कंठस्थ नहीं किया)। परंतु दूसरी शाखाओं के साहित्य से वे परिचित थे और उनके मतों पर विचार-विमर्श करते थे। वे अपने सूत्रों में लिखित बातों की तुलना अन्य मतों में लिखी बातों से करते थे। ऐसे पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध हैं कि एक शाखा में दीर्घकाल तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् लोगों ने दूसरी शाखा की शिक्षा आरंभ की। ऐसे लोग दो शाखाओं के साहित्य के न्यूनाधिक ज्ञाता हो जाते थे।[2]

प्राचीन काल में बस्तियों के निकट के वनों में विभिन्न शाखाओं के अनुयायी तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हुए अपनी शाखा की विभिन्न परंपराओं के अनुसार यज्ञ करते, योग साधते या उन सूत्रों को कंठस्थ करते जिनमें उनकी शाखा के सिद्धांत सन्निहित थे और अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। इन आश्रमों में साहित्य का अध्ययन व पाठ होता था।[3]

इन आश्रमों के अतिरिक्त *परिव्राजक कहे जाने वाले लोगों का दूसरा वर्ग* था जिनका समस्त भारत में आदर और सम्मान किया जाता था। परिव्राजक ऐसे उपदेशक या दार्शनिक होते थे जो वर्ष में नौ मास केवल आचार, दर्शन, प्रकृति ज्ञान एवं रहस्यवाद पर वादविवाद करने के निमित्त भ्रमण किया करते

थे।[4] इन लोगो से रहने और धारणाओ पर विचार-विमर्श के लिए बने सथागारो की चर्चा पाई जाती है। ऐसा एक सथागार वैशाली के निकट महावन मे भी था।[5]

अनेक सप्रदायो का विशेष वर्णन अथवा उनका साहित्य क्रमबद्ध रूप मे नही प्राप्त होता। सभवत बहुत दिनो तक उनका साहित्य लोगो के कठ मे ही सुरक्षित रहा होगा। लेकिन जब कालातर मे ऐसे साहित्य की सुरक्षा के लिए लिपि का उपयोग किया जाने लगा, उस समय इस सप्रदाय के अनुयायी अथवा प्रवक्ता ही न रहे जो उस लिपिबद्ध करते।[6] हा, जैन और बौद्ध ग्रथो मे इस सप्रदाय और उसके प्रतिपादित मत के अनेक उल्लेख हैं।[7]

पाणिनि[8] की अष्टाध्यायी मे भी 'कर्मदण्डिन' और 'पाराशरीय' नामक दो ब्राह्मण सप्रदायो का उल्लेख हुआ है मज्झिम निकाय (3/298) मे किसी 'पाराशरीय ब्राह्मण उपदेशक के मत की भगवान बुद्ध द्वारा विवेचना किए जाने की बात कही गई है। सभव है, जिस समय पाणिनि के व्याकरण पर उक्त टीका लिखी गई, उस समय तक यह सप्रदाय अस्तित्व मे रहा हो परिव्राजक और तपस्वियो के कुछ अन्य सप्रदायो और समुदायो का अगुत्तर निकाय मे उल्लेख है—मुण्डसावक, जटिल, मागदिक, तेदण्डिक, अविरुद्धक, देवधम्मिक, गोतमक।[9] इनके विषय मे कुछ विशेष जानकारी नही है क्योकि इनके मत का साहित्य लुप्त हो चुका है।

उक्त सभी सप्रदायो मे पारस्परिक विनिमय मे भाषा की विविधता के कारण कोई बाधा नही पडती थी। न केवल दैनिक जीवन की आवश्यकताओ की सामान्य बातचीत मे वरन् दर्शन और धर्म सबधी गहन और गभीर विचार-विमर्शों मे भी कोई बाधा नही पडती थी। व्यापक रूप से समझी जाने वाली लोक भाषा विभिन्न प्रदेशो मे प्रचलित थी। साहित्यिक सस्कृत सभवत कुछ प्रबुद्ध वर्ग मे ही बोली जाती थी। परिव्राजक लोग सस्कृत बोलते थे या लोक भाषा, इस बात का स्पष्ट उल्लेख कही नही मिलता है। सभवत परिव्राजक लोग उस भाषा मे बोलते थे जिसका शिष्ट समाज द्वारा व्यवहार होता था और जिसका प्रादेशिक बोलियो के साथ सबध रहा हो। परिव्राजक लोग यदि सस्कृत का प्रयोग करते भी रहे होंगे तो वह केवल आपस मे विचारविमर्श के समय, सामान्यजन से बातचीत करते समय वे लोग उस क्षेत्र में बोली जाने वाली लोक भाषा का ही प्रयोग करते रहे होगे। सभव है कि कालातर मे सस्कृत तथा लोक भाषा का मिलाजुला रूप पालि तथा प्राकृत के रूप में विकसित हुआ हो। कुछ यूरोपीय विद्वानो ने प्राचीन नाटको के आधार पर कहा है कि प्राचीन भारत मे सस्कृत का व्यवहार अधिक होता था, विशेषत. उच्च वर्ग मे।[10] इन प्राचीन नाटको मे स्त्रियो से बात करने के अतिरिक्त प्रत्येक सामाजिक स्तर के पुरुष पात्र

सस्कृत ही बोलते हैं। कुछ उच्च वर्ग की स्त्रिया भी यदाकदा नाटको मे सस्कृत बोलती दिखाई गई हैं।

बहुत सभव है जिस समय ये नाटक लिखे गए उस समय सस्कृत साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुकी थी लेकिन लोग सामान्यतया अपने दैनिक जीवन मे सीधीसादी लोक भाषा बोलते रहे हो। नाटककारो ने सभवत इसीलिए अपने सुसस्कृत दर्शको के सम्मुख अपने नाटक प्रस्तुत करते समय वार्तालाप को सस्कृत और उसी के समान अस्वाभाविक प्राकृत भाषाओं मे बाट दिया हो।[11]

बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पूर्व तथा विकास के दौरान सस्कृत सभवत प्रबुद्ध वर्ग की भाषा बनी रही थी। लेकिन सामान्य जन की बोलचाल की भाषा भिन्न-भिन्न प्रदेशो में थोडा अतर लिये हुए, बोली जाती रही होगी। यह लोक भाषा सरकारी कर्मचारी और शिष्ट समुदाय द्वारा व्यवहार मे लाई जाती थी। सभवत अर्ध मागधी (जैन अगो की भाषा), पालि (जिसका विकास सभवत. लोक भाषा से हुआ तथा जो कोशल, वैशाली तथा अवति मे बोली जाती थी) तथा प्राकृत (महाराष्ट्रीय का साहित्यिक रूप जिसका विकास सभवत पाचवी शताब्दी ई. तथा उसके बाद की लोक भाषा से हुआ) मे परवर्तित व परिवर्धित होती गई। लोक भाषा के विकास क्रम से स्पष्ट है प्राचीन भारत मे राजनीतिक शक्ति के साथ साथ भाषा के महत्व के केंद्र भी स्वाभाविक रूप से बदलते रहे।

वाङ्मय

जहा तक वैदिक साहित्य का प्रश्न है राइस डेविड्स का मत है कि आठवी सातवी शताब्दी ई पू भारत मे भारतीयो के पास विशाल वैदिक साहित्य विद्यमान था, जो कठस्थ होकर मात्र ऋषि कुलो मे सुरक्षित चला आया था। यद्यपि इस समय भारतीयो को लिपि का ज्ञान हो चुका था, किंतु वे पूर्व प्रणाली की सहायता से ही अपने-अपने ग्रथो का अस्तित्व बनाए रहे।[12] सभवत यही कारण है कि धातु एव प्रस्तर पर अकित जो भी प्राचीनतम लेख मिले हैं वे बौद्ध है। सभवत बौद्धो ने ही सर्व प्रथम अपने धार्मिक ग्रथो को अकित करने के लिए लिपि का व्यवहार किया। विशाल ब्राह्मण साहित्य मे यदि लेखन का कोई प्राचीन लेख है तो यह वशिष्ठ धर्मसूत्र[13] मे है जो परवर्ती काल की रचना है।[14]

इस प्रकार यद्यपि छठी शताब्दी पूर्व मे विशेष प्रकार के साहित्य का विशाल भण्डार था, लेकिन लिखित ग्रथो का अभाव था। लिखित ग्रथो के अभाव मे वैदिक ग्रथो को कठस्थ करने एव बारबार आवृत्ति करने की आवश्यकता तथा सामान्यजन की भाषा को साहित्यिक रूप न देने की प्रवृति के कारण सभवत दीर्घ काल तक साहित्य का विस्तार अधिक नही हो पाया। किंतु जो साहित्य

उपलब्ध है, वह तत्कालीन विद्वानो की उच्चकोटि की प्रतिभा एव उद्योग निष्ठा का द्योतक है। इस सभावना से इनकार नही किया जा सकता कि साहित्य का एक बहुत बडा भाग नष्ट भी हो गया होगा किंतु वर्तमान मे तीनों विभिन्न शाखाओ ब्राह्मण, बौद्ध और जैन की जो साहित्यिक कृतियो का पर्याप्त अश बच रहा है वह भी कम उल्लेखनीय नही है। इन तीनो प्रतिस्पर्द्धी साहित्यो के तुलनात्मक अध्ययन से उस समय के साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डाला जा सकता है।

स्पष्ट उल्लेख कहीं नही मिलता है कि ब्राह्मण शाखा के कितने ग्रथ अब तक सग्रहीत किए जा चुके थे। फिर भी पाश्चात्य विद्वान थीमे तथा वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार पाणिनि[15] को ऋग्वेद, मैत्रायणी सहिता, काठक सहिता, तैत्तिरीय सहिता, अथर्ववेद, सामवेद का परिचय था, अर्थात् ये सब साहित्य उनसे पूर्व युग मे निर्मित हो चुका था।[16] पाणिनि ने वैदिक तथा प्रादेशिक भाषा दोनो का उल्लेख अष्टाध्यायी में किया है।[17] भगवान बुद्ध के समय मे तक्षशिला विद्या का विश्व विख्यात केंद्र था। प्राप्त प्रमाणो से प्रतीत होता है कि उन दिनो छह प्रमुख विषयो की शिक्षा प्रदान की जाती थी— (1) वेद (2) वैदिक साहित्य—षड्वेदाड्ग अर्थात शाखा, छद, व्याकरण, निरुक्त, कल्प तथा ज्योतिष। (3) ब्राह्मण, सहिता और उपनिषद् (4) गृह्य सूत्र तथा धर्मसूत्र (5) अन्य विषय (6) लौकिक साहित्य—अर्थशास्त्र, शिल्प तथा वार्ता। पाणिनि ने धार्मिक तथा लौकिक विषयो के समृद्ध साहित्य भण्डार का उल्लेख किया है जिससे तत्कालीन पाठ्य विषयो का ज्ञान प्राप्त होता है।[18]

लोक भाषा को परिमार्जित कर पालि मे लिखे गए सभी बौद्ध ग्रथ (पालि *टेक्स्ट सोसाइटी द्वारा सग्रहीत) आज उपलब्ध हैं। जैन ग्रथ अभी तक खण्डित* ही मिले हैं जिनको उपलब्ध करना इस काल को निश्चित रूप देने के लिए आवश्यक है। फिर भी जैन धर्म ग्रथो मे आचाराग सूत्र सर्वाधिक प्राचीन प्राप्त ग्रथ इस काल के इतिहास जानने के लिए कम महत्त्वपूर्ण नही है। कल्पसूत्र, उवासगदसाओ, औपपातिक सूत्र तथा भगवती सूत्र का महत्त्व भी कम नही है। भगवती सूत्र यद्यपि परवर्ती काल की रचना है परतु इसमे महावीर स्वामी के समय लिच्छवियो से सबधित घटनाओ का समावेश होने से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।[19] यद्यपि प्राप्त जैन ग्रथो की वास्तविकता तथा प्रामाणिकता के विषय मे आपत्ति की जा सकती है, फिर भी चौथी शताब्दी ई. पू. मे जब भद्रबाहु जैन आचार्य थे, तब जो सकलन हुआ था वही इन पुस्तको मे है, ऐसा बहुत से विद्वानो का मत है।[20] सभी जैन विद्वान यह मानते हैं कि कुछ 'प्राचीन' पूर्व ग्रथ थे जो अब लुप्त हो गए हैं। भाषा तथा लिपि के जो प्रमाण अब तक मिले हैं वे जैनो मे प्रचलित इस अनुश्रुति तथा इस विशेष तथ्य की पुष्टि करते हैं। हां, यह अवश्य

है कि इनमे प्राचीन ग्रथो के जो नाम दिए हैं वे मूल नही हो सकते। वे ग्रथ तो केवल प्राप्त ग्रथों की तुलना मे पूर्ववर्ती थे। यदि ये वर्तमान ग्रथ चौथी शताब्दी ई पू के हैं तो छठी शताब्दी ई. पू. की सख्याओ एव घटनाओ के प्रमाण स्वरूप इनका बडी सतर्कता से ही उपयोग किया जा सकता है। इस तरह ये जैन ग्रथ प्राचीन भारतीय इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री हैं।[21]

बौद्ध धर्म ग्रथ की दशा जैन साहित्य की अपेक्षा अच्छी और पर्याप्त सख्या मे है। इसके माध्यम से उस समय की भाषा तथा साहित्य का विकास का क्रम अच्छी तरह देखा जा सकता है। बौद्ध साहित्य की आयु या प्राचीनता के सबध मे सर्वोत्तम प्रमाण उनमे स्वय मिलने वाली सामग्री है, जिस प्रकार के शब्द वे प्रयोग करते हैं, जिस शैली मे वे लिखे गए हैं, जो भाव वे व्यक्त करते हैं। पालि ग्रथों मे कौन सा भाग अधिक प्राचीन है, इसका भी प्रमाण मिलता है। पालि पढने का कोई भी अभ्यस्त यह जान जाएगा कि निकाय धम्म सगीति से प्राचीन है और दोनो कथावस्तु से प्राचीन हैं।[22]

भगवान बुद्ध के उपदेशो को किसी न किसी रूप म सुरक्षित रखने की अनिवार्यता को बुद्ध निर्वाण के तत्काल पश्चात ही अनुभव किया गया होगा। भगवान बुद्ध ने निर्वाण निकट आने के समय शोकाकुल आनद से कहा, हे आनद, आप लोगों को यह सोचकर कष्ट होगा कि हमारे मार्गदर्शक अब हमारे बीच नही रहे। परतु हे आनद, यथार्थत' ऐसा नही है। मैंने जिस धर्म तथा विनय का आप सभी को उपदेश दिया, वे ही मेरे निर्वाणोपरात आपका मार्गदर्शन करते रहेंगे।[23] भगवान बुद्ध के निर्वाण के साथ ही उनके उपदेशो के मर्मज्ञ भिक्खुओ का अत नही हो गया। ऐसा कोई सकेत नही मिलता कि भिक्खुओ द्वारा उनकी शिक्षाओ के शुद्ध रूप को सुरक्षित रखने के प्रयास की गति अवरुद्ध हो गई हो। धर्माधर्म, विनया विनय का स्वरूप निर्धारित होता रहा, इन पर भिक्खु विचार-विमर्श करते रहे। कभी कभी भिक्खुओ मे मतभेद भी हुए। सूत्रो म ऐसे प्रसगो के उल्लेख मिलते हैं जब किसी विषय के औचित्यानौचित्य का विचार करने के लिए सुत्त तथा विनय का सहारा लेना पडता था।[24] इनका अर्थ यह हुआ कि सुत्त और विनय के ज्ञाता भिक्खुओ से या तो शका समाधान किया जाता था अथवा लिखित ग्रथ को देखना पडता था। अशोक के समय तक किसी न किसी रूप म पालि पिटक का विकास हो गया था। अशोक ने अपने भब्रू अभिलेख मे, जो उसने बौद्ध सघ को सबोधित करके लिखा है, सघ के भिक्खुओ और भिक्खुणियो तथा सामान्य स्त्री पुरुष और भक्तो को नियमित रूप से कुछ चुने हुए अशो को निरतर सुनने (कठस्थ करने) एव उन पर चिंतन करने को कहा है।[25] उन अंशो के नाम इस प्रकार हैं : आर्यवशानि (जो अब दीघ निकाय के सगीति सुत्त मे उपलब्ध है), अनागतभयानि (जो अगुत्तर निकाय, 3. पृ 105. 108 मे उपलब्ध हैं), मुनि

गाथा (जो सुत्त निपात के सूत्र 206, 200 मे हैं), मुनि सुत्त (जो इति वुत्तक और अगुत्त निकाय भाग, 1, पृ 272 मे है), उपतिष्य प्रश्न (उप तिस्सु, जो सारिपुत्र के नाम से अधिक विख्यात है, द्वारा पूछे गए प्रश्न)। इससे प्रतीत होता है कि कम से कम पालि पिटक का आशिक रूप इस समय तक अवश्य अस्तित्व मे आ चुका था।

कुछ बौद्ध ग्रथ अन्य बौद्ध ग्रथो की तुलना मे प्राचीन हैं, इसके भी प्रमाण मिलते हैं। कथावस्तु नाम की सपूर्ण रचना अशोक के समय मे जोडी गई है।[26] पेतवत्थु[27] तथा विमानवत्थु (जो इसी ग्रथ का उत्तरार्द्ध भाग है) निकाय की तुलना मे, भाव की दृष्टि से नि सदेह बहुत पीछे की है।[28] यही बात अन्य दो छोटे काव्य सग्रहो के सबध मे भी कही जा सकती है। प्रथम 'बुद्धवस' जिसमे क्रमागत पच्चीस बुद्धो मे से प्रत्येक के सबध मे एक एक स्वतत्र कविता है। इसी तरह दूसरा काव्य सग्रह है 'चरिया पिटक' जिसमे जातको के 34 कथाए पद्यबद्ध रूप मे सग्रहीत हैं। दोनो ही परवर्ती पुस्तक हैं। इन ग्रथो मे इस विचारधारा के बीज मिलते हैं जो परवर्ती काल मे महायान के रूप मे विकसित हुई।[29] इस प्रकार कहा जा सकता है कि बौद्ध ग्रथो के कुछ भाग अपेक्षाकृत पीछे के हैं। ये पुस्तकें जिस रूप मे आज उपलब्ध हैं उनमे ऐसे आतरिक साक्ष्य हैं जिनसे उनके क्रमिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। किंतु यह सभी बौद्ध ग्रंथों के सबध मे नही कहा जा सकता है। सूत्रनिपात सूत्रो का एक छोटा सग्रह है जिसमे 54 सूत्र हैं, ये चार सर्गों म विभाजित है। इसके बाद सोलह सूत्रो का पाचवा सर्ग एक कथा के सहारे जोड दिया गया है।[30] इसके टीकाकार ने भी ऐसा ही माना है और उसे सुत्तत कहा है। ये सुत्तंत दीघ निकाय के सुत्ततो के समान ही हैं। निकाय मे इनका उल्लेख छह बार स्वतत्र काव्य के रूप मे हुआ है।[31] इसी तरह सुत्त निपात के अनेक सूत्र ऐसे हैं जो वर्तमान रूप धारण करने के पूर्व स्वतत्र अस्तित्व मे थे। इससे प्रतीत होता है कि इसमे निश्चित रूप से समय समय पर परिवर्तन एव परिमार्जन होता रहा। इस तरह उक्त ग्रथो की तरह प्राय सभी ग्रथो का विकास तथा परिमार्जन शाखाओ मे हुआ और यह व्यक्तिगत प्रयत्न की अपेक्षा सामूहिक प्रयत्न के फलस्वरूप हुआ। किसी ने किसी पुस्तक का लेखक होने का दावा करने की कल्पना नही की। बौद्ध धर्म 29 ग्रथों मे 26 के तो सघ के अतिरिक्त किसी लेखक का नाम है ही नही।[32]

बौद्ध मत का व्यापक प्रचार होने के साथ साथ क्रमश बौद्ध पालि साहित्य समृद्ध होता गया। बौद्ध सगीतियो के माध्यम से त्रिपिटक साहित्य का सपादन तथा उन्हे क्रमबद्ध करने का सक्षिप्त विवरण देना अनावश्यक नहीं है।

बौद्ध परपरा के अनुसार भगवान बुद्ध के निर्वाण के तुरत बाद बुद्ध वचनो का सकलन प्रथम बौद्ध सगीति मे किया गया।[33] इस सगीति मे विनय तथा धर्म

के जिन नियमो को मान्यता मिली वे ही थेरवाद के सिद्धात हुए। पुन बुद्ध निर्वाण के एक शताब्दी पश्चात वैशाली में बौद्ध भिक्खुओं ने दूसरी सगीति की।[34] सम्राट अशोक के समय मे तीसरी बौद्ध सगीति का आयोजन हुआ जिसमे पालि पिटक का सकलन करके उन्हे लिपिबद्ध कर दिया गया। दीपवश तथा महावश के के अनुसार बुद्ध निर्वाण के 236वें वर्ष मे 'मोग्गलि पुत्ततिस्स' के सभापतित्व मे एक सहस्र बौद्ध भिक्खुओ की सगीति पाटलिपुत्र मे हुई, जिसमे सद्धर्म अथवा थेरवाद के सिद्धातों का सकलन किया गया। इसी प्रयास का प्रमुख परिणाम हुआ कि त्रिपिटक के रूप मे बौद्ध मत के सिद्धात लिपिबद्ध हो गए। तीसरी सगीति मे जिस पालि पिटक का सकलन किया गया उसकी एक प्रति कुमार महेंद्र लका ले गए। बाद म वह भी वहा अस्तव्यस्त हो गया, अत पाचवीं शताब्दी ई मे लकाधिपति बट्टगामिनी ने उनका पुन सकलन कराया। इस प्रकार उसको वह रूप प्रदान किया गया जो अब तक सुरक्षित है।[35] इस लबी प्रक्रिया से गुजरने के कारण उसमे अनेक परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है, परतु इतना होने पर भी उसका वह स्वरूप जो तीसरी सगीति मे प्राप्त हुआ, सुरक्षित ही रहा। भाषा मे परिवर्तन अवश्य हुआ होगा, पर भाव वही बने रहे।

कतिपय विद्वानो को सदेह है कि बौद्ध काल का इतिहास ज्ञात करने के लिए पालि पिटक प्रामाणिक है। परतु विविध दृष्टिकोणों से विचार करने पर यह ग्राह्य नही है। अलिखित होने पर भी भगवान बुद्ध के प्रमुख उपदेशो को बौद्ध भिक्खुओ ने यत्नपूर्वक यथावत् सुरक्षित रखा होगा इसम सदेह का कोई आधार नही दीखता, क्योकि भारत मे वेद की शिक्षा मौखिक रूप मे प्रदान की जाती रही और वे उसी रूप म सहस्रो वर्षों तक सुरक्षित रहे। अशोक के पूर्व पालि पिटक के प्रमुख अशो को भी मौखिक रूप मे सुरक्षित रखा गया और आवश्यकता होने पर बौद्ध मत के विभिन्न विषयो के ज्ञाताओ से शकाओ का समाधान किया जाता रहा। बुद्ध निर्वाण के एक शताब्दी पश्चात जब वज्जिपुत्र भिक्खुओं ने दस निषेधो का आचरण करना प्रारभ किया, तब रेवत से पूछा गया कि वैशाली के भिक्खुओ का आचरण भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुकूल है, अथवा नही।[36] रेवत को धम्म, विनय, आगम तथा मातिकाओ (मात्रिकाओ) का ज्ञाता कहा गया है।[37] प्रख्यात प्राच्यविद् ओल्डेनबर्ग[38] तथा पिटर निस्ज[39] ने भी सकलन के पूर्व मौखिक रूप मे पालि पिटक के पर्याप्त अश की विद्यमानता को स्वीकार किया है। यह भी सुलभ है कि बौद्ध भिक्खु बुद्ध वचनम् का कठस्थ पाठ करते थे।[40] चुल्ल वग्ग मे स्पष्ट कहा गया है कि सुत्तत का पाठ करने वाले भिक्खु सुत्ततिक, धम्म का पाठ करने वाले धम्म कथिक और विनय के ज्ञाता विनयधर थे।[41] इसी तरह पिटक के ज्ञाता को पेटकिन तथा जिसे पाच निकाय कठस्थ हो, पच नेकायिक कहा जाता था।[42]

पालि पिटक का जो वर्तमान रूप उपलब्ध है, उसका विकास किस ढग से हुआ था, इस बात को ऊपर दर्शाया गया है। आज पालि पिटक उपलब्ध है उसके तीन अग हैं—(क) विनय पिटक (ख) सुत्त-पिटक तथा (ग) अभिधम्म पिटक। इन तीनो के सकलन को त्रिपिटक कहा जाता है। विनय पिटक भिक्खु के नियमो का सग्रह, सुत्त पिटक भगवान बुद्ध के प्रवचनो का और अभिधम्म पिटक दार्शनिक विषयो का विवेचनात्मक ग्रथ है। सुत्त पिटक मे प्रमुख थेरो के उपदेशो तथा गाथाओ को भी समाहित किया गया है। सुत्त पिटक के अतर्गत पाच निकाय हैं : दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, सयुक्त निकाय, अगुत्तर निकाय तथा खुद्दक निकाय। खुद्दक निकाय मे समाविष्ट 547 जातक कहानिया हैं।[43]

जातक ग्रथ

बुद्धकालीन समाज का विवरण प्राप्त होने के कारण जातको को इसी काल का माना जा सकता है। लेकिन जैसा कि ऊपर अन्य बौद्ध ग्रथो के विकास में दर्शाया गया है, वही स्थिति इन जातको की भी है। रिस डेविड्स ने वर्तमान जातक के सग्रह मे कौन अधिक प्राचीन है, ढढने का प्रयास किया है। जिन जातको को वे प्राचीन बौद्ध धर्म ग्रथो मे ढूढ सके उनकी तालिका नीचे दी जा रही है :

1.	जातक सख्या	12—निग्रोध मृग जातक		सयुक्त निकाय भाग 5, पृ० 14 पर मूल कहानी दी है।				
2	,,	,,	1—अपन्नक	दीघ	2/342	पर	आश्रित	है।
3	,,	,,	9—मखदेव	मज्झिम	2/75	,,	,,	,,
4.	,,	,,	10—सुखविहारी	विनय	2/83	,,	,,	,,
5	,,	,,	37—तित्तिर	विनय	2/161	,,	,,	,,
6.	,,	,,	91—लिट्ट	दीघ	2/348	,,	,,	,,
7	,,	,,	95—महासुदस्सन	दीघ	2/169	,,	,,	,,
8	,,	,,	203—खधवत्त	विनय	2/095	,,	,,	,,
9	,,	,,	253—मणिकण्ठ	विनय	3/145	,,	,,	,,
10	,,	,,	405—बकब्रह्म	मज्झिम सयुक्त	1/328 1/142	,,	,,	,,

इस दृष्टि मे जातक कथाओ मे उक्त जातक कथाए प्राचीन हैं इनसे दो महत्वपूर्ण तथ्य ज्ञात होते हैं। प्रथम यह कि इनके प्राचीन रूपो मे न तो कोई बाह्य ढाचा था और न गाथा। वे कोरी कहानियां, दृष्टांत कथाए हैं जो (दो को छोडकर) गद्य मे हैं। द्वितीय, उपलब्ध जातक ग्रथ केवल आशिक हैं। उसमे वे सभी कथाए नहीं हैं जो बौद्ध समाज मे उनके साहित्य के प्रारभिक काल मे प्रचलित थीं।[44]

इन जातकों की रचना काल का प्रमाण भरहुत और साची स्तूपों के उत्कीर्ण फलकों का है। स्तूप के चारों ओर वेदिकाओ तथा तोरणो मे चित्र उत्कीर्ण हैं।

उनमे अनेक दृश्य हैं जिसमे कुछ पर तीसरी शताब्दी ई पू की लिपि म शीर्षक स्वरूप किसी न किसी जातक का नाम अकित है। कुछ ऐसे भी दृश्य हैं जिनपर शीर्षक तो नही हैं किंतु विषय की दृष्टि से वैसे ही हैं। उनम से सत्ताईस दृश्यो की पहचान वर्तमान जातक ग्रथ की घटनाओ स की जा सकती है। कुछ ऐसे भी हैं जिनकी पहचान नही हो सकी है। इनम से कुछ तो ऐसी जातक कथाओ के दृश्य जान पडते हैं जो उस समय समाज मे प्रचलित रही होगी किंतु सग्रह म नही सम्मिलित की गई हैं।[45]

वेदिकाआ तथा तोरणा पर उत्कीर्ण जातक कथाआ के दृश्य देखकर उन्हे तब तक कोई नही समझ सकता है जब तक वह गद्य म कही कथा स परिचित न हो। भरहुत के स्तूप पर जो चित्र अकित है, उस पर शब्दा म जातक कथा के शीर्षक भी उत्कीर्ण हैं जो जातक के छपे सस्करणो मे कही जाने वाली कहानी की गाथाओ के आरभ के हैं, जैसे निग्रोध का अनुसरण करो जो निग्रोध मृग जातक से लिया गया है तथा 'य बमओ अवयेसि जातक' जो अधमूत जातक' कही जाने वाली कहानी की गाथा के आरभ का शब्द है।[46]

इसी तरह प्राचीनता पर विचार करने के लिए कुछ तथ्य स्वय जातक ग्रथ म मिलते हैं। ऐसे बौद्ध धार्मिक ग्रथ जिनम केवल गाथा ही हो (बिना टीका के) हस्तलिखित रूप म भी बहुत कम हैं। फॉउसबोल के सुप्रसिद्ध सस्करण म जो कुछ है वह टीका है, शुद्ध रूप मे गाथा नही। इसकी तिथि का पता नही चलता। किंतु इस प्रकार की टीकाए ईसा की पाचवी शताब्दी से पूर्व नही लिखी जाती थी। अतएव सभव है कि यह भी इसी काल की लिखी हो।[47] टीकाओ के लेखक ने आरभ के पद्यो म अपने सबध मे थोडा सा लिखा है किंतु नाम नही बताया है जिन्होने उसे इस कार्य को करने के लिए प्रोत्साहित किया। उनका कहना है कि वह (टीका) उस परपरा पर आधारित है जो लका के अनुराधापुर मे प्रचलित थी। इस जातक ग्रथ के सात बडे बडे भागो मे केवल दो बार दूसरी शताब्दी ई के लका के विद्वानो का उल्लेख है।[48] यद्यपि उसने ऐसा टिप्पणी मे ही लिखा है तथापि इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सभवत उसने इसे लका मे ही लिखा।[49] प्रो चाइल्डस[50] की धारणा यह है कि बौद्ध ग्रथो की बडी टीकाओ का लेखक बुद्ध घोप ही इसका भी लेखक है। रिस डेविड्स के मत मे यह समीचीन नही लगता।[51] डा फिक ने इन जातको का विस्तृत तथा मनोयोग पूण विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए मत प्रकट किया है कि उत्तर पूर्वी भारत की सामाजिक स्थिति के बारे मे जातको मे जो कुछ मिलता है उससे इस निष्कप पर पहुचा जा सकता है कि जहा तक गाथा और कथाओ के मूल गद्य रूप का (ढाचे से भिन्न) सबध है उसमे पूर्ववर्ती बौद्धो मे प्रचलित मौखिक परपरा स शायद ही कही भिन्नता हो।[52] जातका मे ऐसे किसी साम्राज्य का उल्लेख नही है जिसमे भारत का सपूर्ण

अथवा अधिकाश भाग सम्मिलित हो। जिन राज्यो के नरेश इन कथाओ के पात्र हैं उनकी सख्या काफी अधिक है। अधिकाश नाम, यथा भद्र, पचाल, कोशल, विदेह, काशी, विदर्भ आदि वैदिक साहित्य मे उल्लिखित नामो के समान ही हैं। आध, पाण्ड्य और केरल के उल्लेखनीय नामो की चर्चा उनमे नही है।[53]

जातक ग्रथ की कुछ कथाओ मे (ढाचे मे नही) कही गई बातो से ऐसे ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जो उस काल के लिए अनुमानित साक्ष्य हो सकते हैं, क्योकि ये कथाए बौद्ध अनुश्रुतियो के रूप मे सम्मिलित कर सुरक्षित की गई हैं। इन अनुश्रुतियो मे राजनीतिक एव सामाजिक बातो के प्राचीन विचार काफी सुरक्षित हैं। गाथाए तो अवश्य ही सबसे अधिक विश्वसनीय हैं, क्योकि भाषा की दृष्टि से वे और भी कई शताब्दी पूर्व की हैं।[54]

कुछ कथाए आरभ मे ही, जब वे अनुश्रुतियो म सम्मिलित की गईं काफी पुरानी हो चुकी थी। इन कथाओ मे (जिनको जातक ग्रथ के निर्माण के पूर्व के रूप को खोज सकते है) 60-70 प्रतिशत अश गाथा के रूप मे था ही नहीं। वर्तमान सग्रह मे भी ऐसी कथाओ की सख्या काफी है जिनमे कथा के रूप मे कोई गाथा है ही नही। इनम गाथाए (जो जातक का रूप देने की दृष्टि से ही जोडी गई हैं) केवल ढाचे मे ही मिलती हैं।[55]

इस प्रकार वर्तमान त्रिपिटक मे सग्रहीत बौद्ध ग्रथो तथा जातक कथाओ के क्रमिक विकास के आधार पर पाचवी शताब्दी ई पू मे हो रहे भारतीय साहित्य के उद्भव तथा विकास पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। इस समय हो रहे भाषा के स्वरूप परिवर्तन से भाषा बोधगम्य और निरतर विकसित होती जा रही थी। लोक भाषा साहित्यिक रूप धारण कर रही थी जिससे आगे चलकर विश्व प्रसिद्ध साहित्य का निर्माण सभव हुआ।

सदर्भ तथा टिप्पणिया

1 कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, 1, पृ 150, मदनमोहन सिंह, बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ 98
2 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत (हिंदी अनु), पृ 91
3 वही
4 वही, पृ 94, मदनमोहन सिंह, बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ 148, आजिविक्स, पृ 95
5 रिस डेविड्स, वही, पृ 93
6 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत (हिंदी), पृ 95
7 जातक, 6, पृ 222-225, डायलाग्स, 3, पृ 14 और आगे, दीघ निकाय, 1, पृ 52 53
8 अष्टाध्यायी, 4/3/210

9. अंगुत्तर निकाय, 3, पृ 276-277
10. रिस डेविड्स द्वारा बौद्ध भारत (हिंदी) पृ 99 पर उद्धृत
11 वही, पृ 100
22. वही, पृ 81
13 वही, पृ 82, मनुस्मृति, 16/10 24.
14 वही पृ 82
15 वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ 467-474 श्री अग्रवाल ने विभिन्न विद्वानो के मतों की समीक्षा करके यह निष्कर्ष निकाला कि पाणिनि भगवान बुद्ध के पश्चात् तथा महापद्म नंद के पूर्व या उसी के समय में हुए थे पाणिनि के काल निर्धारण के संबंध में नंदराज की अनुश्रुति, जिसके अनुसार पाणिनि मगध के किसी नंदराज का समकालीन था महत्वपूर्ण है अनुश्रुति की पुष्टि तिब्बती लेखक तारानाथ (तारानाथ, बौद्ध धर्म का इतिहास 1608), करते थे सोमदेव ने कथा सरित् सागर (1063 1081) में तथा क्षेमेंद्र ने बृहत् कथा मंजरी (11वीं शताब्दी) में लिखा है कि पाणिनि नंद राजा की सभा में पाटलिपुत्र गए थे वही)
16 वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ 469 वीबेर, पाणिनि और वेद (1935), पृ 63
17 वही, पृ 5
18 राधाकुमुद मुखर्जी, एंशिएंट इंडियन एजुकेशन, पृ 165-67
19 मदनमोहनसिंह, बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ 7
20 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत (हिंदी), पृ 112
21 वही
22 वही, पृ 114
23 महापरिनिब्बान सुत्त,
24 दीघ निकाय, 15/4/11, अंगुत्तर निकाय, 6, पृ 511
25 रिस डेविड्स बौद्ध भारत (हिंदी), पृ 116
26 वही, पृ 121
27 चौथा 3 (बौद्ध भारत, पृ 121 पर रिस डेविड्स द्वारा उद्धृत)
28 रिस डेविड्स, वही, पृ 121 122
29 वही
30 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत, पृ 123
31 संयुत्त निकाय, 2/49, अंगुत्तर निकाय, 1/144, 2/45 3/399, 4/63.
32 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत, पृ 122 24.
33 चुल्लवग्ग (11), दीपवंश (4) तथा महावंश (3) के अनुसार बुद्ध निर्वाण के तत्काल पश्चात सप्तपर्णी गुहा में पांच सौ भिक्खुओ ने एकत्र होकर महाकस्सप के सभापतित्व में विनय तथा धर्म के सूत्रों का संकलन किया
34 चुल्लवग्ग 12 दीपवंश 4-5
35 मदनमोहन सिंह, वही पृ 2
36 चुल्लवग्ग 13/1/1
37 वही
38 सै. बु ई, भाग 13 भूमिका, पृ 36

39. विंटरनिट्स, ए हिस्ट्री आफ इंडिया लिटरेचर, 2, पृ 2 3, 10-11.
40 वही
41 चुल्लवग्ग, 4/4/4
42. रिस डेविड्स, बौद्ध भारत (हिंदी), पृ 115
43 मदनमोहन सिंह बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ 5
44 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत, पृ 138.
45 वही, पृ 139 140.
46 कनिंघम, 'स्तूप आफ भरहुत' (बौद्ध भारत, पृ 140 पर रिसडेविड्स द्वारा उद्धृत)
47 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत, पृ 141
48 रिस डेविड्स, द लास्ट टु गो फोथ (ज रा ए सो, 1902)
49 रिसडेविड्स बौद्ध भारत, पृ 142
50 बुद्ध वर्ष स्टोरीज और साथ ही 'डायलाग्स आफ बुद्ध', भाग 1, 17 में दी गई टिप्पणी
51 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत, पृ 142
52 रिचर्ड फिक्, 'सोशिले गिलडेरंग इन नारडोस्टिंलिचेन इंडियन जु बुद्धाज जीट', पृ 6-7, (बौद्ध भारत, पृ 143 पर रिस डेविड्स द्वारा उद्धृत)
53. जार्ज ब्यूलर, इंडिएन स्टडीज (वियना, 1895), संख्या 5.
54 रिस डेविड्स, बौद्ध भारत, पृ 145
55 सेनार्ट का अभिसबुद्ध गाथा पर लेख (ज ए सो., 1902).

13

कला

वैशाली की महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति का वर्णन एव सास्कृतिक उपलब्धियो का वर्णन पूर्ववर्ती अध्यायो मे किया जा चुका है। लिच्छवियो की कला के विकास की पृष्ठभूमि मे वैशाली की स्थिति, सास्कृतिक उपलब्धियो तथा राजनीतिक सबधो का महत्वपूर्ण हाथ होना स्वाभाविक है। आश्चर्य नही कि इस समृद्ध प्रदेश मे वस्तु शिल्प, मूर्ति, चित्र, कास्यप्रतिमा, मृण्मयीप्रतिमा, मृदभाजन, दतकर्म, काष्ठकर्म, मणिकर्म, स्वर्णरजतकर्म आदि के रूप मे भारतीय कला की सामग्री प्रभूत मात्रा मे पाई गई।

भवन व नगर निर्माण कला

एक पण्ण जातक[1] से पता चलता है कि वैशाली को तीन प्राकारो से घेर कर सुरक्षित किया गया था। दो प्रकार के मध्य की दूरी गव्यूत थी। प्राकारो (परकोटे) मे कई बुर्ज बने थे। इन बुर्जों पर सैन्य दल[2] पहरा दिया करता था। नगर मे प्रवेश के लिए बडे-बडे प्रवेश द्वार[3] थे जो रात्रि के समय बद रहते थे तथा प्रवेश व निकास[4] निषिद्ध था। इस प्रकार वैशाली नगर निर्माण का एक उत्कृष्ट नमूना था।

वैशाली नगरी का आतरिक निर्माण पर्याप्त व्यवस्थित ढग से किया गया था। महावग्ग[5] के अनुसार वैशाली सात हजार सात सौ सात अनेक भूमिक भवन, उतने ही गुम्बदनुमा भवन, उतने ही आराम तथा उतने ही कमल सरोवर थे। तिब्बती दुल्व[6] के अनुसार वैशाली तीन भागो मे विभाजित था जिसके प्रथम भाग मे सात हजार सात सौ सात स्वर्ण कलश वाले, मध्य म सात हजार सात सौ सात रजत कलश वाले तथा अतिम भाग म इक्कीस हजार ताम्र कलश वाले भवन थे। ये स्तर के अनुसार उच्च, मध्यम व निम्न वर्ग के रहने के लिए होते थे।[7] इसके अतिरिक्त साधारण लोगो के घर बहुधा लकडी तथा ईंटो से बनाए जाते

थे।[8] विनय पिटक[9] मे पत्थरो से भवन निर्माण करने वालो की कला पर विशेष प्रकाश डाला गया है। भवन के अदर तथा बाहर अच्छे प्रकार के चूने से पलस्तर किया जाता था तथा दीवारो को सुन्दर भित्ति चित्रो से सजाया जाता था। बडे भवनों मे एक लवा-चौडा प्रवेश द्वार होता था जिसकी दाईं ओर कोष तथा बाईं ओर अन्न भण्डार होता था। इस प्रवेश द्वार से सीधे अदर के आगन तक पहुचते थे। आगन के चारो ओर कमरे बने होते थे। इन कमरो के ऊपर समतल छत होती थी जिसे 'उपरिपासाद तल' कहते थे जहा प्राय मण्डप के नीचे गृहस्वामी बैठा करता था। विनय पिटक[10] मे गर्म पानी से स्नान करने की व्यवस्था वाले स्नानागार का भी उल्लेख मिलता है जिसे पढकर रिस डेविड्स[11] चकित रह गए थे। यह स्नानागार ईंट या पत्थर के बने एक चबूतरे पर बनाया जाता था जिसमे ऊपर जाने के लिए पत्थर की सीढिया होती थी और बरामदे के चारो ओर बारजा (रेलिंग) बनी होती थी। इसकी छत और दीवारें लकडी की होती थी। उन पर खाल (छिलका) चढा होता था, और बाद मे पलस्तर चढा दिया जाता था। *दीवार के केवल निचले भाग मे ईंट लगाई जाती थी। अदर एक कमरा, एक* तप्त-कक्ष (गर्मकक्ष) और एक जलाशय स्नान के निमित्त होता था। तप्त-कक्ष के मध्य मे अग्नि रहती थी जिसके चारो ओर बैठने का प्रबध होता था। स्नान के पूर्व वे अपने शरीर मे पसीना पैदा करते थे, फिर गर्म पानी से स्नान करते थे। दीघनिकाय[12] मे एक खुले मैदान मे बने एक ऐसे जलाशय का उल्लेख है जिसमे पानी तक नीचे आने के लिए सीढिया बनी थी। ये सीढिया पूर्णतया पत्थरो से बनाई गई थी जिसके दोनो ओर पत्थर की छोटी दीवार भी बनी होती थी। इन दीवारो पर फूलपत्ती आदि उत्कीर्ण थे। यद्यपि इनका अस्तित्व वैशाली के उत्खनन में नही मिला है, परतु वैशाली के लिच्छवियो ने ऐसे जलाशयो का निर्माण अवश्य कराया होगा।

ग्रामो मे घर प्राय मिट्टी तथा छप्परो के बने होते थे जिन्हे झोपडी कहते थे। झोपडियो के चारो ओर खेत हुआ करते थे। झोपडिया प्राय सटी हुई होती थी। बीच मे सकरी गलिया होती थी।[13]

इस प्रकार वैशाली नगरी तथा वैशाली क्षेत्र के गाव काफी सुव्यवस्थित ढग से बने थे।

वैशाली के लिच्छवियो के भवन पर्याप्त उत्कृष्ट कोटि के होते थे, इसका अनुमान ऊपर के विवरण से लगाया जा सकता है। भवन-निर्माण की कला बौद्ध भिक्खुओ मे भी काफी उत्कृष्ट थी। चुल्ल वग्ग[14] मे एक भिक्खु द्वारा भवन निर्माण का निरीक्षण करते हुए दर्शाया गया है। इसी तरह वत्थु विज्जाचारी[15] उन्हें कहते थे जो भवन निर्माण के लिए स्थानो का निरीक्षण करते थे। इस तरह लिच्छवि अनेक भूमिक भवनो, स्तभो, चैत्य, विहार और मदिरो के निर्माणकर्ता थे।

महालि नामक[16] लिच्छवि शिल्प या कला की शिक्षा लेने के लिए तक्षशिला[17] गया था। वहां से शिल्प का ज्ञान प्राप्त कर उसने वैशाली के पांच सौ लिच्छवि युवकों को शिल्प की शिक्षा दी।

कूटागार तथा चैत्य कला

वैशाली के पास महावन में एक कूटागार का उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। कूटागार शब्द का अभिप्राय उस मण्डप से था जिसके ऊपर स्तूपिका युक्त ऊंची छत लगाई जाती थी[18] फाह्यान ने इसे दो गलियारे वाला विहार कहा है और यह देखने में विमान सदृश था।[19]

वैशाली में अनेक सुंदर चैत्य थे। इन चैत्यों की रमणीयता की भगवान बुद्ध मुक्त कंठ से प्रशंसा किया करते थे, और इन स्थानों को छोड़ने का मन नहीं करता था।[20] भगवान बुद्ध अंतिम बार वैशाली छोड़ते समय सारंदद चैत्य, चापाल चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य, उदेन चैत्य, गोतमक चैत्य, सप्तांबक चैत्य आदि में अंतिम बार विहार किया था।[21] इन चैत्यों की बनावट के विषय में कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। विद्वानों का मत है कि उद्यान पुष्करिणी सहित देव स्थान थे जिसमें सेवकों आदि के रहने के लिए चारों ओर कमरे भी बने होते थे।[22] संभवत चैत्य को बारजा (रेलिंग) से घेरा जाता था। कुछ आहत मुद्राओं (पंचमार्क) पर बारजा के अंदर वृक्ष चित्रित हैं।[23] बहुत संभव है बारजा चैत्यों के निर्माण में लकड़ी का ही अधिक प्रयोग होता हो।[24] लकड़ी पर काम करने की कला का उचित विकास हुआ। बाद में इन्हीं बारजों पर स्थापत्यकला पूर्ण रूप से पल्लवित हुई। जब चैत्यों की रेलिंग और स्तूप पत्थर के बनने लगे तब लकड़ी पर की गई कला की अनुकृति पत्थर पर की जाने लगी।[25]

स्तूप तथा स्तंभ

वैशाली के लिच्छवियों ने भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष पर एक स्तूप बनवाया था। इस स्तूप का वर्णन चीनी यात्री फाह्यान व ह्वेनसांग ने किया है।[26] ह्वेनसांग के विवरण के आधार पर मार्च 1958 में अल्तेकर महोदय ने इस स्तूप को खोज लिया।[27] यह स्तूप एक मिट्टी के टीले के नीचे दबा हुआ था। यह स्तूप पकी ईंटों से बना हुआ है तथा सादा स्तूप है। स्तूप के अंदर से वह पात्र भी निकला है जिसमें भगवान बुद्ध की अस्थि अवशेष सुरक्षित है। यह पात्र पक्की मिट्टी के कुंभ सदृश है।

भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद के अर्धांग के अवशेष पर बना एक अन्य स्तूप भी वैशाली के कोल्हुमपुर (बाखिरा) गांव में अशोक निर्मित सिंह शीर्षक युक्त स्तंभ के समीप स्थित है।[28] यह भी पक्की ईंटों से बना सादा स्तूप है। इस

स्तूप के ऊपर बाद मे कभी स्थापित की गई एक भगवान बुद्ध की मुकुटधारी मूर्ति थी जो अब वैशाली सग्रहालय मे सुरक्षित है। ह्वेन-त्साग ने द्वितीय बौद्ध सगति के स्मारक स्तूप के निकट श्वेत विहार का वर्णन किया है जिसमे सम्मतीय सस्था के अनुसार हीनयान सप्रदाय के अनुयायी रहते थे। इस श्वेत विहार मे चमकीले रगो से सुशोभित बडे-बडे कमरे थे।[29]

मौर्यकालीन कला के उत्कृष्ट नमूनो मे अशोक के समय के शिला स्तभ हैं जिसके शिरोभाग और पाषाण मूर्तिया अतुलनीय हैं। वैशाली मे कोल्हुआ (बाखिरा गाव) के पास एक सिंह शीर्ष-युक्त स्तम्भ आज भी सुरक्षित खडा है। यह अशोक निर्मित स्तूप के समीप स्थित है। मौर्यकालीन स्तभो मे काल की दृष्टि से यह प्रथम प्रयास का नमूना है। इस पर कोई अभिलेख नही है।[30] यह स्तभ देखने मे अन्य स्तभो की तुलना में तनिक भद्दा सा लगता है। यह छत्तीस फुट लबा है और नीचे से ऊपर की ओर मोटाई कम होती गई है। अन्य स्तभो मे यह अतर बहुत कम है, इसलिए वे आकर्षक हैं। पर इस स्तभ के नीचे का व्यास चार फुट दो इच है और ऊपर तीन फुट एक इच। उल्टे कमल के शिरोभाग पर दीर्घाकार चबूतरा है। यह चबूतरा आवश्यकता से अधिक बडा और भारी ज्ञात होता है, जो कलात्मक कमल से मेल नहीं खाता है। बाद मे बनने वाले स्तभो के चबूतरे वृत्ताकार हैं। इस भारी भरकम चबूतरे पर सिंह पीछे के पावो को मोडकर बैठा है जबकि उसका अधो भाग चबूतरे पर कठिनाई से उचित स्थान पा सका है। उसके आगे चबूतरे का एक हिस्सा खाली पडा है। सिंह के आयल की तरगमय रेखाए भी मोटी हैं। सिंह के प्रभावोत्पादक शरीर का चित्रण तो ठीक हुआ है परन्तु मूर्ति में गतिशीलता या स्फूर्ति का अभाव है। किंतु विकसित कमल की पखुडिया बहुत सुन्दर और सावधानी से उत्कीर्ण की गई हैं।[31]

लिच्छवि युवको की सुरुचिपूर्ण एव सुन्दर वेश-भूषा का वर्णन किया जा चुका है। वे अपने को स्वर्ण, मणि तथा बहुमूल्य पत्थरो स सजाने के अतिरिक्त अपने घरो, हाथियो, रथो तथा पालकियो को भी सुदर ढग से सजाते थे।[32] नगर विकास के साथ-साथ कलात्मक वस्तुओ की माग मे भी वृद्धि हुई। सुदर कालीन, मलमल, ऊनी कबल, रेशमी वस्त्र तथा रोएदार महीन ऊन का कवल, चादरें तथा दरी आदि की मांग मे वृद्धि हुई।[33] दीघ निकाय (1/7) मे उल्लेख है कि बुनकर लोग निर्यात के लिए महीन मलमल, कलात्मक कपडे तथा जानवरो के बालों की लोई, कवल तथा कालीन आदि बनाते थे। बनारस इन कलात्मक वस्तुओ के निर्माण का प्रमुख केंद्र था।

उपर्युक्त वस्तुओ का निर्माण करने वाले शिल्पकारो की सूची दीघ निकाय मे मिलती है, यथा, कुभकार, नडकार, पेसकार, (बुनाई-कढाई का काम करने वाले) रजव, मालाकार, कण्णक, चेलक, धनुग्गह, रथिक आदि बडे शिल्पो की

सूची (पुथसिप्पायन) में है। (सामंजनफल सुत्त, 14)। ब्रह्मजाल सुत्त में इसमें भी वही सूची है। नच्चगीत, वादित्त, मालागन्ध विलेवन, तुलामान (नापतौल के बट्टे), कस (कांस के बर्तन), दीघ दस वथ्य (चौड़ी किनारी के वस्त्र), उसु (इषु, बाण), लक्खण, धनु-लक्खण, आयुध-लक्खण। विशेष विद्याएं जैसे वत्युविज्जा (वास्तु विद्या), खेत विज्ज (क्षेत्र मापन), वत्युकम (वास्तुकर्म), वत्यु परिकम (वास्तु-परिकर्म)।[34]

वैशाली के उत्खनन में इनमें से बहुत सी वस्तुएं मिली हैं जो इस क्षेत्र की विकास की कहानी प्रस्तुत करती हैं। इनका क्रम से विवरण नीचे दिया जा रहा है

मिट्टी के बर्तन वैशाली उत्खनन में प्रारंभिक काल के मिट्टी के बर्तन मिले हैं वे साधारणतया सादे हैं जिनकी परिसज्जा (फिनिशिंग) श्वेत, सुनहरे, काले, नीले तथा गुलाबी रंग से की गई है। इस तरह (नार्दन ब्लैक पालिश) के बर्तनों में तश्तरियां और कटोरे हैं।[35] मौर्यकाल में भी ऐसे ही बर्तनों का अधिक उपयोग होता था। मौर्यकालीन बर्तनों में इन बर्तनों के अतिरिक्त कुछ बर्तन काले और लाल भी हैं। इस तरह के बर्तनों में तश्तरी, घड़ा तथा विभिन्न आकार के कटोरे हैं। ये सभी बर्तन सादे हैं। इनमें किसी विशेष कला का प्रयोग नहीं किया गया है। ये सभी बर्तन 500 ई पू से 150 ई पू के हैं।[36] ई पू 500 से 300 ई पू में कुछ बर्तनों के टुकड़ों पर कलात्मक चित्र खुदे हुए हैं। इन पर सूर्य, चक्र, व पत्ती आदि अंकित हैं। ये देखने में सुंदर लगती हैं।[37] इनके अतिरिक्त मिट्टी के बर्तनों के तीन टुकड़े सतरे या काले रंग से रंगे हुए भी मिले हैं।[38]

मृण्मय मूर्तियां भारतीय कला में मृण्मय मूर्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध साहित्य (भद्दसाल जा) में मृण्मयी मूर्तियों का उल्लेख हुआ है। जातक में लिखा है कि राजकुमार को ननिहाल की ओर से हाथी घोड़े और अन्य खिलौने खेलने के लिए दिए जाते थे।[39]

सबसे प्राचीन मिट्टी के खिलौने लगभग 2.00 ई पू के काल के मोहन-जोदड़ो तथा हड़प्पा के उत्खनन में मिले हैं जो हाथ से डोलियां कर बनाए गए हैं अर्थात उनके निर्माण में सांचों का प्रयोग नहीं हुआ। उनके वर्ण्य विषय थे स्त्री मूर्तियां जो मातृदेवी की हैं तथा पशु पक्षियों के रूप की। मातृदेवी की मूर्तियों की यह परंपरा सिंधु युग के बाद भी प्रचलित रही। वैशाली में भी मौर्ययुगीन तथा शुंगकालीन जो नारी प्रतिमा मिली हैं वे इसी परंपरा की मातृदेवी की प्रतिमा हैं।[40]

मौर्ययुग तक सांचे का प्रयोग नहीं हुआ था। सांचे में ढली मूर्तियां सर्वप्रथम शुंगकाल में मिलती हैं इस काल में सांचों का प्रयोग किया जाने लगा था। सांचों को 'सचक' या 'मातृक' भी कहते हैं। सांचों से ही अनेक नमूने तैयार किए जाते

थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले मूल 'मतृका' साचा कुशल कलाकार तैयार करता था, तब उसमे कमाई हुई मिट्टी को भर कर दबाने से इच्छानुसार ढार तैयार कर लिए जाते थे।[41]

वैशाली के उत्खनन मे जो मातृदेवी की मृणमयी मूर्तिया मिली हैं, उनमे से एक पूर्ण रूप से हाथ से गढी गई है। यह मृणमयी मूर्ति काफी सुदर है तथा गाधार की मातृदेवी की मूर्तियो से मिलती-जुलती है। इस मातृदेवी की प्रतिमा का चेहरा पक्षी की तरह है। यह विशाल वक्ष, चौडे नितब, गवदुम भुजाए व पावो से युक्त है। गले में ठप्पेदार कठी व हार तथा कमर मे कमरबद पहने हुए है।[42]

इसके अतिरिक्त वैशाली के उत्खनन मे आठ प्रकार की अन्य मृण्मय मूर्तियां मिली हैं। ये हाथ से डौलिया कर बनाई गई हैं, केवल इनका मस्तक और धड साचे से बनाकर जोडे गए है। यह अलकृत हैं इनमें एक प्रतिमा की पतली भुजाए, आकृति पक्षी की भाति, चौकोर तथा उसमें कान चौकन्ने हैं। नाक के नीचे ढाल की तरह गिरती हुई तथा नीचे दो छिद्र हैं। आखें सुन्दर लगती है। आभूषणो में कठी व हार गले में पहनी है। इस मृणमयी मूर्ति का रग लाल तथा ऊचाई 2.5" है। शैली की दृष्टि से प्रतिमा शुगकालीन है।[43]

सांचे मे ढली मृण्मयी मूर्तियां : वैशाली के उत्खनन मे साचे से ढली सात प्रकार की मृण्मयी मूर्तिया (मानव आकृतिया) मिली हैं। इनमे से प्रथम आकृति (वै. इक्वे, प्लेट 13 का चित्र 1) एक मातृदेवी की है जो उत्कृष्ट कला का नमूना है। इसके सिर पर त्रिकोणाकार जूडे हैं जो जटिल फूलो से सुसज्जित हैं। दोनो तरफ की चोटियो मे फूलो की आकृति बनाने का बारीक काम किया गया है। गले मे मोतियो की लडी से बना हार, कानो मे मोतियो के बने कर्णफूल भी हैं। शैली की दृष्टि से यह शुगकालीन है।[44]

एक अन्य महत्वपूर्ण प्रतिमा एक पुरुष शीर्ष है जिसके सिर पर पाच सर्पफण बने हुए हैं। दोनो कानो मे पत्र कुण्डल हैं। मुख की अभिव्यक्ति गोलाकार एव चपटी है। इस प्रकार की मृण्मयी मूर्तिया ताम्रलुक एव कौशाबी में भी प्राप्त हुई हैं।[45]

वैशाली से प्राप्त एक टिकरे पर ($5\frac{1}{2}$ इच ऊची) एक मूर्ति कमलवन में खडी हुई है जो दोनो हाथो मे कमल लिये है। उसके दोनो कधो पर दो पख हैं। स्तन पुरुष मूर्तियो की भाति चपटे हैं। कानो मे गोल कुण्डल, गले मे कठी, हाथों मे कटकावली, कलाई मे पहुची जिनमे मोतियो के झुग्गे लगे हैं, चौडी करधनी और पावो मे नूपुर इसके आभूषण हैं। प्रतिमा लक्षण की दृष्टि से यह सपक्ष लक्ष्मी की अनुपम मूर्ति है। कमल श्री लक्ष्मी के साथ इसकी पहचान का सकेत देते हैं। ग्रथो मे सपक्ष षष्ठी का उल्लेख आता है और सभव है उसी ढग पर सपक्ष श्री लक्ष्मी की कल्पना भी की गई हो। कामदेव की अनेक मृण्मयी मूर्तिया सपक्ष

हैं। इनसे ही इस मूर्ति का संबंध ज्ञात होता है। दोनों बाहुओं में नीचे दो छोटे छिद्र हैं जिनमें धागा पिरोकर भीत पर लटकाई जाती है।[16]

वैशाली में प्राप्त मृण्मयी मूर्तियों पर विदेशी प्रभाव दिखाई पड़ता है। शैली की दृष्टि से गांधार व मथुरा शैली की मूर्तियां हैं।

पशु आकृतियों के खिलौने वैशाली के उत्खनन में पहिए वाले पक्की मिट्टी के खिलौने मिले हैं जो भारत के अन्य स्थानों पाटलिपुत्र, सोनपुर तथा कौशाम्बी में भी मिले हैं। इन खिलौनों के कुछ पहिए सादे तथा कुछ अलंकृत हैं। इसके अतिरिक्त बैल, कुत्ता, हाथी, घोड़ा, बकरा तथा सर्पफण भी मिले हैं। ये खिलौने मौर्य तथा शुंग काल के हैं। खिलौने के ऊपर ठप्पे से दबाकर चक्र, पत्ती आदि भी बनी हुई हैं जिनसे इनका आकर्षण बढ़ जाता है।[17]

इस प्रकार वैशाली के संबंध में साहित्यिक विवरणों तथा उत्खनन में प्राप्त बर्तनों, मृण्मयी मूर्तियों तथा पशु आकृतियों से भारतीय कला के विकास में *वैशाली के योगदान के इतिहास का ज्ञान होता है।*

संदर्भ तथा टिप्पणियां

1 एकपण्ण जा (149), सामहस जा (91)
2. मैती, इको लाइफ आफ नार्दन इंडिया (कलकत्ता, 1957) पृ 223
3 वही.
4 वही
5 महावग्ग (बुद्धिष्ट सीरीज, भाग 17,) पृ 191,
6 रोक हिल, वही, पृ 62, इ हिस्ट क्वा, भाग 23, पृ 58
7 गिलिगट मैन्यु (भाग 3, खण्ड 2, पृ 6) में इसी प्रकार का विवरण मिलता है
8 बुद्धिष्ट इंडिया, पृ 34, वैशाली इक्वे (1950) पृ 14 उत्खनन में ईंटों का प्रयोग मिलता है जिसे एक दिवार में उपयोग किया गया था अल्तेकर का मत है कि यह सम्भवत शुंग काल के हैं (आ स इ ए रि 1958 59, पृ 12) इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्व में भी लोग ईंटों के प्रयोग से परिचित रहे होंगे
9 विनय पिटक, 3/170-72, 2/67, 4/47
10 विनय पिटक, 3/105 110, 297
11 रिस डेविड्स, बु इंडिया, पृ 35
12 वही पृ 23
13 सें बु ई, पृ 262 और आगे बौद्ध भारत (हिंदी), पृ 57
14 सें बु ई भाग 22, पृ 189 90

15 तक्क जा (23) सुरुचि जा (489)
16 फौसवाल, धम्मपद (पुराना सस्करण), पृ 111.
17 अल्तेकर, एजुकेशन इन एंशिएंट इंडिया (वाराणसी, 1959) पृ 106-113 तक्षशिला में तीनो वेद व्याकरण, दर्शन और शिल्पो की शिक्षा दी जाती थी इन अठारह शिल्पो के अतर्गत सगीत, नाच तथा पेंटिंग (चित्रकला) की भी शिक्षा दी जाती थी
18 वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला (वाराणसी, 1966), पृ 84
19 लेग्ग फाह्यान पृ, 72, 75 77, लो, क्षत्रिय क्लान्स पृ 52 53.
20 डायलाग्स, भाग 2, पृ 110
21 वही
22. राहुल सांकृत्यायन, बौ अभि, ग्र पृ 25,
23 विन्ध्येश्वरप्रसाद सिंह भारतीय कला को बिहार की देन, पृ 45
24 वही
25 वही
26 बील, बुद्धिस्ट रिकार्ड, भाग 2, पृ 66 67, तीर्थंकर महावीर, पृ 77
27 वैशाली इक्वे, (वैशाली, 1961), 1950, पृ 2 ज वि रि सो, भाग 2, पृ 501 511. यह स्तूप सर्व प्रथम अशोक द्वारा खोला गया था, और इसमें रखे अस्थि अवशेष के भाग का 9/10 अश निकाला व 1/10 अश पुन रख दिया गया था (योगेंद्र मिश्र, वैशाली पृ 193) सभवत इसे पुन पक्की ईंटो से तैयार किया गया
28 द्रष्टव्य, प्रथम अध्याय, टिप्पणी 168
29 वाटर, ह्वेन-त्साग, भाग 2, पृ 79
30 वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ 129-30
31 विंध्येश्वर प्रसाद सिंह, भा कला को बिहार की देन, पृ 57-58
32 द्रष्टव्य, सांस्कृतिक इतिहास, वैशाली के उत्खनन में पक्की मिट्टी से बने आभूषण, हाथी दांत की बनी अगूठी पासा तथा हड्डी से बनी वस्तुए मिली हैं, जो मौर्य तथा शुगकालीन हैं (*वैशाली इक्व पृ 57 58*)
33 द्रष्टव्य, आर्थिक दशा
34 वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ 78 तथा आर्थिक दशा का अध्याय देखिए
35 वै इक्वे, पृ 16 48
36 वही
37 वही, पृ 48
38 वही, पृ 49
39 वासुदेव शरण अग्रवाल वही, पृ 375
40 वही, पृ 377.

41 वही, पृ

42 वैं इक्वे, पृ 50 तथा प्लेट 12 का चित्र 1 देखिए

43 वही, पृ 50 तथा प्लेट 12 का चित्र 2 देखिए

44 वैं इक्वे, पृ 52, चित्र 1

45 वही, पृ 53 तथा प्लेट 14 का च 2 देखिए

46 वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ 378 तथा पृ 379 पर चित्र 439 देखिए

47 वैं. इस्वे, पृ 54 55 तथा प्लेट 16 व 17 देखिए

14

निष्कर्ष

प्राचीन भारत के इतिहास मे जिन गणराज्यो का उल्लेख मिलता है उनमे लिच्छवि गणराज्य का एक विशिष्ट स्थान है। पूर्ववर्ती पृष्ठो मे लिच्छवियो के गौरवमय इतिहास के अनेक विषयो का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबध मे विवेचन के आधार पर निष्कर्षों के विभिन्न तत्वो को एकत्र कर लिच्छवियो के उत्थान एव पतन तथा सबधित इतिहास प्रवाह का समासत वर्णन निम्न पक्तियो मे किया गया है।

लिच्छवियो की उत्पत्ति के विषय मे इतिहासकारो मे पर्याप्त मतभेद है। विद्वानो का एक वर्ग उन्हें क्रमश यू-ची, कोलार, तिब्बती पारसी तथा आर्येतर जाति से सबधित बताता है। दूसरा वर्ग उन्हें आर्य क्षत्रिय से सबधित बताता है। इन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित मतो का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला गया है कि लिच्छवि मूलत भारत निवासी एव क्षत्रिय थे। लिच्छवियो के सबध मे मनुस्मृति मे उल्लिखित 'व्रात्य' को लेकर भी पर्याप्त मतभेद रहा है। किंतु तथ्यो का विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि अब्राह्मण मत के अनुयायी होने के कारण ब्राह्मण व्यवस्थाकारों ने उन्हें 'व्रात्य' शब्द स अभिहित किया है। वस्तुत वे आर्य क्षत्रिय ही थे और इनका मूलस्थान वैशाली क्षेत्र ही था। वैशाली हाजीपुर से 35 कि. मी. पूर्व में स्थित है, पुरातात्त्विक प्रमाणो से इसकी पुष्टि होती है।

भगवान बुद्ध से पूर्व लिच्छवियों के इतिहास के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध अप्रत्यक्ष सकेतो तथा विवरणो को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे देखने से विदित होता है कि कोशल के राजा दशरथ तथा विदेह के राजा सीरध्वज जनक के काल मे वैशाली में सुमति का शासन था। सुमति के पश्चात् पुराणों मे वैशाली के राजाओ का उल्लेख न होने से अनुमान लगाया जाता है कि वैशाली सभवत विदेह मे आत्मसात् हो गया और विदेह म राज्य क्राति के समय तक यह उसी के अतर्गत रहा। इसी कारण महाभारत मे वैशाली का अलग से

उल्लेख नही मिलता है। विदेह मे कराल जनक की मृत्यु तथा राज्य क्राति के पश्चात् हिमालय की तराई से लेकर गगा की उपत्यका के मध्यवर्ती भाग मे कई गणराज्यों का उदय हुआ। इन गणराज्यो का उल्लेख अगुत्तर निकाय मे हुआ है। इन गणराज्यो म वज्जि सघ नाम स बहुचर्चित लिच्छविया का गणराज्य सबसे अधिक विस्तृत एव शक्तिशाली था। इस गणराज्य या सघ की स्थापना मगध-राज बिबसार (542-491 ई पू) तथा भगवान बुद्ध के समय से लगभग सौ वर्ष पूर्व अर्थात 650 ई पू के लगभग हुई होगी। यही तिथि सभवत विदेह मे राज्य क्राति की भी थी।

इस वज्जिसघ में लिच्छवि, वज्जि, विदेह सहित उग्र, भोग, अक्षविक, ज्ञनिक तथा कौरव सम्मिलित थे। अपनी स्थिति दृढ करने के लिए लिच्छवियो ने पडोसी मल्लो तथा काशी कोशल क्षेत्र के गणराज्यो म सधि कर अजातशत्रु के विरुद्ध विशाल सघ भी बनाया था।

मगध साम्राज्य के पडोस म इतनी शक्तिशाली शक्ति का उदय होना मागधी साम्राज्यवादी महत्वाकाक्षा के लिए प्रतिस्पर्धा का विषय था। बिबसार के प्रारभिक वर्षों म लिच्छवि मगध राज्य क मध्य सबध मैत्री पूर्ण रहे लेकिन मगध-राज बिबसार द्वारा अग पर आक्रमण के साथ लिच्छवियो ने विरोध किया सभवत आक्रमण के समय लिच्छवियो ने अनुकूल अवसर देखकर गगा की उपत्यका, विशेषकर अग के उत्तरी भाग पर जो पहले अश का भाग था, अधिकार कर लिया। इस क्षेत्र पर अधिकार करने की होड म लिच्छवियो तथा बिबसार के मध्य युद्ध हुआ। अत म सभवत लिच्छवि राजा चेटक की पुत्री चेल्लणा का विवाह मगधराज बिबसार स करके लिच्छवियो ने सधि कर ली। संभवत सधि म इस तट का दोनो राज्यों द्वारा उपयोग करना तय हुआ था।

चेल्लणा से ही अजातशत्रु का जन्म हुआ। इसके पश्चात् बिबसार के शासन काल तक दोनो राज्यो के सबध मैत्रीपूर्ण बने रहे। लेकिन मगध के राजसिंहासन पर अजातशत्रु के बैठने ही पुन सबध कटु हो गए, जिसके फलस्वरूप दोनो राज्यो के मध्य भयकर युद्ध हुए। युद्ध का मूल कारण मगधराज की साम्राज्यवादी नीति थी। राज्य विस्तार के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति के लिए अजातशत्रु ने गगा के जलमार्ग पर एकाधिकार करना चाहा क्योकि इस जलमार्ग से बहुत अधिक आय होती थी। लिच्छवियो ने इसका विरोध किया क्योकि वैशाली एक व्यापारिक नगरी थी जहा देश भर क व्यापारी व्यापार के लिए आते-जाते थे जिससे लिच्छवियो को भी पर्याप्त मात्रा मे आय होती थी।

फलत दोनो शक्तियो के मध्य युद्ध हुए। लिच्छवि राजा चेटक ने अजातशत्रु की साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध पडोसी गणराज्यो को भी सगठित होने का आह्वान किया। फलस्वरूप चेटक क नेतृत्व मे नौ लिच्छवि, नौ मल्ल तथा

काशी कोशल के अठारह गणराजाओं का संयुक्त मोर्चा बना। भयंकर युद्ध हुआ। संभवतः यह युद्ध एक वर्ष तक चला। अततः अजातशत्रु की जीत हुई। चेटक के नेतृत्व मे बना संयुक्त मोर्चा बिखर गया था। संयुक्त मोर्चे मे सम्मिलित सभी सदस्य राजा चेटक को अकेला युद्ध क्षेत्र मे छोड कर अपने अपने राज्य लौट आए। चेटक ने अकेले अजातशत्रु का विरोध किया। अततः पराजित होने पर कुए मे कूदकर उसने आत्महत्या कर ली। उसके अनुयायी नेपाल की दुर्गम घाटियो मे जा छिपे। अजातशत्रु ने वैशाली पर अधिकार करने के पश्चात् उसके गणतान्त्रिक स्वरूप को समाप्त नही किया। आगे चलकर सभवत इसी लिए लिच्छवि तथा वज्जि कौटिल्य अर्थशास्त्र मे गणराज्य के रूप म उल्लेख किया गया। यह स्थिति शुग नरेश वसुमित्र के समय तक बनी रही। वसुमित्र के पश्चात् केंद्र के अशक्त होते ही सपूर्ण भारत मे विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई थी। पाटलिपुत्र का दरबार स्वय षड्यत्र का अड्डा बन गया जिसके परिणाम स्वरूप अतिम शुग राजा देव भूति की हत्या कण्व द्वारा हुई।

यह अराजकता का युग है। कलिंग नरेश खारवेल का उत्तर भारत पर आक्रमण करना भी इसी बात का द्योतक है। इसी काल मे पश्चिम भारत मे यौधेय, मालव, क्षुद्रक अर्जुनायन, कुकुर तथा वृष्णि आदि गणराज्यो का पुनरुत्थान हुआ। इसी तरह मध्य देश के सामत स्वतत्र शासक बन बैठे जिनके 'मित्र' विरुद वाले सिक्के प्रभूत मात्रा म प्राप्त हुए हैं। सभवत इसी अवधि मे कभी लिच्छवि गणराज्य भी पुन स्वतत्र हो गया। यद्यपि इसका कोई साहित्यिक अथवा पुरातात्त्विक साक्ष्य अभी तक उपलब्ध नही हुआ है। सभव है भविष्य मे उत्खनन मे लिच्छवियो का ऐसा कोई सिक्का मिल जाए जिस पर चद्रगुप्त कुमार-देवी के सिक्को का लेख 'लिच्छवय' अकित हो।

इतिहासकारो का मत है कि कण्वो के पश्चात् आध्र सातवाहनो ने मगध पर अधिकार कर लगभग पचास वर्षों तक शासन किया। सभवत लिच्छवियो ने इस कार्य म सातवाहनो की सहायता की थी। बाद म सातवाहनो को अपना ध्यान पश्चिम भारत के कुषाणो की ओर लगाना पडा। ऐसी स्थिति मे लिच्छवियो ने सातवाहनो से आज्ञा प्राप्त कर पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया अथवा स्वय सातवाहनो ने पाटलिपुत्र का शासन भार लिच्छवियो को सौंप दिया हो। इस प्रकार पाटलिपुत्र भी लिच्छवियो के अधिकार क्षेत्र मे आ गया।

कनिष्क ने भी पाटलिपुत्र पर अधिकार करने मे सफलता प्राप्त की थी। इस समय यहा कोई लिच्छवि राजा राज्य कर रहा था। देव पुत्र (कनिष्क) ने पराजित लिच्छवियो से क्षतिपूर्ति के लिए नौ लाख स्वर्ण मुद्राओ की माग की, जिसके बदले पराजित लिच्छवि नरेश न भगवान बुद्ध का प्राचीन भिक्षा पात्र देव पुत्र (कनिष्क) को भेंट देकर मैत्री स्थापित कर ली। ऐसा इसलिए भी सोचा

जा सकता है कि कनिष्क और लिच्छवि दोनो बौद्ध मत के अनुयायी थे। कनिष्क ने पूर्वी भारत के बौद्ध मत के अनुयायियो को अपने विश्वास मे लेने के लिए ऐसा किया होगा। लिच्छवि नरेश ने नाम मात्र की प्रभुता अवश्य स्वीकार की होगी। आगे हुविष्क के पश्चात् जब कुषाण साम्राज्य ह्रासोन्मुख हुआ तो लिच्छवियो ने पुन अपनी स्थिति दृढ कर ली।

यह स्थिति गुप्तो के अभ्युदय के पूर्व तक बनी रही। "कौमुदी महोत्सव" नाटक गुप्त अभ्युदय के पूर्व मगध की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। सभवत सुदर वर्मन लिच्छवि राजा (सामत) था जिसका राज्य पाटलिपुत्र के सीमित क्षेत्र पर ही था। सभवत इसी सुदर वर्मन की पुत्री कुमार देवी थी जि का विवाह गुप्त नरेश चद्रगुप्त प्रथम से हुआ। पारिवारिक कलह के कारण पाटलिपुत्र जब राज्य विहीन (नाटक के अनुसार पारिवारिक कलह म चण्डसेन तथा कल्याण वर्मन सहित सब नष्ट हो गए) हो गया, तो कुमार देवी तथा चद्रगुप्त प्रथम के गह सचालन म पाटलिपुत्र सहित मगध क्षेत्र आ गया। लिच्छवियो के इस सबध का समुद्रगुप्त ने भी अपने दिग्विजय मे भरपूर लाभ उठाया। उसने लिच्छविया के इस सहयोग के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए "प्रयाग प्रशस्ति" मे लिच्छवि दौहित्र ' कहकर अपने गौरवान्वित किया।

समुद्रगुप्त के पश्चात् चद्रगुप्त द्वितीय ने ही प्रथम बार वैशाली म 'कुमारामात्य" की व्यवस्था कर लिच्छविया की गणतात्रिक व्यवस्था पर अकुश लगा दिया। लिच्छवि जनता ने गणतत्र की अपेक्षा सुरक्षा की दृष्टि से इस नई व्यवस्था को व्यावहारिक मान लिया। सभवत इसी काल म कुछ लिच्छवि परिवार नौकरी आदि की सुविधा के लिए नेपाल चले गए जहा लिच्छवि वश के लोगो का ही शासन था। लिच्छवियो की इस पलायन नीति स भविष्य मे लिच्छवियो की सख्या वैशाली मे न्यून होती रही। इसीलिए 635 ई म जब चीनी यात्री ह्वेन त्साग वैशाली देखने आया तो वैशाली नगर का अधिकाश भाग खण्डहर हो चुका था लेकिन कुछ लिच्छवि परिवार जो कृषि तथा अन्य व्यवसाय से जुडे थे, वहा रह रहे थे।

वैशाली के लिच्छवियो का इतिहास समाप्त करने के पश्चात् नेपाल के लिच्छवियो पर भी प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है। समुद्रगुप्त के समय नेपाल मे शिव वर्मन (वशावलियो म उल्लिखित) का शासन था। इसने समुद्रगुप्त को *"करदान कर" आदि देकर मित्रता स्थापित कर ली थी। इस मित्रता के कारण* ही नेपाल म लिच्छवियो की स्थिति सुदृढ हो गई जिसका लाभ उसके उत्तराधिकारिया ने उठाया। नेपाल के लिच्छवि राजाओ को भारत के गुप्त सम्राटो का "करद राजा ' के रूप म शासन करने की स्थिति स्कदगुप्त तक रही। सभवत स्कदगुप्त की मृत्यु (467 ई) होते ही नेपाल के लिच्छवि नरेश मानदव ने

अपने को स्वतंत्र कर लिया। मानदेव के पश्चात वसंतदेव के काल (506 ई) तक नेपाल की राजनीतिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन वसंतदेव के काल में उत्तर भारत के परवर्ती गुप्त राजाओं (जीवित गुप्त तथा ईशान वर्मा के संयुक्त अभियान में) ने नेपाल के लिच्छवि राज्य को पराजित किया और पराजित लिच्छवि नरेश वसंतदेव को नियंत्रण में रखने के लिए गुप्त सामंत की नियुक्ति नेपाल में कर दी।

ये गुप्त सामंत नेपाल की राजनीति में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। इन्होंने नेपाली लिच्छवि राजाओं को अपने हाथ की कठपुतली बना रखा था। यह स्थिति अंशुवर्मन के पूर्व तक बनी रही। अंशुवर्मन की सहायता से ही शिव देव प्रथम ने नेपाल की राजनीति में गुप्त सामंतों का प्रभाव समाप्त किया। अंशुवर्मन राजपरिवार से अलग अन्य किसी लिच्छवि परिवार से संबंधित था। गुप्तों को अशक्त करने के पश्चात् उसने शिव वर्मन को अपने चंगुल में लिया। शिवदेव प्रथम के शासन काल के तीसवें वर्ष (604 ई) में एक अलग राज्य की स्थापना कर ली। नेपाल में इस प्रकार की द्वैराज्य की स्थिति शिवदेव प्रथम के शासन काल के अड़तीसवें वर्ष (613 ई) तक बनी रही।

शिवदेव प्रथम की मृत्यु के पश्चात् अंशुवर्मन ने संपूर्ण राज्य पर अधिकार किया। ऐसी स्थिति में शिवदेव प्रथम के पुत्र उदयदेव के समक्ष गुप्त रूप से गुप्त सामंतों की सहायता लेने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय न रह गया। लेकिन अंशुवर्मन की मृत्यु। (618-622 ई के मध्य) के पश्चात् ही उसे सफलता मिली। उदयदेव के समय से गुप्त सामंत पुनः नेपाल की राजनीति में प्रभावशाली हो गए। लिच्छवि राजा उदयदेव, ध्रुवदेव, भीमार्जुनदेव, कठपुतली मात्र बन कर रहे। अंत में उदयदेव को पुत्र नरेंद्र देव ने जो तिब्बत में गुप्त जीवन व्यतीत कर रहा था, तिब्बत के राजा से सैनिक सहायता प्राप्त कर अवैध रूप से अधिकार स्थापित कर लिया और गुप्त सामंतों को नेपाल की राजनीति से पूर्ण रूप में निकाल बाहर किया। इस प्रकार नेपाल में पुनः लिच्छवि वंश का गौरव स्थापित हो सका। इसके पश्चात् लिच्छवियों ने लगभग 782 ई तक बिना किसी बाहरी तथा भीतरी हस्तक्षेप के नेपाल में राज्य किया।

लिच्छवियों ने न केवल प्राचीन भारत की राजनीति को ही प्रभावित किया, वरन् छठी शताब्दी ईसवी पूर्व में समाज में हो रहे सांस्कृतिक परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इस युग में भारतीय समाज विभिन्न जातियों, उपजातियों में विभाजित हो गया था। वैशाली क्षेत्र में ही ब्राह्मण ग्राम, क्षत्रिय ग्राम, वाणिज्य ग्राम तथा क्षत्रिय जातियों की छः उपजातियों (सूत्रकृतांग में उल्लिखित) उग्र, भोग, अक्षविक, ज्ञातृक, कौरव आदि का अस्तित्व था। विभिन्न व्यवसाय

से जुडे शिल्पी वर्ग या जातिया तथा शूद्र व दासवर्ग भी वैशाली मे निवास कर रहे थे।

भगवान बुद्ध इस जातिगत भेदभाव को समाप्त करने मे जीवन भर प्रयत्नशील रहे, लेकिन उन्हें इसमे आशिक सफलता ही मिली। शूद्र वर्ग की स्थिति अन्य की अपेक्षा निम्न हो रही। इसके अनेक उदाहरण बौद्ध ग्रथो मे मिलते हैं। दासप्रथा का अस्तित्व भी समाप्त नही हुआ। यद्यपि भगवान बुद्ध अपने बौद्ध सघ मे इस दोष को समाप्त करने मे अशत सफल रहे, लेकिन ब्राह्म समाज मे उनका कोई अधिक प्रभाव नही पडा।

नारी के प्रति लिच्छवियो का एक विशेष दृष्टिकोण देखने को मिलता है। उनके एक नियम के अनुसार वैशाली मे उत्पन्न कन्या का विवाह किसी बाहरी व्यक्ति से नही हो सकता था। एक अन्य नियम के अनुसार नगर की सर्वोत्तम सुदर कन्या को 'नगर शोभिनी' के पद पर आसीन कर सम्मान दिया जाता था। लेकिन यह "नगर शोभिनी" किसी व्यक्ति विशेष की सपत्ति अर्थात पत्नी नही बन सकती थी। वह सपूर्ण गण से सबधित होती थी। लिच्छवि एक पत्नीत्व को सर्वोत्तम मानते थे। विवाह सबध प्राय वर के अभिभावक द्वारा होता था। कभी कभी इस कार्य को गणों के माध्यम से भी किया जाता था। प्रेम विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं।

कुछ विद्वानो का मत है कि लिच्छवियो मे भाई बहन मे विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। लेकिन उनका मत समीचीन नही लगता। लिच्छवियो मे बाल विवाह का उदाहरण देखने को नही मिलता लेकिन बेमेल का उदाहरण अवश्य मिलता है। परतु यह सभवत राजकुल तक ही सीमित था। लिच्छवि समाज मे नारी के सतीत्व पर कठोरता से ध्यान रखा जाता था। सतीत्व के उल्लघन करने पर पति द्वारा कठोरतम दण्ड तथा मौत का भी प्रावधान था। वेश्यावृत्ति भी एक वैध सामाजिक प्रचलन था।

लिच्छवि शिक्षा मे भी बहुत रुचि लेते थे। वैशाली के समीप महावन में बना कूटागार दर्शन सबधी विषयो पर वादविवाद करने का प्रमुख केंद्र था। महालि नामक लिच्छवि शिक्षा लेने तथा शिल्प मे विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने, तक्षशिला गया था। लिच्छवि भडकीले सुदर वस्त्र पहनते थे तथा स्वर्ण, मणि आदि बहुमूल्य पत्थरो से अपने को सजाने मे रुचि लेते थे। वे खानेपीने के भी शौकीन थे। चावल उनका प्रिय भोजन था। चावल से बना एक विशेष प्रकार का भात 'युवाग' उस समय बहुत प्रिय भोजन माना जाता था। शाक-भाजी के अतिरिक्त वे मास भक्षण करते थे। कुछ ब्राह्मण भी मास ग्रहण कर लेते थे। मद्यपान तथा गणिकाओ के साथ रगरेलिया मनाना एक सामान्य बात थी। लिच्छवि अपने मृतक को पृथ्वी मे गाडकर अथवा खुले मे छोडकर अत्येष्टि-क्रिया सपन्न

करते थे।

लिच्छवि प्रगतिशील विचारो के थे। उन्होने सामाजिक बुराइयो को दूर करने वाले नए विचारो को सबसे आगे बढकर अपनाया। वैशाली मे ब्राह्मण, आजीविक, जैन तथा बौद्ध मत के अनुयायी साथ-साथ रहते थे। वे सभी मतो के प्रचारको से दर्शन सबधी विषयो पर तर्क-वितर्क किया करते थे। वैशाली मे द्वितीय बौद्ध सगीत का आयोजन तथा बौद्ध ग्रथो मे बौद्ध अनुयायियो की एक लबी सूची देखने से प्रतीत होता है कि लिच्छवियो म बौद्ध अनुयायियो की संख्या अधिक थी।

लिच्छवी राज्य का स्वरूप गणतात्रिक था जिसमे वज्जि, विदेह तथा अन्य छह कुल सम्मिलित थे। लिच्छवी बाहरी व्यक्तियो को भी नागरिकता प्रदान करते थे जैसा कि खण्ड तथा वस्सकार के उदाहरणो से स्पष्ट है। लिच्छवि गण-राज्य मे केंद्रीय समिति के सदस्यो की सख्या सात हजार सात सौ सात थी जो सभवत राज्य के छोटे-बडे क्षत्रिय परिवार से मनोनीत होकर आते थे। ये ही सदस्य मत्रिमण्डल के सदस्यो का चुनाव करते थे। मत्रिमण्डल के सदस्यो की सख्या नौ थी। केंद्रीय समिति मे दलो का भी अस्तित्व था। समिति के सचालन तथा प्रस्ताव पर वादविवाद के सबध म नियम भी थे। स्थानीय शासन के लिए सभवत स्वायत्त सस्थाए थी, जिनके अध्यक्ष का चुनाव होता है।

लिच्छवियो की न्याय व्यवस्था भी उत्कृष्ट थी जहा अभियुक्त को उचित न्याय देने की पूर्ण व्यवस्था थी। न्याय व्यवस्था सात न्यायालयो मे विभाजित थी। न्याय प्रणाली के अनुसार यदि कोई अभियुक्त जुर्म कर सकता था लेकिन दोषी पाने पर उसकी सुनवाई अगले न्यायालय मे होती थी। केवल अतिम न्यायालय मे ही उस अभियुक्त को दोषी पाने पर दण्ड दिया जा सकता था। इस अतिम न्यायालय का न्यायाध्यक्ष स्वय गण-प्रमुख होता था। इस प्रकार व्यक्ति की स्वतत्रता की बहुत ही सावधानी से रक्षा की जाती थी।

लिच्छवियो की राजनीतिक तथा सैनिक दृढता के पीछे की शक्ति उनकी आर्थिक सपन्नता थी। इस आर्थिक सपन्नता का प्रमुख आधार स्वय वैशाली की भौगोलिक स्थिति थी। वैशाली उर्वरा भूमि तथा सरोवरो एव नदियो से परिपूर्ण थी। प्रमुख व्यापारिक मार्ग पर स्थित होने के कारण इस क्षेत्र मे कृषि, उद्योग तथा व्यापार मे आशातीत उन्नति हुई। वैशाली धनवान व्यक्तियो से परिपूर्ण था। उनके रहन-सहन का स्तर काफी उच्च था। धनिक तथा कुमार वर्ग अनेक भूमिक भवनो मे तथा साधारण शिल्पी वर्ग लकडी तथा ईंटो से बने साधारण घरो मे रहते थे। कृषको तथा शिल्पी लोगो की एक बडी सख्या गाँवो मे ही रहती थी।

गावों मे प्रमुख रूप से चावल की खेती की जाती थी। चावल की अनेक

किस्मे इस क्षेत्र मे पैदा की जाती थी। इसके अतिरिक्त गेहू, बाजरा तथा साग-भाजियो की बहुत अच्छी पैदावार होती थी। गावो मे पशु-पालन ने भी एक व्यवसाय का रूप ग्रहण कर लिया था। पशुओ को खेत के जोतने, बैलगाडी तथा रथो मे उपयोग करने के अतिरिक्त कुछ पशुओ का पालन मास व्यवसाय के लिए किया जाता था। वैशाली के समीपवर्ती क्षेत्र मे वनो की सुविधा होने के कारण शिकार करके मास बेचने का व्यवसाय बहुत उन्नतिशील था।

नदी तथा सरोवर एक ओर खेतो की सिचाई की आवश्यकता की पूर्ति करते थे, दूसरी ओर मछली पकडने का व्यवसाय करने वालो को सुविधा प्रदान करते थे। इन सब कारणो से वैशाली मे विभिन्न प्रकार के उद्योगो को भी पनपने का अवसर मिला। बौद्ध ग्रथो मे ऐसे विवरण मिलते हैं जिनसे विदित होता है कि उस समय इस क्षेत्र मे यन्त्र निर्माण, उद्योग, मिट्टी के विभिन्न प्रकार के कलात्मक बर्तन बनाने का उद्योग, तल तथा सौंदर्य प्रसाधनो से सबधित उद्योग बहुत विकसित अवस्था मे पहुच चुके थे। कुछ वस्तुओ, विशेषकर सुन्दर बारीक ऊनी कबल गलीचो आदि का निर्यात भी होने लगा था।

वैशाली की सीमा पर बहती गगा नदी की सुविधा होने के कारण इन उद्योगो के पनपने तथा उत्पादित वस्तुओ को देश के विभिन्न क्षेत्रो मे पहुचाने मे बहुत अधिक सफलता मिली। वैशाली के व्यापारियो के बडे-बडे सार्थवाह सिंधु, सौवीर तथा ताम्रलिपि व्यापार के लिए जाते थे जहा से उनका माल विदेशो को (रोम तक) निर्यात होता था। इस प्रकार देशभर के व्यापारी व्यापार करने के लिए वैशाली आते थे। अनेक स्रोतो से लिच्छवि राज्य को कर आदि के रूप मे भरपूर आय होती थी जिससे उनकी अर्थव्यवस्था दिनोदिन दृढ होती गई। उनकी इस आर्थिक सपन्नता को ही देखकर मगधराज अजातशत्रु ने गगा नदी के जल यातायात को पूर्ण रूप से अपने अधिकार मे करने का प्रयास किया था जिसके कारण दोनो शक्तियो मे सघर्ष हुआ।

छठी शताब्दी ईसवी पूर्व प्राचीन भारतीय वाड्मय के सबध मे कोई स्पष्ट चित्र उपलब्ध साधन स्रोतो मे नही मिलता है। लिच्छवियो ने भी इस क्षेत्र मे कोई योगदान दिया हो इस बात का स्पष्ट प्रमाण नही है। लेकिन विभिन्न मतो का प्रादुर्भाव तथा उनके प्रचारको से तर्कवितर्क के उल्लेख स यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विभिन्न मतो के साहित्य की अनेक पद्धतिया स्वतत्र रूप से विकसित हुई होगी। किंतु इनके साहित्य को सुरक्षित रखने के लिए जब लिपि का प्रयोग प्रारभ हुआ तबतक अनेक मतों का साहित्य लुप्त हो चुका था। उनके सबध मे छिटपुट उल्लेख बौद्ध तथा जैन ग्रथों मे मिलते हैं। लेकिन ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन मत का साहित्य जो कुछ पर्याप्त अश मे सुरक्षित रखा जा सकता है, वह उस समय के विद्वानो की उच्चकोटि की प्रतिभा एव निष्ठा का द्योतक है।

त्रिपिटक के रूप मे सग्रहित बौद्ध साहित्य के माध्यम से उस समय तक की भाषा तथा साहित्य के विकास का क्रम अच्छी तरह स विश्लेषित किया जा सकता है।

वैशाली की महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति का वर्णन एव सास्कृतिक उपलब्धियो का विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् लिच्छवियो की कला के विकास की पीठिका मे वैशाली की स्थिति, सास्कृतिक उपलब्धियो तथा राजनीतिक सबधो का महत्वपूर्ण हाथ होना स्वाभाविक है। इस समृद्ध क्षेत्र मे वास्तु, शिल्प, मृद्-भाण्ड तथा मृण्मयी-मूर्तियो के रूप मे भारतीय कला की सामग्री प्रभूत मात्रा मे पाई गई है। इनके माध्यम से इस क्षेत्र के कला के विकास पर प्रकाश पडता है। वैशाली नगरी तथा उसके अनेक भूमिक भवनो के सबंध मे हुए उल्लेख उस समय के नगर तथा भवन निर्माण कला के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वैशाली क्षेत्र मे कूटागार, स्तभ, चैत्यो तथा स्तूपो के विवरण तथा अशोक द्वारा निर्मित सिंह शीर्ष युक्त स्तभ जो अभी तक सुरक्षित हैं, वैशाली क्षेत्र में कला की विकास की स्वय कहानी प्रस्तुत करते हैं। उत्खनन मे शुगकालीन मृण्मयी मूर्तिया तथा सुदर ढग से बनी पशु आकृतियो के खिलौने प्राप्त होने से भारतीय कला के विकास मे वैशाली के विशिष्ट योगदान का पता चलता है।

आधार ग्रंथ सूची

(क) ब्राह्मण ग्रंथ (सस्कृत)

अथर्ववेद (सम्पा)	आर० रोथ और डब्लू० डी० विह्टने (बर्लिन), 1856,
ऋग्वेद (सम्पा)	श्री पाद शर्मा (औंध नगर, 1940)
कौटिलीय अर्थशास्त्र (सस्कृत मूल तथा हिन्दी)	उदयवीर शास्त्री (लाहोर, 1925)
" (अ० अनुवाद)	शाम शास्त्री (मैसूर, 1915, 1929)
कौमुदी महोत्सव (अ० अनुवाद)	शकुतलाराव शास्त्री (बम्बई, 1952)
पाणिनीय अष्टाध्यायी (अ अनु)	एस सी वसु (वाराणसी, 1991 98)
पतजलि महाभाष्य (सम्पा)	कीलहार्न (बम्बई, 1892, 1909)
मनुस्मृति (सम्पा)	गणेशदत्त पाठक (वाराणसी, 1948)
" (हिन्दी अनु)	केशव प्रसाद शर्मा (बम्बई, 1923)
द ला आफ मनु (अ अनु)	ब्यूलर (सैं बु ई), 25, आक्सफोर्ड, 1886)
महाभारत विद कमेन्टरी (सम्पा)	नीलकठ (पूना, 1929 1933)
रामायण (सस्कृत व हिन्दी अनु)	द्वारका प्रसाद शर्मा (इलाहाबाद, 1926)

(ख) बौद्ध ग्रथ

अगुत्तर निकाय (सम्पा)	मोरिस एव हार्डी (पा टे सो, लण्डन, 1883-1900)
द बुक आफ द ग्रेडोल सेइग (अ अनु)	वूडवर्ड तथा हेवर, पाचवां भाग (पा, टे, सो, 1932 36)

उदान	(सम्पा)	पी सैथल (पा टे. सो, लण्डन, 1885)
उदान	(हिन्दी अनु)	• जगदीश कश्यप भिक्षु
खुद्दक पाठ	(सम्पा अनु)	आर सी चिल्डर्स (ज रा ए सो, 1870 पृ 309- 39)
परमत्थजोतिका	(खुद्दक टीका)	पा टे सी (लण्डन)
गिल्गिट मैनुस्क्रिप्ट (विनयवस्तु		नलिनाक्षदत्त (श्री नगर, 1942)
जातक	(सम्पा)	• फा उसबोल, वी , सात भाग (लण्डन, 1877-97)
जातक	(सम्पा अग्रेजी)	कावेल, ई वी , भाग 1 व 2 (लण्डन, 1957)
डिक्शनरी आफ पाली प्रापर नेम		: मलालसेकरा, भाग दो (1938)
थेर तथा थेर गाथा	(सम्पा)	ओल्डन वर्ग तथा पिस्चेल, (पा टे सो , लण्डन, 1883)
थेरी गाथायें	(हिन्दी अनु)	भरतसिह उपाध्याय (नई दिल्ली, 1950)
साम आफ द ब्रद्रेन	(थेर अनु)	श्रीमती रिसडेविड्स (लण्डन, 1951)
साम आफ द सिस्टर्स	(थेरी अनु)	श्रीमती रिसडेविडस (लण्डन, 1949)
दीघ निकाय	(सम्पा)	श्रीमती रिसडेविड्स व कारपेन्टर, भाग 1, (पा टे सो 1949)
दीघ निकाय	(हिन्दी अनु)	राहुल सास्कृत्यायन (सारनाथ,
डायलाग्स आफ बुद्ध	(अ अनु)	रिसडेविड्स तथा सी ए ई, खण्ड 2 (लण्डन 1959)
सुमगल विलासिनी	(दीघ टीका)	रिसडेविड्स (पा टे. सो , लण्डन, 1886)
द लाइफ आफ द बुद्ध		• राकहिल (लण्डन 1907)
धम्मपद	(पाली व हिन्दी अनु)	राहुल सास्कृत्यायन (सारनाथ,
धम्मपद अट्ठकथा	(धम्म टीका)	एच सी थामॅस (पा टे सो , लण्डन, 1906-15)
पेतवत्थु	(सम्पा)	राहुल सास्कृत्यायन (रगून 1937).
पूजा वलिय		सीलोनी बुद्धिष्ट ग्र थ
बुद्ध चरित्र आफ अश्वघोष	(सम्पा)	कावेल (आक्सफोर्ड, 1893)
मज्झिम निकाय	(सम्पा)	, वी ट्रेंकनर तथा चामर्स (पा. टे. सो, लण्डन, 1948-5.)

पप सूदनी	(मज्झि अ अनु)	चामर्स, दो भाग (बुद्धिष्ट सी , 5-6 लण्डन, 1926-271
डायलाग्स आफ द बुद्ध (मज्झि अ अनु)	:	चामर्स, दो भाग (बुद्धिष्ट सी , 1944-52) 5-6 लण्डन, 1926-27)
महावग्ग	(सम्पा)	एन के भागवत् दो भाग (बम्बई, 1944-52)
महावस	(सम्पा तथा अनु)	गेगर (पा टे सो , लण्डन, 1912)
महावस	(हिन्दी अनु)	भदन्त आनन्द कौसल्यायन (इलाहाबाद, 1942)
महावस्तु	(सम्पा)	ई सेनार्ट, तीन भाग (पेरिस, 1982-97)
महावस्तु	(अ अनु)	जे जे जोन्स, भाग 1 (लण्डन, 1949)
ललित विस्तर	(सम्पा)	लुफौन (हाले, 1902-1908)
विनय पिटक	(सम्पा)	ओल्डन वर्ग, 5 भाग (पा टे सो , लण्डन, 1879-1883)
विनय पिटक	(हिन्दी अनु)	राहुलसास्कृत्यायन (सारनाथ, 1935)
विनय टेक्स		रिसडेविड्स तथा ओल्डन वग (सै ब्रु ई , 13, 16 व 20 आक्सफोर्ड, 1881-85)
द बुक आफ द डिस्पिलिन (विनय (पिटक का अ अनु)		आई बी ह्वार्बर, (बुद्धिष्ट सीरीज, लण्डन, 1938 52)
समतपासादिका (विनय पिटकटीका)		चार भाग (पा टे सो)
सयुक्त निकाय	(सम्पा)	लियोन फियर और मिसेज रिसडेविडस (लण्डन, 1884-98)
द बुक आफ द किंड्रेड सेंइग (अ अनु)		श्रीमती रिसडेविड्स और वुडवर्ड (पा. टे सो , लण्डन, 1916-30)

(ग) जैन ग्रंथ

अभिधान राजेन्द्र	(कोश)	भाग 3, (1914)
आचारग सूत्र	(सम्पा)	जैकोबी (पा टे सो लण्डन, 1882)
आचारग-सूत्र (जैन सूत्र)	(अनु)	जैकोबी (सै बु ई भाग 22, आक्सफोर्ड, 1884)
आवश्यक सूत्र	(चूर्णि)	जिनदास गणि, दो भाग (रतलाम, 1928-29)

उवासगदसाव (सम्पा व अ)	हॉर्न्ले, दो भाग (बिब्लोथिका) इंडिका सी , कलकत्ता, 1890-98)
कल्पसूत्र (अनु) :	जैकोबी (सै ब्रु ई , भाग 22)
निरयावलियाव सूत्र (सम्पा)	ए एस गोपनी और चोक्षी (अहमदाबाद, 1935)
भगवती सूत्र (सम्पा व टीका)	अभयदेव (बम्बई 1918-21)
स्थाविरावली चरित या हेमचन्द का परिशिष्ट पर्व (सम्पा)	जैकोबी (बिब्लोथिका इंडिका सी., कलकत्ता, 1882)
श्रमण भगवान महावीर	मुनि रत्नप्रभ विजय, भाग 2, खण्ड 2, (अहमदाबाद, 1851)

(घ) अभारतीय स्रोत

बुद्धिष्ट रिकार्ड आफ द वैस्टर्न वर्ड (ह्वेनत्साग का यात्रा विवरण)	सैमुअल बील (लण्डन, 1884)
द रोमांटिक लिजेन्ड आफ शाक्य बुद्ध	सैमुअल बील (लण्डन, 1875)
द लाइफ आफ द बुद्ध एण्ड अर्ली हिस्ट्री आफ हिज आर्नर (तिब्बती ग्रंथो म वर्णित) (अ अनु)	(ब्रुडविले रॉकहिल (लण्डन, 1907)
एन एकाउन्ट आफ द किंगडम आफ नेपाल	किरपॅट्रिक (लण्डन, 1811)
हिस्ट्री आफ नेपाल(परबतिया सस्स) (अं अनु)	डी राइट (कैम्ब्रिज, 1877 व कलकत्ता 1958)
एल नेपाल (तीन भाग)	सिल्वा लेवी, (पेरिस, 1909)

(च) अभिलेख

उपाध्याय वासुदेव	गुप्त अभिलेख (पटना, 1974)
नोली, आर	नेपालीज़ इन्सक्रिप्यन्स इन गुप्त कैरेक्टर्स (रोम, 1956)
फ्लीट, जे एफ	कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, भाग 31 परवर्ती गुप्त राजाओं के अभिलेख (कलकत्ता, 1 88)
सरकार, डी सी	स्लेक्टेड इन्सक्रिप्शन्स, भाग I (कलकत्ता 1942)

(झ) मुद्रा

अल्तेकार, अ सदाशिव	गुप्तकालीन मुद्रायें (पटना, 1954)

ठाकुर, उपेन्द्र — सम आबजर्वेशन्स आन चन्द्रगुप्त प्रथम—कुमार देवी क्वायन्स—टा (इ न्यू ओ-निक्ल, भाग 2, खण्ड 1, 1961)

सोहनी, एस वी — चन्द्रगुप्त प्रथम—कुमार देवी क्वायन—टाइप, रि इक्जामिनेशन (ज न्यू सो इ, भाग 19 खण्ड 2, 1956)

(ज) उत्खनन-रपट

आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया एन्युअल रिपोर्ट, — *1881-62, 1880-81, 1903-04,* 1913-14, 1921-22, 1922 23 1957-58, 1958-59, 1959 60, 1960-61,

वैशाली इक्वेशन — कृष्णदेव तथा विजयकात मिश्र,

शोध निबध

इन्द्र जी ला — सम कन्सोडिरेशन्स आफ द हिस्ट्री आफ नेपाल, इ ए 1884 भाग 13, पृ 412-428

गोपाल, यू एन — द कास्टीट्यूशन आफ व लिच्छवीज आफ वैशाली, इ हि क्वा, 1044 भाग 20, अक 4, पृ 334-40

जायसवाल, काशी प्रसाद — हिस्टारिकल डेट इन द ड्रामा "कौमुदी महोत्सव, "अ भा ओ रि ई 1930-31, भाग 12, पृ 50-57

पाण्डेय, एम एस — ए फ्रेश स्टडी आफ द अर्ली गुप्त क्रोनोलाजी एण्ड लिच्छवि-गुप्त रिलेशनशिप, ज वि रि सो, भाग 46

फ्लीट, जे एफ — द क्रोनोलाजी आफ द अर्ली रुलर्स आफ नेपाल, इ ए 1885, भाग 14, पृ 342 51

भण्डारकर, डी आर — द कारमाइकेल लेक्चर्स, 1918 (लेक्चर्स आन द एशियेण्ट इडियन न्यूमिसमेटिक्स) कैलकत्ता, 1921

मजूमदार, रमेश चन्द्र — *द कास्टीट्यूशन आफ द लिच्छवीज एण्ड* शाक्याज़, इ हि क्वा, 1851, भाग 27

	अक 4, पृ 327-13
विद्या भूषण, सतीश चन्द	पर्सियन एपिग्निटीज आफ द लिच्छवि, इ ए, 1908, भाग 37 पृ 78
	द लिच्छवीज रेस आफ एंशियेण्ट इडिया, ज ए सो ब, 1902 भाग 71
स्मिथ, विसेन्ट आर्थर	तिब्बतन एपिग्निटीज आफ द लिच्छवि, इ ए मई 1903, भाग 32, पृ 233-36
" " "	वैशाली, ज रा ए सो, 1913
सरकार, डी सी	एन हिस्टोरिसिटी आफ द कौमुदी महोत्सव, जे ए एच आर एस, 1937-38, भाग 11

सामान्य सहायक ग्रथ

अल्टेकर, अ सदाशिव	स्टेट एण्ड गर्वनमेन्ट इन एंशियेण्ट इडिया द्वितीय सस्करण *(वाराणसी, 1 55)*
" " "	प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, द्वितीय सस्करण (1958)
" "	एजूकेशन इन इडिया (वाराणसी, 1944)
" " "	पोजीशन आफ वोमेन इनहिन्दू सिविलाइजेशन (दिल्ली, 1962)
अग्रवाल, वासुदेवशरण	पाणिनि कालीन भारतवर्ष, प्रथम सस्करण, (वाराणसी स 2012
ओल्डनवर्ग, एच	: प्राचीन भारतीय साहित्य और धर्म (हिन्दी अनु)
गुप्त, परमेश्वरी लाल	गुप्त साम्राज्य (वाराणसी, 1960)
गोयल, श्रीराम	प्राचीन नेपाल का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास (वाराणसी 1973)
गोपाल, हरिरजन तथा जर्नादन	बुद्धिज्म एन्ड वैशाली (पटना, 1957)
चानन डी आर	स्लेवरी इन एंशियेण्ट इडिया (कलकत्ता, 1958)
चौधरी, आर के	हिस्ट्री आफ बिहार (पटना, 1958)
जिला गजेटियर	मुजफ्फर पुर (कलकत्ता, 1907)
जायसवाल, काशीप्रसाद	हिन्दू पालिटी, तृतीय सस्क (बगलौर, 1955)

जायसवाल काशीप्रसाद — भारतवर्ष का अधकारयुगीन इतिहास, द्वितीय सस्क (वाराणसी, वि स. 2014)

,, , : क्रोनोलाजी एण्ड हिस्ट्री आफ नेपाल (पटना, 1937)

जायसवाल, प्रशान्त कुमार — गुप्तकालीन उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (पटना, 1965)

ठाकुर, उपेन्द्र — हिस्ट्री आफ मिथिला (दरभगा 1956)

डागे, अमृतपाद — भारत आदिम साम्यवाद स दास प्रथा तक (हिन्दी अनु, दिल्ली, 1978)

दत्त, नलितनाक्ष — अर्ली हिस्ट्री आफ द स्प्रेड आफ बुद्धिज्म (लण्डन)

दिवाकर, (आर आर) सम्पा — बिहार थ्रू द ऐजज (1959)

प्रधान, एस एम — क्रोनोलाजी आफ एशियेन्ट इडिया (कलकत्ता, 1927)

प्रकाश, ओम — फूड एण्ड ड्रिंक इन एशियेन्ट इडिया (दिल्ली, 1961)

पाठक, विशुद्धानन्द — हिस्ट्री आफ कौशल (वाराणसी, 1962)

पार्जिटर, एफ ई — द पुराण टेक्स आफ द डायनस्टीज आफ द कलिएज (आक्सफोर्ड, 1913 एव वाराणसी 1921)

प्राण नाय — ए स्टडी इन इकोनोमिक कडीशन आफ एशियेण्ट इडिया, (लन्डन, 1929)

वासम, ए एल — • हिस्ट्री एण्ड डाक्ट्रिस आफ द आजीविक्स (लण्डन, 1951)

बोस, ए एन — सोसल एण्ड रूरल इकोनामी आफ नार्दन इडिया, (कलकत्ता-1942 45)

मजूमदार, राय चौधरी व दत्त — एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इडिया द्वितीय सस्क (लण्डन, 1950)

माथुर, जे सी तथा योगेन्द्र मिश्र — वै अभि ग्र (वैशाली 1948)

मिश्र, योगेन्द्र — एन अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली (मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली-1962)

मुखर्जी, शोभा — द रिपब्लिकन ट्रेंड इन एशियेण्ट इडिया (दिल्ली, 1969)

मेहता, रतिलाल एन : प्री बुद्धिष्ट इडिया (जातको के आधार पर), बम्बई, 1939

रिस डेविड्स, टी डब्लू : बुद्धिष्ट इडिया (कलकत्ता, 1950)
बौद्ध-भारत (हिन्दी, अनु, इलाहाबाद, 1958)

राय चौधरी, पी सी : जैनिज्म इन विहार (पटना, 1957)

राय चौधरी, हेम चन्द : द डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इडिया भाग 1 (कलकत्ता, 1952)

रेग्मी, दिल्ली रमण : एशियेण्ट नेपाल (कलकत्ता, 1960)

ला, विमल चरण : ए हिस्ट्री आफ पाली लिटरेचर, भाग 1 (लण्डन, 1933)

" : क्षत्रिय क्लान्स इन बुद्धिष्ट इडिया, कलकत्ता और शिमला (1922)

" : ट्राइब्स इन एशियेण्ट इडिया, (पूना, 1943)

शुक्ल, देवीदत्त : प्राचीन भारत मे जनतत्र (लखनऊ, 1966)

श्रीवास्तव, बलराम : ट्रेड एण्ड कामर्स इन एशियेण्ट इडिया (वाराणसी, 1968)

सम्मेदार, जे एन : द ग्लौरी आफ मगध, द्वितीय सस्क (1927)

सघवी, एस एल : वैशाली विदेह (मुजफ्फरपुर, 1953)

सिंह, एस एन : हिस्ट्री आफ तिरहुत (कलकत्ता, 1922)

सिंह, मदन मोहन : बुद्ध कालीन समाज और धर्म (पटना, 1922)

सिन्हा, बी पी : द डिक्लाइन आफ किंगडम आफ मगध (पटना, 1955)

स्मिथ, विसेंट आथर : द अर्ली हिस्ट्री आफ इडिया, चतुर्थ सस्क (आक्सफोर्ड, 1924)

सूरी, विजेन्द्र : वैशाली (बम्बई, 1958)

" " : तीर्थंकर महावीर, भाग 1 (बम्बई, 1966)

त्रिपाठी, सच्चिदानन्द : शुगकालीन भारत (वाराणसी, 1977)

त्रिवेद, देव सहाय : प्राङ्-मौर्य विहार (पटना, 1954)

अनुक्रमणिका

अभिषेकपुष्करणी, 17
अम्बपाली, 44, 46, 120, 123, 124,
अजातशत्रु, 44, 46, 48-52, 104, 106,
अशोक, 61, 223
अजित, 163,
अजित केशकवली, 114
अभय, 124, 155,
अष्टकुलक, 184,
अथर्ववेद, 3,
आचारांगसूत्र, 5,
आलार-कालाम, 149,
आजीविक, 154,
आनन्द, 16, 156, 222,
आपस्तब श्रौतसूत्र, 3,
एकपण्णजातक, 15, 17, 130, 150,
उग्ग गृहपति, 121,
उदयदेव, 92,
अशुवर्मन, 90, 91,
अंगुलिमाल, 46,
ऋग्वेद, 109, 121,
कल्पसूत्र, 153,
कण्व, 63, 64,
करालजनक, 31, 33, 34,
कनिष्क, 65, 66,
कालाशोक, 60,
कारणपाली, 150,
कोलार, 1,
कोटिग्राम, 161,
कौटिल्य अर्थशास्त्र, 9, 31, 61, 104, 111, 115, 116, 118, 123,
कौमुदीमहोत्सव, 62,
कुमारदेवी, 63, 64, 65,
कुमारामात्य, 105,
कुटागारशाला, 124, 126, 150 158, 222,
कुण्डपुर, 152,
कृतिजनक, 30,
खण्ड, 49, 131, 174
खारवेल, 63, 65,
गणदेव, 89
गिलिगटमैन्युस्क्रिप्ट, 16, 35, 36, 162,
गणदेव, 89,
गोसिंग सालवन, 162
गोप, 106,
चण्डसेन, 63, 64
चन्द्रगुप्त मौर्य 61, 64, 65,
चांगुनारायण अभि०, 86, 88
चेतक, 4, 51, 153

चैत्य 6, 16, 61, 222
चीरवस्तु, 120
छब्बगिया (बौद्धभिक्षु), 16
छद, 163
जयदेव द्वितीय, 85, 93, 94,
ज्येष्ठा (चेटक की पुत्री), 122
जटिलतपस्वी, 151
जिष्णु गुप्त, 92, 93
तक्षशिला, 124, 211, 222
तिब्बती दुल्व, 3, 16, 35, 130
थेरवाद, 214
दासक थेर, 150
दिव्यावादन, 45
दीघ निकाय, 46, 118, 152
देव भूति, 63
ध्रुव देव, 92
नरेन्द्रदेव, 93, 94
नादिक, 161, 162
निरयावलिसूत्र, 46, 50
नेपाल, 66, 85, 91,
नदिवर्द्धन, 1.2,
परिव्राजक, 151, 208,
परमत्थजोतिका, 1, 5, 6, 129
पतजलि, 36, 104, 111
पशुपतिनाथ अभिलेख, 92, 93,
पाणिन, 4, 34, 165, 207, 210,
पाटलिपुत्र, 62, 67, 64, 65
पावा, 152
पिगयानी ब्राह्मण, 150, 15
पुष्यमित्रशुग, 62, 63,
पूर्णकश्यप, 114
प्रयागप्रशस्ति, 86
प्रसेनजित, 35, 46, 4 7
फाह्यान, 9, 15, 16
बसतदेव, 89
बाल्मीकिरामायण, 11
बालिकाछवि, 161
बेलुटगामक, 161
बिम्बसार, 14, 32, 34, 49, 122, 156
बौद्धलिच्छवि, 159, 160
बुद्ध, 14, 44, 109, 110, 117, 119, 123, 124, 128, 129, 153, 222
बुद्धघोष, 1, 46, 55, 53, 148,
भद्रावैशाली, 12
भद्रबाहु, 211
भरहुत, 215, 216
भगवतीसूत्र, 52
भिक्षापात्र, 158
भीमार्जुनदेव, 92
मक्खलिगोसाल, 154
मनुस्मृति, 2, 4, 5, 6, 46, 113, 115
मल्ल, 29
मल्लपुरी, 86, 89, 90
महालि, 6, 47, 124, 155, 156 179, 222
महावीर, स्वामी 6, 14, 33, 36, 65, 152,—155,
महाभारत, 5, 12, 29, 53, 105, 106, 174
महापरिनिब्बान सूत्र, 5, 6, 10
महापद्मनन्द, 69,
महाप्रजापतिगौतमी (बुद्ध की सौतली मां), 159
महीदेव, 88
मानदेव, 86-88,

मातग, 113,
मातृदेवी मूर्तिया, 224, 225
मिथिला 12, 13 29,
मोग्गलिपुत्रतिस्य, 214,
मृण्मयी मूर्तियाँ, 224,
यक्ष, 149
यूची, 1
राजगृह, 65,
राहुल सांकृत्यायन, 107, (भूमिहार लिच्छवियों के वंशज हैं)
रोहिणी थेरी, 1°0
रेवत (बौद्धविद्वान), 214
ललित विस्तर, 35, 105, 154
लिच्छवि, 1—18, 43, 48, 49, 119, 120, 123, 125, 128, 129, 130, 131
वल्लिभ थेर, 150
वस्सकार, 51, 105, 106, 174,
वसुमित्र, 63, 64,
वज्जि, 5, 8, 9, 17, 34, 48, 53,
वामनदेव, 89
व्रात्य, 5, 8, 46, 109, 110
वासवखतिया, 118
विष्णुगुप्त, 92, 93
विदेह, 29, 104
वैशाली, 11, 14-18, 29, 43-45, 62, 63, 124, 149, 150 155, 225,
वृक्षपूजा (चैत्यपूजा), 149
सर्वकामी (बौद्ध भिक्षु), 163,
समुद्रगुप्त, 76, 85
संयुक्त निकाय, 46
संथागार, 179
सातवाहन, 64,
साची, 215
सार्थवाह 200
सारनाथ, 66, 75,
सालवती, 46
सिंह सेनापति, 106, 153
सुमंगल विलासिनी, 6, 49, 149
सुंदरवर्मन, 63-75
सुपुष्प, 86
सूत्रकृतांग, 35
शतपथ ब्राह्मण, 4
शलाका, 182
श्वेत विहार, 223
शिशुनाग, 1, 60,
शिववर्मन, 16
ह्वेनत्सांग, 7, 9, 15, 16, 17, 78 94, 107, 124, 126, 152, 160, 194, 222
त्रिशला, 7